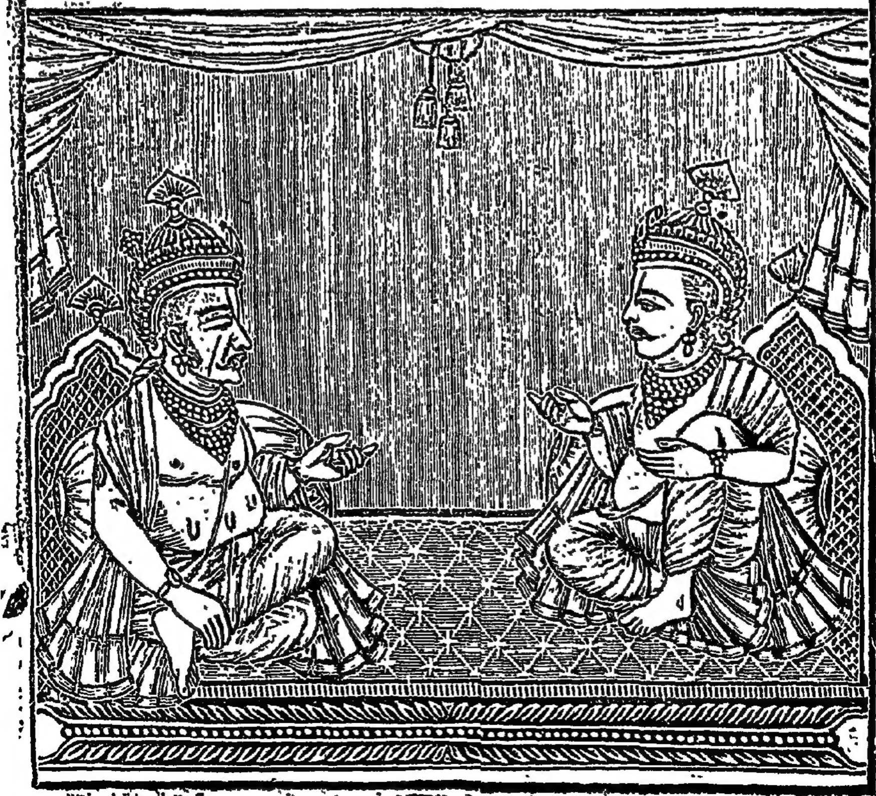
यह पुस्तक खेमराज श्रीकृष्णदासने, बम्बई खेतवाडी ७ वी गली खम्बाटा लेन, निज "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेसमें अपने लिये छापकर यहीं प्रकाशित किया।


युद्ध प्रसंग
अर्जुन








अथ श्रीमद्भगवद्गीतार्थवाङ्मयी मूर्तिः ।

**वक्त्राणि पंच जानीहि पंचाध्यायाननुक्रमात् ।**
**दशाध्याया भुजाश्चैकमुदरं द्वौ पदांबुजे ॥ १ ॥**

**एवमष्टादशाध्यायी वाङ्मयी मूर्तिरैश्वरी ।**
**जानीहि ज्ञानमात्रेण महापातकनाशिनी ॥ २ ॥**

इस मूर्तिमें अंक डालनेका मतलब यह है कि जिस जिस अध्यायके जो जो अंग हैं; उन उन अंगोंमें उन उन अध्यायोंके अंक लिखे हैं.


महर्लोक
आकाश
स्वर्ग
अतल
वितल
सुतल
महातल
रसातल
तलातल
पाताल
अर्जुन

# भूमिका



हम बडे आनंदसे सर्व सद्धर्मावलंबियोंपर विदित करते हैं कि, यह "भगवद्गीता" ग्रंथ सर्व लोगोंको धर्मग्रंथ शिरोमणिरूपसे मान्य है प्रायः समस्त सनातनधर्माभिमानी विज्ञलोगोंको पाठ आता है. साधारणसेभी साधारण क्यों न हो एक आध श्लोकका तो मुखसे उच्चारण करताही है. ऐसा इस ग्रंथका माहात्म्य है. यह क्यों नहीं हो कि, जो साक्षात् पद्मनाभ भगवान् श्रीकृष्णचंद्रजीने परम भक्त अर्जुनको श्रीमुखसे निरूपण करा है. जिसमें एकएक अक्षर तत्त्वज्ञानसे भराहुआ है. ऐसा यह ग्रंथ है तो इसकी इतनी महिमा होना क्या आश्चर्य है? यह ऐसी गीता सर्व उपनिषदोंके साररूप है श्रीकृष्णजीने इसको निकाली है, अर्जुनजीने इसका प्रथम आस्वाद लिया है. इसके भोक्ता बुद्धिमान् लोग हैं. यह परम पवित्र और चतुर्विध पुरुषार्थको सिद्ध करता है.

ऐसा यह तत्त्वज्ञान महाभारतके भीष्मपर्वमें श्रीव्यासमुनिने ग्रंथरूपसे निरूपण किया है, यह ग्रंथ संस्कृतभाषामें रहनेसे इसका अर्थ समझनेमें साधारण लोगोंको पराधीन करता था. यह न्यूनता देखकर मैंने इस ग्रंथकी "गीतामृततरंगिणी" नामक भाषाटीका निर्माण करी. इसको प्रथम आवृत्तिमें अन्यत्र छपवायाथा. वह आवृत्ति हाथों हाथ बिकगई. इस वास्ते अब इस भाषाटीकाका रजिस्टरी हक़ सदाहीके लिये यथोचित पारितोषिक पाकर बडे उत्साहसे श्रीमान् सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजी "श्रीवेङ्कटेश्वर" छापखानाके अधिपतिको निवेदन किया है. उन सेठ श्रीखेमराज श्रीकृष्णदासजीने यह ग्रंथ परम उत्साहसे अपने "श्रीवेङ्कटेश्वर" छापखानेमें

सुंदर मनोहर अक्षरोंमें पुष्ट चिकने कागज़पर छापके प्रसिद्ध किया है यह उक्त सेठजीका परम उपकार है.

अब हम आशा रखतेहैं कि, इस अलभ्य मनोहर भाषाटीकासमेत पुस्तकको संग्रह करके भगवदुक्त तत्त्वज्ञानको पायकर परम आनंदका विद्वान् अनुभव करेंगे.

सुकुल सीतारामात्मज-

पण्डित रघुनाथप्रसाद.



॥ श्रीः ॥

# अथ श्रीभगवद्गीतामाहात्म्यम् ।

भाषाटीकासमेतम् ।

ऋषिरुवाच ।

गीतायाश्चैव माहात्म्यं यथावत्सूत मे वद ॥
पुराणमुनिना प्रोक्तं व्यासेन श्रुतिचोदितम् ॥ १ ॥

श्रीर्जयति ॥ नत्वा रामानुजं कृष्णं गीताचार्यं जगद्गुरुम् ॥
गीतामाहात्म्यसद्व्याख्यां कुर्वे प्राकृतभाषया ॥ १ ॥

अनेकप्रकारकी कथा सुनते सुनते शौनकऋषी सूतजीसे प्रश्न करतेभये कि, हे सूत ! जो श्रीमद्भगवद्गीताका माहात्म्य श्रीव्यासजीने कहा है सो यथावत् मेरेको कहो ॥ १ ॥

सूत उवाच ॥ पृष्टं वै भवता यत्तन्महद्गोप्यं पुरातनम् ॥
केन वा शक्यते वक्तुं गीतामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ २ ॥

शौनकका प्रश्न सुनिके सूतजी बोले कि, जो तुमने मेरेसे पूंछा यह अतिगोप्य प्राचीन है. अति उत्तम यह गीताका माहात्म्य किसी करिके भी कहनेमें नहीं आता है ॥ २ ॥

कृष्णो जानाति वै सम्यक् कचित्कौंतेय एव च ॥
व्यासो वा व्यासपुत्रो वा याज्ञवल्क्योऽथ मैथिलः ॥ ३ ॥

सम्यक्प्रकारसे तो, कृष्णही जानते हैं और किंचित् अर्जुन तथा व्यासजी, शुकदेवजी, याज्ञवल्क्य अथवा जनक जानते हैं ॥ ३ ॥

अन्ये श्रवणतः श्रुत्वा लोके संकीर्त्तयंति च ॥
तस्मात्किंचिद्वदाम्यद्य व्यासस्यास्यान्मया श्रुतम् ४

औरजन कानोंसे सुनिके लोकमें वर्णन भी करते हैं, परंतु जानते नहीं हैं, इसते जैसा मैंने श्रीव्यासजीके मुखारविंदसे सुना है तैसा कुछ थोडा कहूंगा ॥ ४ ॥

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनंदनः ॥
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीताऽमृतं महत् ॥ ५ ॥

सर्व उपनिषदें तो गऊरूप होतीभईं; दुहनेवाले श्रीकृष्ण और बछरारूपी अर्जुन प्रथम पान करतेभये. पीछे यह गीतारूप दूध अतिमिष्ट लोकमें प्रवर्त्त करतेभये ॥ ५ ॥

सारथ्यमर्जुनस्यादौ कुर्वन् गीतामृतं ददौ ॥
सर्वलोकोपकारार्थं तस्मै कृष्णाय ते नमः ॥ ६ ॥

जो भगवान् प्रथम अर्जुनका सारथीपना करते करते सर्वलोकोंके उपकारके वास्ते अर्जुनको गीतारूप अमृत देता भया ऐसे आप श्रीकृष्णको मेरा नमस्कार है ॥ ६ ॥

संसारसागरं घोरं तर्त्तुमिच्छति यो जनः ॥
गीतानावं समारुह्य परं याति सुखेन सः ॥ ७ ॥

जो संसारघोरसागर तरना चाहता होय, सो गीतारूप नावपर बैठके सुखसे पार पाता है ॥ ७ ॥

गीताज्ञानं श्रुतं नैव सदैवाभ्यासयोगतः ॥
मोक्षमिच्छति मूढात्मा याति बालकहास्यताम् ॥ ८ ॥

जिसने गीतासंबंधी ज्ञान सदा अभ्यासयोगसे नहीं सुना है और वह मूर्ख मोक्ष चाहता है वह बालकोंकरि के उपहासको प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

ये शृण्वंति पठंत्येव गीताशास्त्रमहर्निशम् ॥
न ते वै मानुषा ज्ञेया देवा एव न संशयः ॥ ९ ॥

जो रातदिन गीता पढते और सुनते हैं वे मनुष्य नहीं, देवताही हैं, ऐसे जानना यहां संशय नहीं ॥ ९ ॥

गीताज्ञानेन संबोध्य कृष्णः प्राह तमर्जुनम् ॥
अष्टादशपदस्थानं गीताध्याये प्रतिष्ठितम् ॥ १० ॥

श्रीकृष्णभगवान् अर्जुनको गीताके ज्ञानसे प्रबोधिके बोले कि, इसगीताके एकएक अध्यायमें अष्टादशपद जो विष्णु उनका स्थान जो परमपद सो स्थापित किया है ॥ १० ॥

मोक्षस्थानं परं पार्थ सगुणं वाथ निर्गुणम् ॥
सोपानाष्टादशैरेवं परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ११ ॥

हे अर्जुन ! सगुण अथवा निर्गुण स्वइच्छाप्रमाण मोक्षस्थानपर इन अठारह अध्यायरूप सोपानोंकरिके परब्रह्मको प्राप्त होता है॥ ११॥

मलनिर्मोचनं पुंसां जलस्नानं दिने दिने ॥
सकृद्गीतांभसि स्नानं संसारमलनाशनम् ॥ १२ ॥

जो दिनदिनप्रति जलस्नान है सो शरीरमलका नाशक है और इसगीतारूप जलका स्नान संसारदुःखरूप मलका नाशक है ॥ १२ ॥

गीताशास्त्रस्य जानाति पठनं नैव पाठनम् ॥
परस्मान्न श्रुतं ज्ञानं नैव श्रद्धा न भावना ॥ १३ ॥
स एव मानुषे लोके पुरुषो विड्वराहकः ॥
यस्माद्गीतां न जानाति नाधमस्तत्परो जनः ॥ १४ ॥

जो गीताशास्त्रका पढना पढावना नहीं जानता है, न दूसरेसे सुना, न जिसके श्रद्धा है और न भावना है सो पुरुष इसलोकमें ग्राम-

सूकरके समान है; जिसते कि, वह गीता नहीं जानता है तिसीसे उसके सिवाय दूसरा अधम नहीं है ॥ १३ ॥ १४ ॥

धिक्तस्य मानुषं देहं धिग्ज्ञानं धिक्कुलीनताम् ॥
गीतार्थं न विजानाति नाधमस्तत्परो जनः ॥ १५ ॥

जो गीतार्थको नहीं जानता है उसके मनुष्यदेहको, ज्ञानको और कुलीनताको धिक्कार है और उससे अधिक कोई अधम नहीं है ॥१५॥

धिक्सुरूपं शुभं शीलं विभवं सद्गृहाश्रमम् ॥
गीताशास्त्रं न जानाति नाधमस्तत्परो जनः ॥ १६ ॥

जो गीताशास्त्रको नहीं जानता है उसके सुंदररूपको, सुंदरशीलको, विभवको और श्रेष्ठगृहाश्रमको धिक्कार है और उसते अधिक अधम दूसरा नहीं है ॥ १६ ॥

धिक् प्रागल्भ्यं प्रतिष्ठां च पूजां मानं महात्मताम् ॥
गीताशास्त्रे रतिर्नास्ति तत्सर्वं निष्फलं जगुः ॥ १७॥

जिसकी गीताशास्त्रमें प्रीति नहीं उसकी हिम्मत, प्रतिष्ठा, पूजा, मान और महात्मापनेको धिक्कार है और उसका सर्व निष्फल है ॥१७॥

धिक्तस्य ज्ञानमाचारं व्रतं चेष्टां तपो यशः ॥
गीतार्थपठनं नास्ति नाधमस्तत्परो जनः ॥ १८ ॥

जिसके गीतार्थका पठन नहीं है तिसके ज्ञानको तथा आचार, व्रत, चेष्टा, तप और यशको धिक्कार है, उससे अधिक कोई जन अधम नहीं है ॥ १८ ॥

गीतागीतं न यज्ज्ञानं तद्विद्ध्यासुरसंज्ञकम् ॥
तन्मोघं धर्मरहितं वेदवेदांतगर्हितम् ॥ १९ ॥

जो ज्ञान गीताका गाया नहीं है उस ज्ञानको आसुरी ज्ञान जा-

नना; वह व्यर्थ और धर्मरहित तथा वेदवेदांतकरिके निंदित है॥ १९॥

यस्माद्धर्ममयी गीता सर्वज्ञानप्रयोजिका ॥
सर्वशास्त्रमयी गीता तस्माद्गीता विशिष्यते ॥ २० ॥

जिसवास्ते कि, गीता धर्ममयी और सर्वज्ञानोंकी प्रवर्त्तकरनेवाली है और सर्वशास्त्रमयी है; ऐसा कहा है, तिससे गीता सबशास्त्रोंसे श्रेष्ठ है॥ २०॥

योऽधीते सततं गीतां दिवा रात्रौ यथार्थतः ॥
स्वपन्गच्छन्वदंस्तिष्ठञ्छाश्वतं मोक्षमाप्नुयात् ॥ २१ ॥

जो निरंतर रातिदिन अर्थसहित गीताको सोते, चलते, बोलते, खडेभी पढते रहते हैं वे सनातन मोक्षको प्राप्त होते हैं॥ २१॥

शालग्रामशिलाग्रे तु देवागारे शिवालये ॥
तीर्थे नद्यां पठेद्यस्तु वैकुंठं याति निश्चितम् ॥ २२ ॥

शालग्रामके संमुख देवमंदिरमें, शिवालयमें, तीर्थमें और नदीकिनारे जो गीताको पढता रहै सो निश्चय वैकुंठको जाताहै॥ २२॥

देवकीनंदनः कृष्णो गीतापाठेन तुष्यति ॥
यथा न वेदैर्दानैश्च यज्ञतीर्थव्रतादिभिः ॥ २३॥

जैसे श्रीदेवकीनंदन कृष्ण गीतापाठसे संतुष्ट होते हैं; तैसे वेदपाठ, दान, यज्ञ, तीर्थ और व्रतादिकोंसे नहीं संतुष्ट होते हैं॥ २३॥

गीताऽधीता च येनापि भक्तिभावेन चेतसा ॥
तेन वेदाश्च शास्त्राणि पुराणानि च सर्वशः ॥२४॥

जिनने भक्तिभावपूर्वक चित्त लगायके गीताका अध्ययन किया उसने सर्व वेद, शास्त्र और पुराणभी पढचुका॥ २४॥

योगिस्थाने सिद्धपीठे शिष्टाग्रे सत्सभासु च ॥

यज्ञे च विष्णुभक्ताग्रे पठन्याति परां गतिम् ॥ २५ ॥

योगीके स्थानमें, विंध्येश्वरी इत्यादि सिद्धपीठमें, श्रेष्ठपुरुषके संमुख, साधुसभामें, यज्ञमें और विष्णुभक्तके संमुख पाठ करनेसे मोक्ष पावेगा ॥ २५ ॥

गीतापाठश्रवणं के यः करोति दिने दिने ॥
क्रतवो वाजिमेधाद्याः कृतास्तेन सदक्षिणाः ॥ २६ ॥

जो दिनादिन प्रति गीताका पाठ और श्रवण करता है तिसने सब अग्निष्टोमादिक और अश्वमेधादिक दक्षिणासहित यज्ञ करचुका ॥२६॥

यः शृणोति च गीतार्थं कीर्तयेच्च स्वयं पुमान् ॥
श्रावयेच्च परार्थं वै स प्रयाति परं पदम् ॥ २७ ॥

जो गीताका अर्थ सुनै और आप कहै दूसरोंको श्रवण करावे सो परमपदको प्राप्त होताहै ॥ २७ ॥

गीतायाः पुस्तकं नित्यं योऽर्चयत्येव सादरम् ॥
विधिना भक्तिभावेन तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २८ ॥

जो आदरपूर्वक नित्य गीताके पुस्तकको विधिपूर्वक भक्तिभावसंयुक्त पूजेगा उसके पुण्यका फल सुनो ॥ २८ ॥

सकला चोर्वरा तेन दत्ता यज्ञे भवेत्किल ॥
व्रतानि सर्वतीर्थानि दानानि सुबहून्यपि ॥ २९ ॥

उस गीताके पूजनेवालेने यज्ञमें सर्व पृथ्वी दान देचुका, तथा सर्वव्रत, सर्वतीर्थ और बहुतसे दानभी देचुका ॥ २९ ॥

भूतप्रेतपिशाचाद्यास्तत्र नो प्रविशंति वै ॥
अभिचारोद्भवं दुःखं परेणापि कृतं च यत् ॥ ३० ॥

जिस घरमें गीताका पूजन होता है तहां भूत, प्रेत, पिशाचादिक

और दूसरेके कियेभये मंत्रयंत्रादिक अभिचारज दुःखभी नहीं प्रवेश कर सकते हैं ॥ ३० ॥

नोपसर्पन्ति तत्रैव यत्र गीतार्चनं गृहे ॥
तापत्रयोद्भवा पीडा नैव व्याधिभयं तथा ॥ ३१ ॥

जिसघरमें गीताका पूजन है तहां दैहिक, दैविक और भौतिक इन तीनों तापोंकी पीडा और रोगकृतपीडाभी नहीं होती है ॥ ३१ ॥

न शापो नैव पापं च दुर्गतिर्न च किंचन ॥
देहेऽरयः षडेते वै न बाधंते कदाचन ॥ ३२ ॥

वहां कोईका शाप और पाप और दुर्गति तथा देहमें रहे जो पांच ज्ञानेंद्रिय, एक मन ऐसे छः शत्रु वेभी पीडा नहीं करते हैं ॥ ३२ ॥

भगवत्परमेशाने भक्तिरव्यभिचारिणी ॥
जायते सततं तत्र यत्र गीताभिनंदनम् ॥ ३३ ॥

जहां गीताके अर्थका निरंतर विनोद होता है तहां भगवान्में अतिउत्तम अखंडभक्ति उत्पन्न होती है ॥ ३३ ॥

प्रारब्धं भजमानोऽपि गीताभ्यासे सदा रतः ॥
स मुक्तः स सुखी लोके कर्मणा नैवबध्यते ॥ ३४ ॥

जो सर्वकाल गीताहीके अभ्यासमें निरत है वह प्रारब्धवशासे संसारभी भोगता है, तोभी वह मुक्त और सुखी है, तथा कर्मसेभी बँधनेका नहीं ॥ ३४ ॥

महापापादिपापानि गीताऽध्यायी करोति चेत् ॥
न किंचित्स्पृशते तं तु पद्मपत्रमिवांभसा ॥ ३५ ॥

जो नित्य गीताका श्रवण, पठन, मनन करता होय और वह दैव-

योगसे जो भूलसें ब्रह्महत्यादिक महापापभी करे तो भी जलकरके कमलपत्रवत् लिप्त नहीं होता है ॥ ३५ ॥

स्नातो वा यदि वाऽस्नातः शुचिर्वा यदि वाऽशुचिः ॥
विभूतिं विश्वरूपञ्च संस्मरन्सर्वदा शुचिः ॥ ३६ ॥

स्नान किये होय अथवा न किये होय, पवित्र होय अथवा अपवित्र होय, विभूतियोग और विश्वरूपदर्शन अध्यायको पढताभया सदा पवित्र होता है ॥ ३६ ॥

अनाचारोद्भवं पापमवाच्यादिकृतं च यत् ॥
अभक्ष्यभक्षजं दोषमस्पृश्यस्पर्शजं तथा ॥ ३७ ॥
ज्ञाताज्ञातकृतं नित्यमिंद्रियैर्जनितं च यत् ॥
तत्सर्वं नाशमायाति गीतापाठेन तत्क्षणात् ॥ ३८ ॥

जो अनाचारसे और जो निंदितशब्द बोलनेसे, जो अभक्ष्यभक्षणसे जो न छूने योग्यके छूनेसे, पाप भये हों; तथा जो जान और अजानमें नित्य पाप भयेहों और जो इंद्रियोंसे पाप भया हो सो सर्व गीतापाठसे तत्काल नष्ट होता है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

सर्वत्र प्रतिभोक्ता च प्रतिग्राही च सर्वशः ॥
गीतापाठं प्रकुर्वाणो न लिप्येत कदाचन ॥ ३९ ॥

जो सर्वत्र भोजन करता हो सर्वप्रतिग्रह लेताहो उसके भी पापों करके गीतापाठसे लिप्त नहीं होता है ॥ ३९ ॥

रत्नपूर्णां महीं सर्वां प्रगृह्यापिविधानतः ॥
गीतापाठेन चैकेन शुद्धः स्फटिकवत्सदा ॥ ४० ॥

विधिहीन रत्नपूरित पृथिवीका दानभी लेके एक गीतापाठसे शुद्ध स्फटिकमणिवत् निष्पाप होताहै ॥ ४० ॥

यस्यांतःकरणं नित्यं गीतायां रमते सदा ॥
सर्वाग्निकः सदाजापी क्रियावान्स च पंडितः ॥ ४१ ॥

जिसका अंतःकरण सदा गीतामें रमता हो सो सर्वअग्निहोत्री, सदा जप करनेवाला, सो क्रियावान् और सोई पंडित है ॥ ४१ ॥

दर्शनीयः स धनवान्स योगी ज्ञानवानपि ॥
स एव याज्ञिको ध्यानी सर्ववेदार्थदर्शकः ॥ ४२ ॥

सोई दर्शनयोग्य है, सोई धनवान्, सोई योगी, सोई ज्ञानवान्, सोई याज्ञिक, सोई ध्यानी और सोई सर्ववेदोंके अर्थका देखनेवाला है ॥ ४२ ॥

गीतायाः पुस्तकं यत्र नित्यं पाठे प्रवर्त्तते ॥
तत्र सर्वाणि तीर्थानि प्रयागादीनि भूतले ॥ ४३ ॥

गीताका पुस्तक जहां नित्य पाठमें प्रवर्त्त हो तहां पृथिवीपरके सर्व प्रयागादितीर्थ सदा रहते हैं ॥ ४३ ॥

निवसंति सदा गेहे देहदेशे सदैव हि ॥
सर्वे देवाश्च ऋषयो योगिनः पन्नगाश्च ये ॥ ४४ ॥

और यहां घरमें और देहमें भी सर्व देव, ऋषि, योगी और पन्नगभी सदा वसते हैं ॥ ४४ ॥

गोपालबालकृष्णोपि नारदध्रुवपार्षदैः ॥
सहायो जायते शीघ्रं यत्र गीता प्रवर्त्तते ॥ ४५ ॥

जहां गीता प्रवृत्त होती है तहां नारद, ध्रुव और सर्व पार्षदनसहित गोपाल-बालकृष्ण शीघ्रही सहाय होते हैं ॥ ४५ ॥

यत्र गीताविचारश्च पठनं पाठनं तथा ॥
तत्राहं निश्चितं पार्थ निवसामि सदैव हि ॥ ४६ ॥

श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं कि, हे पार्थ ! जहां नित्य गीताका विचार होता है; तहां मैं निश्चय सर्वदा रहता हूं ॥ ४६ ॥

गीता मे हृदयं पार्थ गीता मे सारउत्तमः ॥
गीता मे ज्ञानमत्यग्र्यं गीता मे ज्ञानमक्षयम् ॥ ४७ ॥

हे अर्जुन ! गीता मेरा हृदय है, गीता मेरा उत्तम सार है, गीता मेरा अतिअग्रज्ञान और अक्षयज्ञानभी है ॥ ४७ ॥

गीता मे चोत्तमं स्थानं गीता मे परमं गृहम् ॥
गीताज्ञानं समाश्रित्य त्रिलोकीं पालयाम्यहम् ॥ ४८ ॥

गीता मेरा उत्तमस्थान है और गीता मेरा उत्तम सार है, गीताके ज्ञानको धारण किये भये तीनों लोकोंका पालता हूं ॥ ४८ ॥

गीता मे परमा विद्या ब्रह्मरूपा न संशयः ॥
अर्द्धमात्राक्षरा नित्या त्वनिर्वाच्यपदात्मिका ॥ ४९ ॥

गीता मेरी उत्तम विद्या है, गीता ब्रह्मरूप है, इसमें संशय नहीं । अर्द्धमात्रा, नाशरहित, सनातन, अनिर्वाच्यपदरूप ऐसी परावाणीरूप मेरी यह गीता है ॥ ४९ ॥

गीतानामानि वक्ष्यामि गुह्यानि शृणु पांडव ॥
कीर्त्तनात्सर्वपापानि विलयं यांति तत्क्षणात् ॥ ५० ॥

हे पांडव ! गीताके जो गुप्त नाम हैं सो मैं तुमसे कहता हूं जिनके कीर्तनसे तत्काल सर्वपापक्षय होते हैं ॥ ५० ॥

## अथ गीतानामानि ।

गीता गंगा च गायत्री सीता सत्या सरस्वती ॥
ब्रह्मविद्या ब्रह्मवल्ली त्रिसंध्या मुक्तगेहिनी ॥ ५१ ॥

अर्द्धमात्रा चिदानंदा भवघ्नी भयनाशिनी ॥
वेदत्रयी पराऽनंता तत्त्वार्थज्ञानमञ्जरी ॥ ५२ ॥
इत्येतानि जपन्नित्यं नरो निश्चलमानसः ॥
ज्ञानसिद्धिं लभेच्छीघ्रं तथांते परमं पदम् ॥ ५३ ॥

अब गीताके नाम कहते हैं—गीता १ गंगा २ गायत्री ३ सीता ४ सत्या ५ सरस्वती ६ ब्रह्मविद्या ७ ब्रह्मवल्ली ८ त्रिसंध्या ९ मुक्तगेहिनी १० अर्द्धमात्रा ११ चिदानंदा १२ भवघ्नी १३ भयनाशिनी १४ वेदत्रयी १५ परा १६ अनंता १७ तत्त्वार्थज्ञानमंजरी ॥ १८ ॥ ५१ ॥ ॥ ५२ ॥ गीताके इन अठारह नामनको नित्य मन स्थिर करके जपता रहै तो शीघ्रही ज्ञानसिद्धिको प्राप्त होके, अंतमें मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ ५३ ॥

पाठेऽसमर्थः संपूर्णे तदर्द्धं पाठमाचरेत् ॥
तदा गोदानजं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥ ५४ ॥

जो संपूर्ण पाठ न करसके तो आधीगीताका याने नव अध्यायनका पाठ करे, तो एक गोदानका पुण्य पावै; इसमें संशय नहीं ॥ ५४ ॥

षडंशं जपमानस्तु गंगास्नानफलं लभेत् ॥
त्रिभागं पठमानस्तु सोमयागफलं लभेत् ॥ ५५ ॥

छठे अंशको याने तीन अध्यायोंका नित्य पाठ करै तो गंगास्नानका फल पावै. तीसरे भागका याने छः अध्यायनका नित्य पाठ करनेसे सोमयागका फल पावै ॥ ५५ ॥

तथाऽध्यायद्वयं नित्यं पठमानो निरंतरम् ॥
इंद्रलोकमवाप्नोति कल्पमेकं वसेद्ध्रुवम् ॥ ५६ ॥

दो अध्यायोंका नित्य पाठ करता रहै तो इंद्रलोकको प्राप्त होके, वहां एककल्प वास करै ॥ ५६ ॥

एकमध्यायकं नित्यं पठते भक्तिसंयुतः ॥
रुद्रलोकमवाप्नोति गणो भूत्वा वसेच्चिरम् ॥ ५७ ॥

जो एकही अध्यायका निरंतर नेमसे भक्तिपूर्वक पाठ करतारहै तो रुद्रलोकको प्राप्त होके वहां शंकरका गण होके, बहुतकाल-पर्यंत याने कल्पपर्यंत रहिके मुक्त होताहै ॥ ५७ ॥

अध्यायार्द्धं च पादं वा नित्यं यः पठते जनः ॥
स प्राप्नोति रवेर्लोकं मन्वंतरशतं समाः ॥ ५८ ॥

जो मनुष्य गीताका आधा अथवा पाव अध्यायकाभी नित्यनेमसे पाठ करता रहै, तो वह सूर्यलोकमें सौ मन्वंतरके वर्षोंपर्यंत वास करै ॥ ५८ ॥

गीतायाः श्लोकदशकं सप्त पंच चतुष्टयम् ॥
त्रिद्व्येकमर्द्धं वा श्लोकानां च पठेन्नरः ॥
चंद्रलोकमवाप्नोति वर्षाणामयुतायुतम् ॥ ५९ ॥

जो गीताके दशश्लोक अथवा सात पांच चार तीन दो एक अथवा आधे श्लोककाभी निरंतर पठन करै, तो अयुतायुतवर्ष याने दशकोटिवर्ष १०,००,००,००० चंद्रलोकमें वास करेगा ॥ ५९ ॥

गीतार्थमेककालेपि श्लोकमध्यायमेव च ॥
स्मरंस्त्यक्त्वा जनो देहं प्रयाति परमं पदम् ॥ ६० ॥

जो एककालभी गीताके एकश्लोकका अथवा अध्यायका अर्थ स्मरताभया देहको त्यागै तो मोक्षको पावै ॥ ६० ॥

गीतार्थं वापि पाठं वा शृणुयादंतकालतः ॥
महापातकयुक्तोपि मुक्तिभागी भवेज्जनः ॥ ६१ ॥

जो अंतकालके समयमें गीताका अर्थ अथवा पाठ सुनता देह त्यागे, तो महापातकीभी मुक्त होय ॥ ६१ ॥

गीतापुस्तकसंयुक्तः प्राणांस्त्यक्त्वा प्रयाति यः ॥
स वैकुंठमवाप्नोति विष्णुना सह मोदते ॥ ६२ ॥

जो गीताके पुस्तकयुक्त प्राणोंको त्यागे, सो विष्णुलोकको प्राप्त होके विष्णुके समीप आनंद करै ॥ ६२ ॥

गीताध्यायसमायुक्तो मृतो मानुषतां व्रजेत् ॥
गीताभ्यासं पुनः कृत्वा लभते मुक्तिमुत्तमाम् ॥ ६३ ॥

जो मरणसमयमें गीतापुस्तकका एक अध्याय भी समीप होय तो मनुष्यजन्म पायके फिर गीताभ्यास करके मुक्त होय ॥ ६३ ॥

गीतोच्चारणसंयुक्तो म्रियमाणो गतिं लभेत् ॥
यद्यत्कर्म च सर्वत्र गीतापाठं प्रकीर्त्तयेत् ॥
तत्तत्कर्म च निर्दोषं कृत्वा पूर्णमवाप्नुयात् ॥ ६४ ॥

मरनेपरभी जो गीता ऐसा उच्चारण करके मरे तो भी मुक्त होय जो जो कर्म करै उस उसमें गीतापाठ करे तो निर्दोषकर्मका संपूर्ण फल पावे ॥ ६४ ॥

पितॄनुद्दिश्य यः श्राद्धे गीतापाठं करोति वै ॥
संतुष्टाः पितरस्तस्य निरयाद्यांति सद्गतिम् ॥ ६५ ॥

जो श्राद्धमें पितरनके निमित्त गीताका पाठ करे तो वे पितर संतुष्ट भयेहुये नरकसे मुक्तिको जाँय ॥ ६५ ॥

गीतापाठे तु संतुष्टाः पितरः श्राद्धतर्पिताः ॥
पितृलोकं प्रयांत्येव पुत्राशीर्वादतत्पराः ॥ ६६ ॥

गीतापाठसे प्रसन्न पितर पुत्रको आशीर्वाद देतेभये पितृलोकको जाते हैं ॥ ६६ ॥

लिखित्वा धारयेत्कंठे बाहुदंडे च मस्तके ॥
नश्यंत्युपद्रवाः सर्वे विघ्नरूपाश्च दारुणाः ॥ ६७ ॥

गीताको लिखके गलेमें, भुजापर अथवा मस्तकमें धारण करे तो उसके विघ्नरूप दारुण उपद्रव नाश होयँ ॥ ६७ ॥

गीतापुस्तकदानं च धेनुपुच्छसमन्वितम् ॥
दत्वातत्सद्द्विजे सम्यक्कृतार्थो जायते जनः ॥६८ ॥

गोदान देनेपर गाईकी पूंछसहित हाथमें गीताका पुस्तक लेके जिसने दान दिया वह सर्व करचुका ॥ ६८ ॥

पुस्तकं हेमसंयुक्तं गीतायाः शुद्धमानसः ॥
दत्वा विप्राय विदुषे जायते न पुनर्भवे ॥ ६९ ॥

सुवर्णसंयुक्त गीतापुस्तकका दान जो शुद्धमनसे विद्वान् ब्राह्मणको देय, सो फिर जन्म न पावे ॥ ६९ ॥

शतपुस्तकदानं च गीतायाः प्रकरोति यः ॥
सयाति ब्रह्मसद्मनं पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ ७० ॥

जो गीताके सौ पुस्तकोंका दान करे, तो जिसलोकसे फिर इहां नहीं जन्मता है; उस वैकुंठको जाता है ॥ ७० ॥

गीतादानप्रभावेण सप्तकल्पावधीः समाः ॥
विष्णुलोकमवाप्नोति विष्णुना सह मोदते ॥ ७१ ॥

गीतादानके प्रभावसे विष्णुलोकमें सात कल्पपर्यंत विष्णुसंयुत रहके आनंद करे ॥ ७१ ॥

सम्यक् श्रुत्वा च गीतार्थं पुस्तकं यः प्रदापयेत् ॥
तस्मै प्रीतोस्मि भगवान्ददामि मनसेप्सितम् ॥ ७२ ॥

श्रीकृष्ण कहते हैं कि, जो गीताका अर्थ सुनिके पुस्तकका दान करे; उसको मनवांछित फल देता हूं ॥ ७२ ॥

देहं मानुषमाश्रित्य चातुर्वर्ण्येषु भारत ॥ न शृणोति पठत्येव गीताममृतरूपिणीम्॥७३ ॥ हस्तात्त्यक्त्वाऽमृतं प्राप्तं कष्टात्क्ष्वेडं समश्नुते ॥ पीत्वा गीतामृतं लोके लब्ध्वा मोक्षं सुखी भवेत् ॥ ॥ ७४ ॥

जो मनुष्य देह पाइके इस अमृतरूपिणी गीताको नहीं पढताहै और नहीं सुनता है सो हाथमें आयेभये अमृतको त्यागके विषको कष्टसे पीता है; इस गीतारूप अमृतका पान करके मोक्षको प्राप्त होके सुखी होता है ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

जनैः संसारदुःखार्त्तैर्गीताज्ञानं च यैःश्रुतम् ॥
संप्राप्तममृतं तैश्च गतास्ते सदनं हरेः ॥ ७५ ॥

संसारदुःखकरके पीडित जिन मनुष्योंने इस गीताके ज्ञानको सुनां वे अमृत होके विष्णुलोकको प्राप्त भये ॥ ७५ ॥

गीतामाश्रित्य बहवो भूभुजो जनकादयः ॥
निर्धूतकल्मषा लोके गतास्ते परमं पदम् ॥ ७६ ॥

इस गीताका आश्रय करके, बहुतसे जनकादिक राजा पापरहित होके परमपदको गये हैं ॥ ७६ ॥

गीतासु न विशेषोस्ति जनेषूच्चावचेषु च ॥
ज्ञानेष्वेव समग्रेषु समा ब्रह्मस्वरूपिणी ॥ ७७ ॥

गीतामें नीच ऊंचका विशेष नहीं, आत्मा सबमें; समान है, इससे यह ब्रह्मस्वरूपिणी है ॥ ७७ ॥

योऽभ्यसूयति गीतां च निंदां वा प्रकरोति च ॥

प्राप्नोति नरकं घोरं यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ७८ ॥

जो गीताकी ईर्षा और निंदा करता है सो प्रलयपर्यंत नरकमें रहता है ॥ ७८ ॥

अहंकारेण मूढात्मा गीतार्थं नैव मन्यते ॥
कुंभीपाके स पच्येत यावत्कल्पलयो भवेत् ॥ ७९ ॥

जो अहंकारसे गीताके अर्थको नहीं मानता है, सो प्रलयकालपर्यंत कुंभीपाक नरकमें पचता है ॥ ७९ ॥

गीतार्थं वाच्यमानं यो न शृणोति समीपतः ॥
श्वसूकरभवां योनिमनेकां सोऽधिगच्छति ॥ ८० ॥

जो गीता बँचतीभईको नजदीक जाके नहीं सुनता है सो कुत्ता और सुवरके अनेक जन्म पाता है ॥ ८० ॥

चौर्यं कृत्वा च गीतायाः पुस्तकं यः समानयेत् ॥
न तस्य स्यात्फलं किंचित्पठनं च वृथा भवेत् ॥ ८१ ॥

जो गीताके पुस्तक चोरीसे लाइके उसपर पाठ करे तो उसको पाठका फल तो नहीं मिले और वृथा परिश्रम होता है ॥८१॥

यःश्रुत्वा नैव गीतार्थं मोदते परमादरात् ॥
नैवाप्नोति फलं लोके प्रमादाच्च वृथा श्रमम् ॥ ८२ ॥

जो गीताके अर्थको सुनके अतिआदरसे आनंद नहीं पाता है उसको फल नहीं मिलता है वह प्रमादसे वृथा होता है ॥ ८२ ॥

गीतां श्रुत्वा हिरण्यं च पट्टांबरसुवेष्टनम् ॥
निवेदयेच्च तद्वेष्टच प्रीतये परमात्मनः ॥ ८३ ॥

गीताको सुनके सुवर्ण और रेशमी वस्त्र पुस्तक लपेटनेका उस पर लपेटिके परमात्माकी प्रीतिके वास्ते बाँचनेवालेको देना ॥ ८३ ॥

वाचकं पूजयेद्भक्त्या द्रव्यवस्त्राद्युपस्करैः ॥
अन्नैर्बहुविधैः प्रीत्या तुष्यतां भगवानिति ॥ ८४ ॥

द्रव्य, वस्त्र, आभूषणादिकोंकरके वक्ताका पूजन करके नाना-प्रकारके अन्न देना कि, भगवान् प्रसन्न होवे, इस बुद्धिसे देना ॥ ८४ ॥

माहात्म्यमेतद्गीतायाः कृष्णप्रोक्तं सनातनम् ॥
गीतांते पठते यस्तु यथोक्तं फलमाप्नुयात् ॥ ८५ ॥

यह श्रीकृष्णका कहाभया सनातन गीताका माहात्म्य इसके गीतापाठके अंतमें पढे तो यथोक्त फल पावै ॥ ८५ ॥

गीतायाः पठनं कृत्वा माहात्म्यं नैव यः पठेत् ॥
वृथा पाठफलं तस्य श्रम एव हि केवलम् ॥ ८६ ॥

गीतापाठ करके माहात्म्यको न बाँचे तो उसके पाठ करनेका श्रम वृथाही है. पाठका फल नहीं पाताहै ॥ ८६ ॥

एतन्माहात्म्यसंयुक्तं गीतापाठं करोति यः ॥
श्रद्धया यः शृणोत्येव दुर्लभां गतिमाप्नुयात् ॥ ८७ ॥

जो इस माहात्म्यके संयुक्त गीतापाठ करेगा अथवा सुनेगा सो दुर्लभ मोक्षपदको पावेगा ॥ ८७ ॥

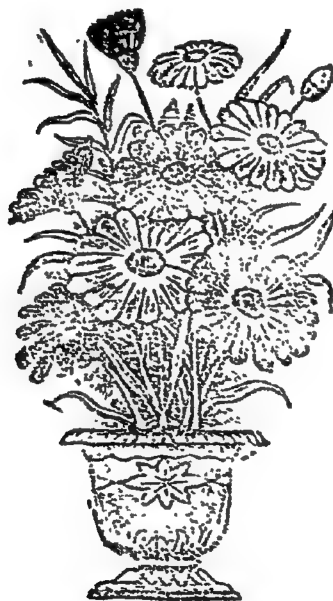
श्रुत्वा पठित्वा गीतां च माहात्म्यं यः शृणोति वै ॥
तस्य पुण्यफलं लोके भवेद्धि मनसेप्सितम् ॥ ८८ ॥

जो गीताको सुनके और पढके माहात्म्यको पढते सुनते हैं वे मनइच्छित फलको पावते हैं ॥ ८८ ॥

इति श्रीमद्वाराहपुराणे सूतशौनकसंवादे श्रीकृष्णप्रोक्तं श्रीमद्भगवद्गीतामाहात्म्यं संपूर्णम् ।

इति श्रीमत्सुकुलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचिता श्रीमद्भगवद्गीतामाहात्म्यचंद्रिकाव्याख्या समाप्तिमगात् ॥

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥ ॥ शुभं भवतु ॥



आपका–खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस, खेतवाड़ी–बंबई.

श्रीगणेशाय नमः ।

# श्रीमद्भगवद्गीता ।

## सान्वय-अमृततरंगिणीभाषाटीकासमेता ।



श्रीर्जयति ।

प्रणम्य परमात्मानं कृष्णं रामानुजं गुरुम् ॥
गीताव्याख्यामहं कुर्वे गीतामृततरंगिणीम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र उवाच ।

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ॥
मामकाः पांडवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥ १ ॥

जब श्रीकुरुक्षेत्रमें दुर्योधनादिक धृतराष्ट्रके पुत्र और युधिष्ठिरादिक पांडुके पुत्र आपआपकी सेनाओंको लेके युद्धके वास्ते तयार भये तब यहां हस्तिनापुरमें धृतराष्ट्र संजयसे पूछने लगे कि, हे संजय ! धर्मस्थल कुरुक्षेत्रमें युद्धकी इच्छा कियेभये इकट्ठे भयेहुये मेरे पुत्र और पांडुके पुत्र ये निश्चयकरके क्या करनेको प्रारंभ करते भये सो कहो ॥ १ ॥

संजय उवाच ।

दृष्ट्वा तु पांडवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ॥
आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

ऐसे धृतराष्ट्रके वाक्य सुनिके संजय कहते भये कि, हे राजन् ! राजा दुर्योधने तब व्यूहरचनायुक्त पांडवनकी सेनाको देखके और द्रोणाचार्यके समीपमें जाके वचन बोलतेभये ॥ २ ॥

पश्यैतां पांडुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ॥
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥ ३ ॥

हे आचार्य । जो तुम्हारो बुद्धिमान् शिष्य द्रुपदका पुत्र धृष्टद्युम्न तिसकरके यथायोग्यस्थानोंपर स्थापित पांडुपुत्रोंकी इस सर्वोत्तम सेनांको आप देखो ॥ ३ ॥

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ॥
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ ४ ॥

इससेनामें जो युद्धकरनेमें भीम अर्जुनके समान बडे धनुषधारी शूर हैं वे ये कि, युयुधान और विराट और महारथी द्रुपद ॥ ४ ॥

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशीराजश्च वीर्यवान् ॥
पुरुजित्कुंतिभोजश्च शैब्यश्च नरपुंगवः ॥ ५ ॥

धृष्टकेतु चेकितान और बलवान् काशीका राजा तथा पुरुजित् और कुंतिभोज और नरोंमें श्रेष्ठ शैब्य ॥ ५ ॥

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ॥
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥ ६ ॥

पराक्रमी और उत्तमशक्तिवाला और धीरजवान् ऐसा युधामन्यु सुभद्राका पुत्र अभिमन्यु और महारथवाले सबही द्रौपदीके पुत्र जिसमें हैं इसप्रकार पांडवोंकी सेना रची है ॥ ६ ॥

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ॥
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ॥ ७ ॥

हे द्विजोत्तम । हमारेनमें जो श्रेष्ठ और हमारी सेनाके पति हैं उनको जाननेके वास्ते तुह्मारेसे कहता हूं तिन्होंको जानो ॥ ७ ॥

भवान् भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः ॥
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥ ८ ॥

जो हमारी सेनामें मुख्य हैं उनमें एक आप हो और भीष्म और कर्ण

और संग्रामके जीतनेवाले कृपाचार्य अश्वत्थामा और विकर्ण और तैसा ही राजा सोमदत्तका पुत्र भूरिश्रवा ॥ ८ ॥

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ॥
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ९ ॥

और मेरेवास्ते जीवितको त्यागनेवाले और नानाशस्त्रोंके प्रहारकरनेवाले और भी सर्व युद्धचतुर ऐसे बहुत शूर हैं ॥ ९ ॥

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ॥
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥ १० ॥

हमारी सेना भीष्मकरके रक्षित है तिससे असमर्थ है और इनकी यह सेना भीमकरके रक्षित है इससे बलिष्ठ है. तात्पर्य यह है कि, भीष्म उभयपक्षपाती हैं ॥ १० ॥

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ॥
भीष्ममेवाभिरक्षंतु भवंतः सर्वएव हि ॥ ११ ॥

इससे सर्व नाकेनपर यथायोग्य आगवनायेभये खडे रहके तुम सबही निश्चयकरके भीष्मका ही संरक्षण करो ॥ ११ ॥

तस्य संजनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ॥
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान् ॥ १२ ॥

ऐसे सुनके बडेप्रतापवान् कौरवनमें वृद्ध पितामह भीष्म उस दुर्योधनको हर्ष उत्पन्नकरनेवाले ऊंचेस्वरसे सिंहनादसे गर्जनाकर शंखको बजातेभये ॥ १२ ॥

ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ॥
सहसैवाभ्यहन्यंत स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ १३ ॥

तबै शंखै और भेरी और तासे नगारे रणसिंहे एकसंग ही बजतेभये सो शब्द सिश्रित भारी होताभया ॥ १३ ॥

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यंदने स्थितौ ॥
माधवः पांडवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ॥ १४ ॥

तबै जिसमें श्वेत घोड़े जोड़े हैं ऐसे श्रेष्ठ रथपर बैठेभये कृष्ण और अर्जुन दिव्य शंखोंको बजातेभये ॥ १४ ॥

पांचजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः ॥
पौंड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदरः ॥ १५ ॥

तहां श्रीकृष्णने पांचजन्यको, अर्जुन देवदत्तको, भयंकर है कर्म जिसका ऐसा वृकोदर याने तीक्ष्णाग्निउदरवाला अर्थात् भीम पौंड्रनामक महाशंखको बजातेभये ॥ ९ ॥

अनंतविजयं राजा कुंतीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६ ॥

कुंतीका पुत्र राजा युधिष्ठिर अनंतविजयशंखको, नकुल और सहदेव सुघोष और पुष्पकशंखोंको, क्रमसे बजातेभये याने नकुल सुघोषको और सहदेव मणिपुष्पको बजातेभये ॥ १६ ॥

काश्यश्च परमेष्वासः शिखंडी च महारथः ॥
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥ १७ ॥

श्रेष्ठधनुषवाला काशीका राजा और महारथ शिखंडी और धृष्टद्युम्न और विराट और शत्रुनकरिके अजित सात्यकि यादव ॥ १७ ॥

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ॥
सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान्दध्मुः पृथक्पृथक् ॥ १८ ॥

हे पृथ्वीनाथ! राजाद्रुपद और सर्व द्रौपदीके पुत्र और महाबाहु अभिमन्यु ये न्यारे न्यारे शंखोंको बजातेभये ॥ १८ ॥

**स घोषो धार्त्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ॥**
**नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥ १९ ॥**

सो मिश्रित ऐसा बडा शब्द आकाश और पृथिवीको शब्दायमान करनेवाला धृतराष्ट्रके पुत्रोंके हृदयोंको ही विदीर्णकरताभया ॥ १९ ॥

**अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्त्तराष्ट्रान्कपिध्वजः ॥**
**प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्य पांडवः ॥ २० ॥**
**हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ॥**
**सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥ २१ ॥**

हे महीपते! तब शस्त्रपाते प्रवृत्तहोनेके समयमें कपिध्वज पांडव अर्जुन तुम्हारे पुत्रोंको युद्धार्थ खडे देखके तब धनुषको ऊंचाकरके श्रीकृष्णसे ये वाक्य बोलतेभये कि, हे अच्युत! दोनों सेनाओंके मध्यमें मेरे रथको स्थापितकरो ॥ २० ॥ २१ ॥

**यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ॥**
**कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे ॥ २२ ॥**

मैं प्रथमे इन युद्धइच्छावाले खडेभयेनको देखूंगा कि, इस रणखेतमें मेरे साथ कौनकरके युद्धकरनो योग्य है ॥ २२ ॥

**योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः ॥**
**धार्त्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥ २३ ॥**

जो ये जितने दुर्बुद्धि धृतराष्ट्रपुत्रके युद्धमें प्रियइच्छनेवाले यहां इकट्ठे भयेहैं इन युद्धकरनेवालोंको मैं देखूंगा ॥ २३ ॥

संजय उवाच।

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ॥
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥ २४ ॥
भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ॥
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति ॥ २५ ॥

संजय धृतराष्ट्रसे कहतेहैं कि,हे भारत ! अर्जुनकरके ऐसे कहेभये श्रीकृष्ण दोनों सेनाओंके बीचमें श्रेष्ठरथको स्थापितकरके भीष्म और द्रोणाचार्यके सामने और सब राजाओंके सामने इसप्रकार बोलतेभये कि,हे पार्थ!ये इकट्ठेभये जो कुरुवंशी तिनको देखो ॥२४॥२५॥

तत्राऽपश्यत्स्थितान्पार्थः पितॄनथ पितामहान् ॥
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ॥
श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ॥
तान्समीक्ष्य स कौंतेयः सर्वान्बंधूनवस्थितान् ॥
कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ॥ २६ ॥ २७ ॥

श्रीकृष्णजीके कहनेपर अर्जुनने उस रणमें खडेहुए पितृ ( मिता-सहशभूरिश्रवादिक काका ) पितामह ( भीष्म सोमदत्तादिक ) आचार्य ( द्रोणाचार्यादिक ) मामा ( शकुनिशल्यादिक ) भ्राता ( दुर्योधनादिक ) पुत्र ( द्रोपदीमें पांचों से भये जो पांच ) पौत्र ( लक्ष्मणादिकोंके पुत्र ) तथा सखा ( अश्वत्थामा जयद्रथादिक ) ससुर ( द्रुपदादिक ) और सुहृद (कृतवर्मादिक)इनको देखतेभये ऐसे दोनों सेनाओंमें भी उन सब बंधुनको खडे देखि के सो कुंतीपुत्र अर्जुन अति कृपाकरके व्याप्त खेदित होते होते यह बोलते भये ॥ २६ ॥ २७ ॥

अर्जुन उवाच ।

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥
सीदंति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ॥
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥ २८ ॥ २९ ॥

अर्जुन कहते हैं कि, हे कृष्ण ! युद्धइच्छावाले खडेभये इन स्वजनोंको देखिके मेरे गात्र शिथिल होतेहैं और मुख सूखता है और मेरे शरीरमें कंप और रोमांच होते हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥

गांडीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ॥
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥ ३० ॥

हाथसे गांडीवधनुप गिरापरता है और त्वचाभी जरीजातीहै और खडेहोनेको भी नहीं सकता हूं और मेरा मन भ्रमतासरीखाहै ॥ ३० ॥

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ॥
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥ ३१ ॥

और हे केशव ! निमित्तभी विपरीत देखता हूं और संग्राममें स्वजनोंको मारके फिर कल्याणभी नहीं देखताहूं ॥ ३१ ॥

न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ॥
किंनो राज्येन गोविंद किं भोगैर्जीवितेन वा ॥ ६२ ॥

हे कृष्ण ! विजय और राज्य और सुख नहीं चाहताहूं. हे गोविंद ! हमारेको राज्यकरके भोगकरके क्या प्रयोजन ? अथवा जीवनेकर भी क्या प्रयोजन है ॥ ३२ ॥

येषामर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ॥
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥ ३३ ॥

हमको जिनकेवास्ते भोग सुख और राज्य चाहियेथा वे ये प्राण और धनोंको त्यागके युद्धमें खडे हैं ॥ ३३ ॥

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ॥
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः संबंधिनस्तथा ॥ ३४ ॥

ये सर्व मेरे आचार्य पितातुल्य काका पुत्र और तैसेंही पितामह मामा ससुर नातीपोता साले तथा और संबंधी हैं ॥ ३४ ॥

एतान्न हंतुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ॥
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥ ३५ ॥

हे मधुसूदन ! तीनोंलोकोंके राज्यके वास्ते भी मेरेको ये मारते होयँ तोभी इनको मारनेकी नहीं इच्छाकरताहूं तो पृथिवीके-वास्ते क्यों मारूंगा ॥ ३५ ॥

निहत्य धार्त्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ॥
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ॥ ३६ ॥

हे जनार्दन ! धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मारके हमको क्या प्रसन्नता होयगी इन आततायिनेको मारके हमको पापही लगेगा ॥ आततायी-लक्षण॥दोहा—अग्निदेइ विषदेइ जो, क्षेत्रदारहरजोइ ॥ धनहरसन्मुखश-स्त्रकर, आततायिषट्होइ ॥ १ ॥ ३६ ॥

तस्मान्नार्हा वयं हंतुं धार्त्तराष्ट्रान्स्वबांधवान् ॥
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥ ३७ ॥

तिससे कि, इनके मारनेका पाप ही होयगा तिससे हमारे बंधू धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मारनेके वास्ते हम नहीं योग्य हैं हे माधव ! निश्चयपूर्वक स्वजनोंको मारके कैसे सुखी होयंगे ॥ ३७ ॥

यद्यप्येते न पश्यंति लोभोपहतचेतसः ॥
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥
कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्त्तितुम् ॥

कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

हे जनार्दन ! लोभकरके जिनके चित्त भ्रष्ट भयेहैं ऐसे ये दुर्योधनादिक कुलक्षयकरनेके दोषको और मित्रद्रोहमें पापको यद्यपि नहीं देखते हैं नहीं जानतेहैं तोभी कुलक्षयकृत दोषको देखतेभये हमकरके इस पापसे निवृत्त होनेके वास्ते कैसे न जानना चाहिये ॥ ३९ ॥

कुलक्षये प्रणश्यंति कुलधर्माः सनातनाः ॥
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥ ४० ॥

कुलके क्षयहोनेसे सनातन कुलके धर्म नाश होतेहैं फिर धर्म नष्टहोनेसे सर्व कुलको अधर्म जीतलेताहै याने कुलको अप्रतिष्ठित करदेताहै ॥ ४० ॥

अधर्माऽभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यंति कुलस्त्रियः ॥
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ॥ ४१ ॥

हे कृष्ण ! अधर्मकरके कुलको अप्रतिष्ठितहोनेसे कुलकी स्त्रीजन दुष्ट होयंगी हे वृष्णिवंशोद्भव ! उन दुष्ट स्त्रियनमें वर्णसंकर उत्पन्न होयगा ॥ ४१ ॥

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ॥
पतंति पितरो ह्येषां लुप्तपिंडोदकक्रियाः ॥ ४२ ॥

जिससे कि, जिनके पितर पिंडोदकक्रिया प्राप्तभयेविना संसारमें पडतेहैं और इसीसे कुलघातिनके कुलको वह वर्णसंकर नरकप्राप्तिही के हेतु उत्पन्न होताहै ॥ ४२ ॥

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ॥
उत्साद्यंते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥ ४३ ॥

जो कुलघाती हैं उनके जो ये वर्णसंकरकारक दोष तिनकरके जातिधर्म और सनातन कुलधर्म नष्ट होतेहैं ॥ ४३ ॥

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ॥
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥ ४४ ॥

हे जनार्दन! जिनके कुलधर्म नष्ट भये उन मनुष्योंको नरकमें अवश्य वास होताहै ऐसा सुनतेहैं ॥ ४४ ॥

अहो बत महत्पापं कर्त्तुं व्यवसितता वयम् ॥
यद्राज्यसुखलोभेन हंतुं स्वजनमुद्यताः ॥ ४५ ॥

अहो कष्ट! हमे बडेपापको करनेको निश्चयकिये हैं जो राज्यसुखलोभकरके स्वजनोंको मारनेका उद्योगकियेहैं ॥ ४५ ॥

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ॥
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥ ४६ ॥

जो हाथमें शस्त्रलियेहुये धृतराष्ट्रके पुत्र अशस्त्रको और अप्रतीकारको याने जो मैं बदला नहीं लेताहूं ऐसे मेरेको रणमें मारेंगे सो मारना भी मेरा अतिकल्याणरूप होयगा ॥ ४६ ॥

संजय उवाच ।

एवमुक्त्वाऽर्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ॥
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥ ४७ ॥

राजाधृतराष्ट्रसे संजय कहतेहैं कि, संग्राममें अर्जुन ऐसे कहके बाणसंयुक्त धनुष डारिके शोकव्याकुलमनहुआ भया रथके पिछाडी जायके रथमें बैठरहताभया ॥ ४७ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अर्जुनविषादयोगोनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इति श्रीमत्सुकुलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां गीतामृततरंगिण्यांप्रथमाध्यायप्रवाहः ॥ १ ॥

संजय उवाच।

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्।
विषीदंतमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः॥ १॥

राजा धृतराष्ट्रसे संजय कहते हैं कि, जो प्रथम अध्यायमें करुणावाक्य कहे वैसेही कृपाकरके व्याप्त आंसूनके भरनेसे नेत्र व्याकुल विषादयुक्त उस अर्जुनसे मधुसूदन भगवान् ये वाक्य बोलते भये॥ १॥

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्॥
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्त्तिकरमर्जुन॥ २॥

जो बोले सो कहतेहैं कि, हे अर्जुन! जो अनार्यनके सेवनेयोग्य नरकको लेजानेवाला और अपकीर्त्तिका करनेवाला ऐसा यह मोह तुमको ऐसे विषमस्थलमें कैसे प्राप्तभया॥ २॥

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते॥
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप॥ ३॥

हे पृथाके पुत्र! तुम कायरताको न ग्रहणकरो तुम्हारेमें यह नहीं योग्य है हे परंतप! तुच्छ हृदयकी दुर्बलताकारके कायरताको छोडिके खडेहोजावो॥ ३॥

अर्जुन उवाच।

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन॥
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन॥ ४॥

ऐसे कृष्णके वाक्य सुन अर्जुन बोले कि, हे मधुसूदन! मैं संग्राममें भीष्म और द्रोणाचार्य से बाणोंकरके कैसे युद्धकरूंगा हे अरिसूदन! ये दोनों पूजनेयोग्य हैं यहां मधुसूदन कहनेका तात्पर्य यह कि, आप दैत्यहंता हो तो सज्जनोंसे क्यों युद्धकरातेहो अरिसूदन कहनेका तात्पर्य यह कि, जो शत्रुनाशक हो तो भीष्मादिक पूज्यनपर बाणप्रहार क्यों कराते हो॥ ४॥

गुरूनहत्वा हि महानुभावाञ्छ्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यम-
पीह लोके ॥ हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुञ्जीय
भोगान्रुधिरप्रदिग्धान् ॥ ५ ॥

इस लोकमें अतिउत्तमप्रभाववाले गुरुनको मारेविना भिक्षाका अन्न भी खानेको कल्याणही जानना और अर्थ याने द्रव्यकी है कामना जिनके ऐसे गुरुनको इस संग्राममें मारके रक्तसे भरेभये भोगोंको भोगोंगा ॥ ५ ॥

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो यद्वा जयेम
यदि वा नो जयेयुः ॥ यानेव हत्वा न जिजीवि-
षामस्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥ ६ ॥

यह भी नहीं जानतेहैं कि, हमारेमें कौन बली है नजाने हम जीतेंगे किंवा ये हमको जीतें जिनको मारके हम जीना नहीं चाहतेहैं वे धृतराष्ट्रके पुत्र सन्मुख ही खडेहैं ॥ ६ ॥

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्म-
संमूढचेताः ॥ यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥ ७ ॥

कार्पण्य यह कि,हम इनको मारके कैसे जियेंगे तथा जो कुलक्षयका दोष इन कार्पण्य और कुलक्षय दोषोंकरके मेरा क्षत्रियस्वभाव विध्वंसित भयाहै इसीसे धर्ममेंभी मेरा चित्त चकित भयाहै जैसे कि,क्षत्रिय धर्म-युद्ध अथवा भिक्षान्नभोजन इनमें कौन कल्याणकारक है ऐसे चित्त चकितहै ऐसा मैं तुम्हारा शिष्य तुमको पूंछताहूं जो मेरेवास्ते निश्चय कल्याणदायक होये वही कहो तुम्हारे शरणागत मेरे को सिखावो ॥ ७ ॥

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छो-

षणामिंद्रियाणाम् ॥ अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥ ८ ॥

अरे रे रे रे ! बडा अनर्थ है कि, जो पृथिवीमें शत्रुरहित संपदायुक्त राज्यको और देवताओंके भी आधिपतित्वको पायके मेरी इंद्रियनके सुखानेवाले शोकको दूरकरे उसको मैं नहीं देखताहूं ॥ ८ ॥

संजय उवाच ।

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतपः ॥
न योत्स्य इति गोविंदमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥ ९ ॥

संजय धृतराष्ट्रसे कहनेलगे कि, शत्रुनको संतापितकरनेवाला तथा गुडाका जो निद्रा तिसके जीतनेमें समर्थ ऐसा जो अर्जुन हृषीकेश याने इंद्रियोंके मालिक श्रीकृष्णको ऐसे कहके फिर नहीं युद्धकरूंगा ऐसे गोविंदसे कहके मौन होतेभये ॥ ९ ॥

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ॥
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदंतमिदं वचः ॥ १० ॥

हे भरतवंशोत्पन्न धृतराष्ट्र ! दोनों सेनाओंके मध्यमें युद्धके उत्साहको त्यागिके शोक कररहा जो अर्जुन तिससे हँसतेसरीखे श्रीकृष्णजी यह याने जो आगे कहेंगे सो वचन बोलते भये ॥ १० ॥

श्रीभगवानुवाच ।

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ॥
गतासूनगतासूंश्च नाऽनुशोचंति पंडिताः ॥ ११ ॥

श्रीकृष्णभगवान्ने निश्चय किया कि, इसको धर्माधर्मका ज्ञान नहीं है, इससे यह धर्मको तो अधर्म और अधर्मको धर्म मान रहा है, परंतु धर्मको जानना चाहता है सो मोह गये विना यह कैसे जानेगा? सो मोह आत्मदर्शनविना नष्ट होनेका नहीं ज्ञानविना आत्मदर्श-

न होनेका नहीं; सो ज्ञान निष्कामकर्मविना होनेका नहीं और अध्यात्मशास्त्र जो आत्मा-अनात्मा-विवेक उपदेश याने जीव और शरीरका विवेक उसका उपदेश इसविना निष्काम कर्म होने सकतानहीं इससे अध्यात्मशास्त्र ही उपदेश करो, ऐसा विचारके उपदेश करनेलगे. अब इस श्लोकसे लेके अठारहे अध्यायमें छासठके श्लोकमें जो "माशुचः" ऐसा वाक्य है वहां पर्यंत गीता उपदेश है. तहां प्रथम भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! "त्वं अशोच्यान् अन्वशोचः" याने जो शोचनेयोग्य नहीं तिनको शोचते हो और प्रज्ञावाद याने पंडितोंसरीखी बातें तिनको भाषते याने कहते हो वे ऐसे कि, हमारे पितरोंका श्राद्ध और तर्पण न होनेसे वे स्वर्गसे नरकमें पडेंगे सो स्वर्गप्राप्ति और पडना श्राद्धादिक होने न होनेके स्वाधीन नहीं है; वे तो आपके करे पुण्यपापके स्वाधीन हैं " क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशंति " इस प्रमाणसे वे पुण्य पाप सदेह आत्माके स्वाधीन हैं. केवल देहके स्वाधीन नहीं हैं यद्यपि पुत्रादिकोंके करेभये श्राद्धादिकोंका पुण्य प्राप्त होता है; कारण कि, पुत्रादिक सदेह आत्मसंबंधी हैं; तथापि श्राद्ध न होनेसे स्वर्गसे पडना यह कोई कालमें भी होनेका नहीं; इसवास्ते गतासू जो ये शरीर नित्य नाशधर्मी और अगतासू जो जीव नित्य अमर एकरस है इससे "नासतोविद्यते भावोनाऽभावोविद्यतेसतः" इसप्रमाणसे पंडितजन इनका शोच नहीं करते हैं; इससे तुमकोभी शोचना अयोग्य है. "स्वेस्वेकर्मण्यभिरतःसिद्धिंविंदतिमानवः" इसप्रमाणसे स्वधर्मयुद्ध ही कल्याणकारक है ॥ ११ ॥

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ॥
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥ १२ ॥

श्रीकृष्ण कहते हैं कि, हे अर्जुन! जो आत्मा याने जीवात्मा

परमात्मा है उनके स्वभाव सुनो. सो ऐसे कि, "अहं सर्वेश्वर इतः पूर्वमनादौ काले जातु नासमपि त्वासमेव" मैं सर्वेश्वर इस समयसे प्रथम अनादिकालमें क्या न था ? क्योंकि, निश्चयकरके था "त्वं नासीः अपितु आसीः एव" जैसा मैं था ऐसा क्या तू न था ? तू भी था. "इमे जनाधिपाः किं न आसन् अपित्वासन् एव" ये सब राजा क्या न थे ? अर्थात् ये भी थे. "अतःपरं सर्वे वयं किं न भविष्यामः अपितु भविष्याम एव" इसकालसे अगाडी क्या हम, तुम ये सर्व न होयंगे ? अर्थात् होयहींगे. इससे आत्मा नित्य है. शोच करना वृथा है. तथा जो यहां हम, तुम और ये ऐसा कहा इससे यह सिद्धांत भया कि, जीवात्मा और परमात्मा न्यारे न्यारे हैं यह न्यारापनाही सत्य है. इसीसे श्रीकृष्णजीने भी उपदेश किया क्यों कि, अज्ञानमोहित अर्जुनको मिथ्याउपदेश करनेहीके नहीं. इस न्यारेपनेमें श्रुतिभी प्रमाण है सो यह-"नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामानिति" अर्थ-जो एक नित्यचेतन परमात्मा है सो बहुत नित्यचेतन जीवोंकी कामनाको परिपूर्ण करताहै; जो कोई कहे कि; यह भेद अज्ञानकृत है तो उनसे कहना कि, यह परमार्थदृष्टिके अधिष्ठाता और आत्मयाथात्म्यसे सदा अज्ञानरहित नित्यस्वरूप परमपुरुष श्रीकृष्णमें अज्ञानकृतभेददर्शनकार्य होनेका नहीं. तोभी कोई कृष्णको अज्ञ कहे तो उनकरके उपदिष्ट गीता अप्रमाण होती है. जो कोई कहे कि, श्रीकृष्णने अभेदनिश्चय कियाहै इससे वह भेद निराकृत है; सो जले वस्त्रतुल्य बंधनकारक नहीं है. तब कहना कि, मृगतृष्णानिराकृत जानिके फिर उसमें जल लेने न जायगा जो गया तो वह अज्ञ है. इसीतरह जो मिथ्या भेदका इसमें उपदेश दिया तो इस गीताकाभी प्रमाण न मानना चाहिये. दूसरा यह कि, भेदविना उपदेशभी नहीं बनेगा

तथा परमात्मामें ऐसाभी होनेका नहीं कि, प्रथम अज्ञ थे शास्त्राध्ययनसें ज्ञानी भये. जिसको शास्त्राभ्याससे ज्ञान होताहै उसको कोई समयमें अज्ञान भी होता है. सो नित्यज्ञानस्वरूप श्रीकृष्णमें यह भी नहीं होसकताहै. यहां श्रुती प्रमाण है सो ऐसे कि, 'यःसर्वज्ञः सर्ववित् ॥ पराऽस्यशक्तिर्विविधैवश्रूयतेस्वाभाविकीज्ञानबलक्रियाच' तथा यहांभी कहेंगे 'वेदाहंसमतीतानिवर्तमानानिचार्जुन । भविष्याणिचभूतानिमांतुवेदनकश्चन' इत्यादि प्रमाणोंसे भेदही सिद्ध होता है. भेदविना उपदेश किसको करे ? तहां कोई कहतेहैं कि, अर्जुन कृष्णका प्रतिबिंब है, आपको आपही उपदेश करतेहैं. तहां कहना कि, दरपन जल इत्यादिमें आपके प्रतिबिंबको देखके जो बातें करे सो उन्मत्त याने चित्तभ्रष्ट सिर्री होताहै, उसके वाक्यभी अप्रमाण हैं, जिसको अभेदज्ञान है उसको उपदेश बननेहीका नहीं न उसके गुरू हैं न शिष्य है इससे यही सिद्ध भया कि, परमात्मासे जीव न्यारे हैं ॥ १२ ॥

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ॥
तथा देहांतरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ १३ ॥

जैसे इस देहमें जीवकी कुमार अवस्था यौवन और जरा अवस्था होतेहैं तैसे देहांतरकी प्राप्ति भी होतीहै तहां धीर याने ज्ञानीपुरुष नहीं मोहता है ॥ १३ ॥

मात्रास्पर्शास्तु कौंतेय शीतोष्णसुखदुःखदाः॥
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥१४॥

हे कुंतीपुत्र ! मात्रा जो इंद्रियां तिनके स्पर्श जो शब्दस्पर्शरूप रस और गंध ये शीत उष्ण याने मृदु कठोर शब्द शीतोष्ण शस्त्र प्रहारादिक और

संयोगवियोगादिक दुःखके देनेवाले अनित्य और आगमोपायी याने होते जाते रहते हैं हे भारत ! तुम भरतवंशी हो उनको सहनकरो ॥१४॥

यं हि न व्यथयंत्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ॥
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ १५ ॥

हे पुरुषर्षभ ! सुख और दुःख है सम जिसके ऐसे जिस ज्ञानी पुरुषको ये निश्चयकरके नहीं पीडा करते हैं सो मोक्षजानेको समर्थहोता है ॥ १५ ॥

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ॥
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १६ ॥

जो "गतासूनगतासूंश्चनानुशोचंतिपंडिताः" इस वाक्यकरके आत्माका स्वाभाविक नित्यत्व और देहका नाशित्व समझके शोक न करना कहा उसीको अब 'नासतः' इत्यादिकरके खुलासा दृढताकरके कहते हैं सो ऐसे कि, असत् जो नाशवान् है उसकी थिरता नहीं होती है और सत् जो अविनाशी है उसका नाश नहीं होता तत्त्वदर्शीपुरुषोंने इन दोनोंका भी सिद्धांत देखा है सोई आगे दो श्लोकोंसे खुलासा कहेंगे ॥ १६ ॥

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ॥
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥ १७ ॥

जिस आत्मतत्त्वकरके यह सर्व अचेतन तत्त्व व्याप्त है उसको तो अविनाशी जानो इस अविनाशीका विनाश करनेको कोई नहीं समर्थ है ॥ १७ ॥

अंतवंत इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ॥
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥ १८ ॥

जो यह जीव अविनाशी है तथा अप्रमेय है याने यह इतना ही है

ऐसा कहनेमें नहीं आता है तथा नित्य है याने सर्वदा एकसा है ऐसे जीवके ये देह हैं नाशवंत कहे हैं हे अर्जुन ! तिससे युद्धकरो ॥ १८ ॥

य एनं वेत्ति हंतारं यश्चै नं मन्यते हतम् ॥
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥ १९ ॥

जो इस आत्माको मारनेवाला जानता है और जो इसको अन्यकरके मरा मानता है। वे दोनों नहीं जानते हैं यह न किसीको मारता है न किसीकरके मरता है ॥ १९ ॥

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायम्भूत्वा भविता वा न भूयः ॥ अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ २० ॥

यह आत्मा कोईकालमें भी जन्मता और मरता नहीं यह अजन्मा है नित्य सर्वकालमें है पुराण याने पहिले था सो भी है नवा न भया है और फिर होनेवाला भी नहीं है शरीरके मारनेपर भी नहीं मरता है ॥ २० ॥

वेदाऽविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ॥
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हंति कम् ॥ २१ ॥

जो इस आत्माको अजन्मा अक्षय नित्य अविनाशी जानता है तो हे अर्जुन ! सो वह पुरुष कैसे किसको मरवावताहै और कैसे किसको मारता है ॥ २१ ॥

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ॥ तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥ २२ ॥

यद्यपि शरीर नष्टहोनेसे आत्माका नाश नहीं तो भी शरीरवियोगका जो दुःख होताहै ऐसा अर्जुनका आशय जानिके भगवान् कहनेलगे कि

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागिके और नवीनोंको ग्रहणकरताहै तैसे जीव पुराने शरीरोंको त्यागिके और नवीनशरीरोंको प्राप्त होताहै २२

नैनं छिन्दंति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ॥
न चैनं क्लेदयंत्यापो न शोषयति मारुतः ॥ २३ ॥

सर्व शस्त्र भी इस आत्माको नहीं छेदि काटि सकतेहैं अग्नि इसको नहीं जलाताहै ॥ जल इसको नहीं भिजोयसकताहै और पवनभी नहीं सुखायसकताहै ॥ २३ ॥

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ॥
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥ २४ ॥

यह आत्मा छेदनेयोग्य नहीं यह जलानेयोग्य नहीं और भिजाने सुखानेयोग्य भी नहीं है ॥ यह नित्य सर्वप्रकारके शरीरोंमें जानेवाला स्थिरस्वभाव अचल और सनातनहै ॥ २४ ॥

अव्यक्तोऽयमचिंत्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ॥
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥ २५ ॥
अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ॥
तथापि त्वं महाबाहो नैनं शोचितुमर्हसि ॥ २६ ॥

यह अतिसूक्ष्मतासे अप्रगट है यह विचारमें नहीं आताहै यह विकाररहित कहाहै ॥ तिससे इसको ऐसा जानिके शोचकरनेको नहीं योग्यहै ॥ जो कि, इसको नित्य जन्मा अथवा नित्य मरा जानोगे ॥ तोभी हे महाभुज अर्जुन ! तुम इस आत्माको शोचनेको नहीं योग्यहो ॥ २५ ॥ २६ ॥

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ॥
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ २७ ॥

जिससे कि, जन्मेको मृत्यु निश्चय है और मरेको जन्म निश्चय है॥ तिससे इस निरुपाय परिणाममें तुम शोचनेको नहीं योग्यहो ॥ २७ ॥

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ॥
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ २८ ॥

हे अर्जुन ! मनुष्यादिके भूतप्राणी जन्मके आदिमें प्रगट न थे जन्मके पीछे मरणके आदि मध्य अवस्थामें प्रगट दीखतेहैं मरेपीछे भी नदीखेंगे ऐसे निश्चयसे तहां शोक कौन है ॥ २८ ॥

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः ॥ आश्चर्यवच्चैनमन्यः
शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥ २९ ॥

ऐसे देहात्मवादमें शोकका परिहार किया अब कहतेहैं कि, देहसे न्यारे आत्मामें द्रष्टा श्रोता वक्ता और ज्ञाता भी दुर्लभहै॥प्रथमकहेभये लक्षणोंकरके युक्त आत्मा सर्वसे विलक्षणहै तहां कोईतपस्वी पुण्यवान् इस आत्माको आश्चर्यवत् देखताहै और तैसाही कोई आश्चर्यवत् कहता है ॥ और तैसाही और पुरुष इसको आश्चर्यतुल्य सुनताहै और कोई पुरुष इस आत्माहीको सुनिके भी नहीं जानता है ॥ २९ ॥

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ॥
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ३० ॥

हे अर्जुन ! सर्वकी देहमें यह जीव नित्यही अवध्य है ॥ तिससे तुमें सर्व भूतोंको शोचनेको नहीं योग्यहो ॥ ३० ॥

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकंपितुमर्हसि ॥
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥ ३१ ॥

स्वधर्मको भी देखके दयाकरनेको नहीं योग्यहो ॥ क्यों कि क्षत्रियको धर्मसंबंधी युद्धसे और कल्याण नहींहै ॥ ३१ ॥

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ॥
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभंते युद्धमीदृशम् ॥ ३२ ॥

हे पृथापुत्र अर्जुन ! जो आपसे प्राप्तभया और खुलाभया स्वर्गका द्वार ऐसे युद्धको पुण्यवान् क्षत्रियलोग पावते हैं ॥ ३२ ॥

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ॥
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥ ३३ ॥
अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यंति तेऽव्ययाम् ॥
संभावितस्य चाऽकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥ ३४ ॥

जो कदाचित् तुम इस धर्मरूप संग्रामको न करोगे ॥ तो उस से स्वधर्म और कीर्तिको भी छोडके पापको प्राप्त होवोगे ॥ और लोग तुह्मारी अखंड अकीर्तिको भी कहेंगे ॥ सो अकीर्ति संभावितपुरुषके मरणसे अधिक है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

भयाद्रणादुपरतं मंस्यंते त्वां महारथाः ॥
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥ ३५ ॥
अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यंति तवाहिताः ॥
निंदंतस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥ ३६ ॥

श्रीकृष्णजीने अर्जुनका अभिप्राय जाना कि, जो मैं बंधुनके स्नेह और दयालुतासे युद्ध न करूंगा तो मेरी अकीर्ति कैसे होयगी याने होनेकी नहीं ऐसा जानिके बोले कि, हे अर्जुन ! जिन कर्णदुर्योधनादिक महारथोंके तुम शूर शत्रु ऐसे मान्य थे उनहीके अब युद्ध न करनेसे निंदनयोग्य लघुताको प्राप्त होवोगे वोई महारथ शत्रु तुमको भयसे संग्राम न किया ऐसा मानेंगे वोई तुह्मारे शत्रु तुह्मारी सामर्थ्यको निंदतेभये बहुत से दुर्वाक्य बोलेंगे याने अर्जुन कायर है शोभाके वास्ते शस्त्र बांधताहै जैसे

स्त्री आभूषनमें सर्पसिंहादिक देखिके प्यारसे धारण करै और साक्षात् देखिके प्राणलेके भागे तैसे जब ऐसी निंदा करेंगे तब उससे बडादुःख कौन है सो कहो ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

हतो वा प्राप्स्यसे स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ॥
तस्मादुत्तिष्ठ कौंतेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ ३७ ॥

उसनिंदाके सुननेसे रणमें मरना मारना ही श्रेष्ठहै ऐसा कहते हैं हे कुंतीपुत्र ! जो रणमें शत्रुप्रहारसे मरोगे भी तो स्वर्गको प्राप्तहोवोगे जो जीतोगे तो पृथिवीको भोगोगे तिससे युद्धके अर्थ निश्चयकियेभये उठो॥

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ॥
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥३८॥

सुख और दुःखको समानकरके तथा लाभ और हानि जय और पराजय समान जानिके फिर युद्धके अर्थयुक्तहो ऐसे पापकोनहींप्राप्तहोवोगे॥

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु ॥
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबंधं प्रहास्यसि ॥ ३९ ॥

श्रीकृष्णभगवान्ने ऐसा आत्मस्वरूप दिखाया अब आत्मस्वरूप ज्ञानपूर्वक मोक्षसाधनभूत कर्मयोग कहतेहैं सो ऐसे कि, हे पृथापुत्र ! यह बुद्धि तुमसे मैंने सांख्य जो आत्मा देहका विवेक उसमें कही और इसीको योगमें याने कर्मयोगमें सुनो जिसे बुद्धिकरके युक्त कर्मबंध जो संसारदुःख उसको छोडोगे ॥ ३९ ॥

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ॥
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥ ४० ॥

जो अब ज्ञानयुक्त कर्मयोग कहेंगे तिसका माहात्म्य कहतेहैं ॥ इस ज्ञानयुक्त कर्मयोगमें याने निष्काम कर्मयोगमें प्रारंभका भी नाश नहीं है

याने प्रारंभ होके समाप्त न होय तो भी नाश नहीं है इसके छूटनेका दोष भी नहीं होताहै इस निष्काम कर्मका लवलेशमात्र भी जन्ममरणरूप बडेभयसे रक्षणकरताहै ॥ ४० ॥

**व्यवसायात्मिकाबुद्धिरेकेह कुरुनंदन ॥**

**बहुशाखाह्यनंताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥ ४१ ॥**

हे कुरुनंदन। व्यवसाय जो विष्णुपरमात्मा तिनमें है आत्मा नाम मन जिनका ऐसे पुरुषोंकी बुद्धि इस निष्काम कर्महीमें वह एक है याने एक मोक्षसाधनहीके वास्तेहै जो अव्यवसाई याने परमात्माविना नानापदार्थ पशुपुत्रादिकोंके चाहनेवालेहैं उनकी बुद्धि बहुतहै याने अनेककामनाओंमें लगीहै और तहां भी बहुशाखा याने एककार्यके वास्ते कर्मकरके उसमेंभी अनेक फल मांगतेहैं जैसे पुत्रार्थ यज्ञमें धन,धान्य,आयुष्य, आरोग्यका मांगना ॥ ४१ ॥

**यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदंत्यविपश्चितः ॥ वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीतिवादिनः ॥ कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ॥ क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥ भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ॥ व्यवसायात्मिकाबुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥४२॥ ४३ ॥ ॥ ४४ ॥**

हे पृथापुत्र। जो अज्ञानी जन वेदवादरत याने वेदोक्तकर्मसे स्वर्गादिकफलही होताहै ऐसे कहनेवाले स्वर्गसुखसे और सुख नहीं है . ऐसा कहनेवाले कामनाहीमें चित्तरखनेवाले स्वर्गहीको श्रेष्ठ माननेवलेजिस पुष्पित याने कहनेमात्रमें रमणीय जन्मकर्मरूपफलकी देनेवाली तथा जिसमें भोग और ऐश्वर्यनिमित्त बहुत उपकरण याने कर्मसाधनहैंजिसमें ऐसी इस वाणीको कहतेहैं इसीसे उसी वाणीकरके अपहरणभये हैं

चित्त जिनके इसीसे भोग और ऐश्वर्यमें आसक्तहैं उनके मनमें वह पर-
मात्मविषयकबुद्धि नहीं प्रवृत्तहोतीहै ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ॥
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥४५॥

हे अर्जुन! वेद ये त्रैगुण्यविषयहैं याने तीनों गुणोंके कर्मनहींको कहते हैं तुम निर्द्वन्द्व याने सुखदुःख,जयपराजय,लाभअलाभ, इन द्वन्द्वनसे रहितहो अर्थात् इनसे उत्पन्न हर्षशोकरहितहो नित्यसत्वस्थहो याने सात्विककर्म करो निर्योगक्षेम याने कोइसा भी लाभ और लब्धका रक्षण ईश्वराधीन न जानो आत्मवान् याने परमात्मामें चित्त राखो ऐसेभये हुये निस्त्रैगुण्येहो याने कर्मफलोंका त्यागकरो ॥ ४५ ॥

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके ॥
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥ ४६ ॥

जो कहा कि, वेदोक्त कर्मोमेंसे तुम सात्त्विक करो उसीको खुलासा कहतेहैं जैसे सर्वत्र जलसे भरेभये तालाव इत्यादिक जलाशयमें मनुष्यका जितना प्रयोजन होताहै उतनाही लेताहै तैसेही वेदके जाननेवालेको सर्ववेदोंमें तावान्याने सात्विककर्म ही योग्यहै ॥ ४६ ॥

कर्मण्येवाऽधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ॥
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥ ४७॥

तुह्मारेको कर्महीमें अधिकारहै फलोंमें नहीं कर्मोंके फलका कारण तुह्मारेमें कोई समयमें भी मति हो तुम्हारे को अकर्म याने स्वधर्म योग्य युद्धादिकर्मोंका न करना इसमें संग जो निष्ठा सो कदाचित् न हो ४७॥

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय ॥
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते४८॥

हे अर्जुन ! सिद्धि और असिद्धिमें समबुद्धि होके कर्मफलके संगको त्यागिके योगमें स्थितभयेहुये कर्मोंको करो सिद्धि और असिद्धिमें जो समत्व है वही योग कहीं है अर्थात् चित्तके समाधानत्वको योग कहते हैं तात्पर्य चित्तको समाधानकरके युद्धरूप स्ववर्णोचित कर्म करो॥४८॥

**दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय ॥**
**बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥ ४९ ॥**

हे अर्जुन ! जो बुद्धियोगसे और कर्म है सो निश्चयकरके अत्यंत नीचे है इसवास्ते बुद्धियोग जो निष्काम कर्म उसीमें ईश्वरप्राप्तिकी इच्छा करो फलकी इच्छा करनेवाले कृपण हैं ॥ ४९ ॥

**बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ॥**
**तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥ ५० ॥**

बुद्धियुक्त जो निष्कामकर्मी सो इसीलोकमें सुकृत जो पुण्यकर्म और दुष्कृत जो पापकर्म उन दोनोंको त्यागताहै इससे योगके अर्थ याने बुद्धियोग जो निष्काम कर्म उसकेवास्ते युक्तहो यह योग सर्वकर्मोंके कुशल कारकहै ॥ ५० ॥

**कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ॥**
**जन्मबंधविनिर्मुक्ताः पदं गच्छंत्यनामयम् ॥ ५१ ॥**

जो बुद्धियोगयुक्तहैं वे ज्ञानी कर्मजन्य फलको त्यागके जन्मबंधनसे मुक्तभयेहुये निश्चयकरके मोक्ष पदको जातेहैं ॥ ५१ ॥

**यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ॥**
**तदा गंतासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥ ५२ ॥**

जब तुह्मारी बुद्धि मोहरूप दुःखको उल्लंघनकरैगी तब जो फलादिक सुननेयोग्य और जो सुनेहो उनके वैराग्यको प्राप्तहोवोगे ॥५२॥

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ॥
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥५३॥

जब तुह्मारी बुद्धि श्रुतिमें याने मेरे उपदेशमें विशेषकरके आसक्त निश्चल मनमें अचल ठहरेगी तब योगको पावोगे ॥ ५३ ॥

अर्जुन उवाच।

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ॥
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥ ५४ ॥

ऐसा सुनिके अर्जुन बूझते भये कि, हे केशव! याने सर्वके अंतःकरणमें रहनेवाले हे ईश्वर ! स्थिरबुद्धि समाधिस्थकी कौनसी भाषा याने उसका वाचक कौनहै अर्थात् वह स्थिरबुद्धि किससे कहाताहै स्थिरबुद्धि कैसे बोलताहै कैसे बैठताहै और कैसे चलता है ॥ ५४ ॥

श्रीभगवानुवाच।

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् ॥
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ ५५ ॥

अब श्रीकृष्णभगवान् स्थिरबुद्धिवालेका स्वरूप कहतेहैं तहाँ ऐसा न्यायहै कि, रहनिरीतिसे भी स्वरूपनिश्चय होताहै इससे रहनिरीति कहतेहैं सो ऐसे कि, हे अर्जुन ! जब आपके मनकरके आप स्वरूपहीमें संतुष्ट भया हुआ मनमें रहभये सर्व मनोरथोंको सर्वथा त्यागताहै तब वह स्थिरबुद्धि कहाताहै ॥ ५५ ॥

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ॥
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ ५६ ॥

दुःखोंमें जिसका मन व्याकुल नहीं होताहै सुखोंमें निराश होताहै और जिसके पुत्रादिस्नेह भय और क्रोध न होय सो मुनि स्थिरबुद्धि कहाता है ॥ ५६ ॥

यः सर्वत्राऽनभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाऽशुभम् ॥
नाऽभिनंदति न द्वेष्टि स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ ५७ ॥

जो सर्वत्र स्नेहरहित उसउस शुभाशुभको पाइकेभी न शुभसे आ-नंदहो न अशुभसे दुःखीहो तब सो स्थिरबुद्धि कहाताहै ॥ ५७ ॥

यदा संहरते चायं कूर्मोऽगानीव सर्वशः ॥
इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५८ ॥

जब यह कछुवा जैसे अपने सर्व अंगोंको समेटिलेताहै तैसे इंद्रियोंके विषयनसे आपकी सर्व इंद्रियोंको खेंचिलेताहै तब उसकी बुद्धि स्थिर होतीहै ॥ ५८ ॥

विषया विनिवर्तंते निराहारस्य देहिनः ॥
रसवर्ज्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्त्तते ॥ ५९ ॥

इंद्रियनके आहार इंद्रियविषय उनको जो नहीं सेवताहै उस देहीके विषयानुरागविना विषय निवर्त्त होतेहैं उसका वह विषयानुराग भी आत्मस्वरूपको देखके निश्चय निवर्त्त होताहै ॥ ५९ ॥

यततो ह्यपि कौंतेय पुरुषस्य विपश्चितः ॥
इंद्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥ ६० ॥
तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ॥
वशे हि यस्येंद्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६१ ॥

हे कुंतीपुत्र ! आत्मदर्शनविना विषयानुराग निवर्त्त होता नहीं और उसकी निवृत्तिविना जो ज्ञानी पुरुष बुद्धिकी स्थिरताकेवास्ते यत्नकरताहै तोभी जिससे ये जोरावरीसे मनको हरनेवाली इंद्रियां जबरईसे मनको हरती हैं ॥ इससे योगयुक्तभयाहुआ उन सर्वइंद्रियोंको नियमितकरके मेरेआश्रय रहे जिसके इंद्रियां वशे हैं तिसकी निश्चयकरके बुद्धि स्थिर है ॥ ६० ॥ ६१ ॥

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ॥
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥६२॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ॥
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ ६३ ॥

बाह्यइंद्रियनकी प्रबलता और उनको वश नकरनेमें जो दोष सो कहा अब मनसंबंधी कहते हैं जो पुरुष मन वशकिये विना जितेन्द्रियता चाहताहै सो होनेकी नहीं जैसे कि, जिसके मनमें विषयोंका चिंतवन है उस पुरुषको उनविषयोंमें संयम करतेकरतेभी आसक्ति होगी उस आसक्तिसे अभिलाषा होगी अभिलाषासे क्रोध होगा क्रोध से मतिभ्रम होताहै मतिभ्रमसे स्मरणशक्तिमें विभ्रम होताहै स्मृतिविभ्रमसे ज्ञानका नाश ज्ञानके नाशसे स्वरूपसे नष्ट होताहै याने संसारमें भ्रमताहै ॥६२॥६३॥

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिंद्रियैश्चरन् ॥
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥ ६४ ॥
प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ॥
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥ ६५ ॥

वश्यहै मन जिसका ऐसा पुरुष रागद्वेषकरके रहित और आपके वश्य ऐसी इंद्रियों करके विषयोंका सेवनकरता भया प्रसन्नताको प्राप्त होताहै याने निर्मलांतःकरण होताहै तब निर्मलचित्तहोनेसे इसके सर्वदुःखोंका नाश होताहै उस प्रसन्नचित्तवालेकी बुद्धि शीघ्रही स्थिर होतीहै ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ॥
न चाभावयतः शांतिरशांतस्य कुतः सुखम् ॥ ६६ ॥

अयुक्त जो समतारहित है उसकी बुद्धि नहीं स्थिर होतीहै और उस अयुक्तके भावना याने आस्तिकता सो भी नहीं होतीहै और जिसके भावना नहीं उसके शांति नहीं जिसके शांति नहीं उसको कहाँ से सुख होगा ॥ ६६ ॥

इंद्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ॥
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवांभसि ॥ ६७ ॥
तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ॥
इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६८ ॥

जिससे कि, जो मन विषय में प्रवृत्त इंद्रियोंको अनुसरताहै सो इस पुरुषकी बुद्धिको वायु जलमें नावको ऐसे हरता है तिसीसे हेमहाबाहो। जिसकी सर्व इंद्रियाँ इंद्रियोंके विषयोंसे सर्वथा रोकीभईहैं तिसकी बुद्धि प्रतिष्ठित है ॥ ६७ ॥६८॥

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी॥
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥६९॥

सर्वभूतप्राणीमात्रोंकी जो रात्री अर्थात् जिसविषयमें सर्वसोइसे रहे हैं ऐसी परमात्मविषया बुद्धि तिसमें इंद्रियसंयमी जागताहै याने आत्मस्वरूपको देखताहै जिस शब्दादिविषयरूप रात्रिमें सर्वभूतप्राणी जागतेहैं सो ज्ञानीजनकी रात्रिरूप है ॥ ६९ ॥

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशंति यद्वत् ॥
तद्वत्कामा यं प्रविशंति सर्वे स शांतिमाप्नोति न
कामकामी ॥ ७० ॥

जैसे आपही परिपूर्ण सर्वदा एकसे भरेभये समुद्रमें जल बाहरसे भरताहै तैसे जिसकी सर्व कामना प्राप्तहोयहैं सो शांतिको प्राप्त होता है जो कामनाओंकी इच्छाकरनेवाला है सो नहीं शांतिको पावताहै ॥७०॥

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ॥
निर्ममो निरहंकारः स शांतिमधिगच्छति ॥ ७१ ॥

जो पुरुष सर्व अभिलाषनको छोड़के इच्छारहित विचरताहै सो ममतारहित और अहंकाररहितभयाहुआ शांतिको प्राप्तहोताहै॥ ७१ ॥

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ॥
स्थित्वाऽस्यामंतकालेपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥७२॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायांयोग शास्त्रेश्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

हे पृथापुत्रअर्जुन! यह जो निष्कामकर्मरूप मैंने कही सो ब्रह्मप्राप्ति-कारक स्थिति है इसको पाके नहीं मोहको पावताहै इसमें अंतकाल-में भी स्थितहोके ब्रह्मसदृशमुक्ति पावे अर्थात् जो सर्वकाल ऐसाही रहे उसकी मुक्तिको संदेह क्या है ॥ ७२ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां गीतामृततरंगिण्यांद्वितीयाऽध्यायप्रवाहः ॥ २ ॥

---

अर्जुन उवाच ।

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ॥
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥ १ ॥

ऐसे श्रीकृष्णके वाक्य सुनके अर्जुनने विचार किया कि, भग-वान्‌ने प्रथम मेरेको 'अशोच्यानन्वशोचस्त्वं' इत्यादिवाक्योंकरके ज्ञा-नयोग उपदेश किया. फिर 'बुद्धियोंगेत्विमांशृणु' इत्यादिकरके क-र्मयोग उपदेश किया उसमें भी 'श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति नि-श्चला' इत्यादिकरके निष्कामकर्मसे आत्मज्ञानहीकी प्राप्ति कही इस

से निश्चय होताहै कि, कर्मयोगसे जो पीछे आत्मज्ञान कहा सोई श्रेष्ठहै ऐसे विचारके अर्जुन भगवानसे कहने लगे कि, हेजनार्दन! जोकि कर्मयोगसे ज्ञानयोगही तुमने श्रेष्ठ मानाहोय तो हे केशव! घोर कर्ममें मेरेको क्यों युक्तकरतेहो ॥ १ ॥

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ॥
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥ २॥

ऐसे मिश्रित वाक्यकरके मेरी बुद्धिको मोहतेसे हो जिसकरके मैं कल्याणको प्राप्तहोउं सो एक निश्चयकरके कहो ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच।

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयाऽनघ ॥
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥ ३ ॥

ऐसे अर्जुनके वाक्य सुनके श्रीकृष्णभगवान् बोलते भये हेनिष्पाप अर्जुन! इस लोकमें पूर्वकालमें मैंने दोप्रकारकी निष्ठा कहीहै सो सांख्यवालोंको ज्ञानयोगकरके और योगिनको कर्मयोगकरके ॥ ३ ॥

न कर्मणामनारंभान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ॥
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥ ४ ॥

शास्त्रोक्तकर्मोंके किये विना पुरुष निष्कर्मता जो सर्वेंद्रियविषयनिवृत्तिपूर्वकज्ञाननिष्ठा उसको नहीं प्राप्तहोताहै और कर्मके न करनेसेभी सिद्धिको नहीं प्राप्तहोता है ॥ ४ ॥

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ॥
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वैः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ ५ ॥

कोईकालमें क्षणभरभी कर्मकियेविना कोईभीपुरुष निश्चयं-

करके नहीं रहता है क्योंकि सर्व सत्वादिप्रकृतिके गुणोंकरके पर-
वश कर्म करनेही परता है ॥ ५ ॥

कर्मेंद्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ॥
इंद्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥६॥

जो ज्ञानयोगमें प्रवर्त्तहोनेको कर्मेंद्रियोंको हठसे संयममें रखके इंद्रियविषयोंको मनकरके सुमिरतासुमिरता रहता है सो मूढ-मति मिथ्याचार याने वृथायोगी कहाता है ॥ ६ ॥

यस्त्विंद्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ॥
कर्मेंद्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥ ७ ॥

और जो इंद्रियोंको मनसे नियममें रखके विषयोंमें आसक्त न भयाहुवा कर्मेंद्रियोंकरके कर्मयोगको करता है हे अर्जुन ! सो श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ॥
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिध्येदकर्मणः ॥ ८ ॥

तिससे तुम स्ववर्णउचित कर्म करो क्योंकि कर्म न करनेसे कर्म करना श्रेष्ठ है और कर्म विना तुम्हारा ज्ञानयोग करनेको शरीर निर्वाह भी न सिद्ध होगा ॥ ८ ॥

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबंधनः ॥
तदर्थं कर्म कौंतेय मुक्तसंगः समाचर ॥ ९ ॥

जो कर्मसे बंधन कहाहै सो ऐसा कि, जो यज्ञार्थकर्म है उससे अ-न्यत्र कर्म करनेसे यह मनुष्य कर्मबंधनको प्राप्त होता है हेकुंतीपुत्र ! तुम फलासंग छोडेभये उस यज्ञहीके अर्थ कर्म करो ॥ ९ ॥

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ॥
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥१०॥

प्रजापति जो परमात्मा सो पुरा याने सृष्टिकालमें यज्ञसहित प्रजाको उत्पन्नकरके बोले कि, इस यज्ञकरके तुम वृद्धिको प्राप्तहोउ यह यज्ञ तुम्हारे इच्छित कामनाओंको पूरनेवाला होउ ॥ १० ॥

देवान्भावयताऽनेन ते देवा भावयंतु वः ॥
परस्परं भावयंतः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥ ११ ॥

इस यज्ञकरके तुम देवताओंको पूजिके उनको बढावो वे तुम्हारे पूजे बढायेभये देव तुम्हारा मनोरथ पूरतेभये तुमको बढावेंगे ऐसे परस्पर बढातेभये तुम और देवता दोनों श्रेष्ठ कल्याणको प्राप्तहोवोगे ॥ ११ ॥

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यंते यज्ञभाविताः ॥
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः ॥ १२ ॥

जो यज्ञ करोगे उसकरके वर्द्धितकियेभये देव तुमको इच्छित भोग निश्चयकरके देंगे उनकरके दियेभये भोगोंको उनको दियेविना जो भोगेगा सो निश्चयकरके चोर है इससे चोरतुल्य दंड पावेगा ॥१२॥

यज्ञशिष्टाशिनः संतो मुच्यंते सर्वकिल्बिषैः ॥
भुंजते ते त्वघं पापा ये पचंत्यात्मकारणात् ॥ १३ ॥

देवादिपूजनरूप यज्ञका शेष याने उबरेभये अन्नादिकके भोगनेवाले सत्पुरुष सर्वपापोंकरके मुक्तहोते हैं और जो आपहीकेवास्ते अन्नको पचातेहैं वे पापी पाप जैसाहोय तैसा ही खातेहैं ॥ १३ ॥

अन्नाद्भवंति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः ॥
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥ १४ ॥
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ॥
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ॥
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥ १६ ॥

अब दिखातेहैं कि,लोकदृष्टि और शास्त्रदृष्टिसे भी सबका मूल यज्ञ ही है सो ऐसे कि,सर्व भूतप्राणि अन्नसे होतेहैं अन्नकी उत्पत्ति वर्षासे है सो लोकप्रसिद्ध देखनेमें आताहै वर्षा यज्ञसे होतीहै यह शास्त्रप्रसिद्ध है सो यह श्लोक ॥ "अग्नौप्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठति॥आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततःप्रजाः ॥१॥" यज्ञकी उत्पत्ति यज्ञकर्त्ताके किये भये कर्मसे होतीहै सो कर्म ब्रह्मसे होताहै ऐसे जानो ब्रह्म नाम प्रकृति इहां प्रकृतिहीका रूप शरीर ब्रह्म जानना तहां प्रथम श्रुतिः"तदेतद्ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायते"तथा इहां भी कहेंगे"मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्"इत्यादिप्रमाणोंसे यहां यही अर्थ है कि, प्रकृतिको ब्रह्म कहते हैं उसीका परिणाम यह शरीर इससे कर्म होताहै यह शरीर अक्षरसमुद्भव याने अक्षर जो जीव तिसकरके सहित उत्पन्न होताहै याने सजीव शरीर कर्मका कारक है जिससे कि, शरीरही कर्मकारक है इसीसे सर्वगत याने सर्वाधिकारयोग्य शरीर यज्ञमें नित्य प्रतिष्ठित है याने यज्ञका मूलकारण है ऐसे यह ईश्वरकरके प्रवर्तमान इस चक्रको जो कर्माधिकारी किंवा ज्ञानकर्माधिकारी नहीं अनुवर्त्तताहै याने यज्ञविना शरीर पोषताहै हेअर्जुन!सो इंद्रियाराम पापआयुष्य वृथा जीवता है जो चक्र कहा उसका खुलासा यह कि,अन्नसे शरीर, अन्न वर्षासे, वर्षा यज्ञसे, यज्ञ कर्मसे, कर्म शरीरसे, शरीर अन्नसे, ऐसे प्रवर्त्त है ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ॥
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥ १७ ॥
नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ॥
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥ १८ ॥

कर्म न करनेसे किसको दोष नहीं सो कहते हैं सो ऐसा कि, जो मनुष्य आत्मरति हो यानेआत्मस्वरूपहीमें आनंदहोय और आत्मस्वरूपहीसे तृप्त हो अन्नादिकसे प्रयोजन नहीं और आत्माही में संतुष्टहो उसके कर्त्तव्यता नहीं है उसके कर्मकरनेसे न करनेसे भी यहां कुछ प्रयोजन नहीं है और इसके सर्वभूतप्राणिनमें कोई ऐसा भी नहीं जिससे कुछ प्रयोजन होय तात्पर्य ऐसा मनुष्य कर्म करै अथवा न करै सो चिंता नहीं ॥ १७ ॥ १८ ॥

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ॥
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥ १९ ॥

जिससे कि, ऐसेको दोष नहीं तुम तो द्रव्यकुटुंबादिसे रतहो इससे कर्म में असक्त न भयेहुये करनेयोग्य स्ववर्णोचित कर्मको निरंतर करो क्यों कि फलेच्छारहित कर्म करते करते पुरुष परमात्माको प्राप्त होताहै ॥ १९ ॥

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ॥
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन् कर्तुमर्हसि ॥ २० ॥

अब यह दिखातेहैं कि, ज्ञानीको भी कर्मही श्रेष्ठहै सो ऐसे जिससे कि, जनकादिक ज्ञानी भी कर्मकरकेही मोक्षको प्राप्तभये वैसे तुमभी लोकसंग्रहको भी देखते भये कर्म करनेको योग्य हैं ॥ २० ॥

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ॥
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ २१ ॥

यहां कारण यह है कि, श्रेष्ठ पुरुष जो जो आचरणकरतेहैं दूसरे लोग भी वैसाही आचरणकरते हैं सो श्रेष्ठपुरुष जो प्रमाण करताहै सर्वलोगभी वही प्रमाणकरने लगतेहैं ॥ २१ ॥

न मे पार्थाऽस्ति कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन ॥

नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त्त एव च कर्मणि ॥ २२ ॥

हे पृथापुत्र अर्जुन ! तीनों लोकोंमें मेरेको कुछ कर्त्तव्य नहीं है तथा नहीं प्राप्त ऐसाभी नहीं और प्राप्तहोय ऐसा भी नहीं अर्थात् सर्व मेरा ही है तथापि कर्ममें निश्चयकरके वर्त्तमान रहताहूं याने लोगोंको सिखानेको कर्म करता रहताहौं ॥ २२ ॥

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतंद्रितः ॥

मम वर्त्मानुवर्त्तंते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ २३ ॥

हे अर्जुन ! जो कदाचित् सावधानभयाहुआ मैं कर्ममें न वर्त्तमान रहौं तो निश्चयकरिके सर्व मनुष्य मेरी ही रीतिपर चलनेलगैं याने वे भी निरर्थ मानके कर्म न करें ॥ २३ ॥

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ॥

संकरस्य च कर्त्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥ २४ ॥

जो कदाचित् मैं कर्म न करौं तो ये लोक भी ऐसे जानेंगे कि, जो कर्म श्रेष्ठ होता तो श्रीकृष्ण करते इससे कर्म तुच्छ है ऐसा जानके कर्म छोडके नष्ट होंगे तब मैं वर्णसंकरका कर्त्ता होउंगा और इस प्रजाको मारनेवाला होउंगा ॥ २४ ॥

सक्ताःकर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वंति भारत ॥

कुर्याद्विद्वांस्तथाऽसक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥ २५ ॥

हे अर्जुन ! जैसे अविद्वान् लोग कर्ममें आसक्तभयेहुये कर्म करतेहैं तैसे विद्वान् आसक्तनभयाहुआ लोकसंग्रहको करनेकी इच्छा कियेभये कर्म करे ॥ २५ ॥

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम् ॥

जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥ २६ ॥

जो ज्ञानी है सो ज्ञानयोगयुक्तभयाहुआ कर्मकरताकरता जो कर्म-

संगी अज्ञानीहैं उनको सर्वकर्मोंकी प्रीति उपजावै याने उनसे प्रशंसा करके कर्म करावै और बुद्धिभेद याने कर्ममें अश्रद्धा नं करावै ॥ २६ ॥

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ॥
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥ २७ ॥
तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ॥
गुणा गुणेषु वर्त्तंत इति मत्वा न सज्जते ॥ २८ ॥

हे अर्जुन ! सर्व कर्म प्रकृतिके सत्वादिगुणोंकरके कियेभयेहैं जो अहंकारसे मूढचित्त है सो मैं कर्त्ताहूं ऐसे मानताहै और जो सत्वादिक गुण और उनके कर्मके तत्त्वका ज्ञाताहै सो जानताहै कि, सत्वादि गुण आपआपके कार्योंमें वर्त्तमान हैं ऐसा जानके आसक्त नहीं होताहै ॥ २७ ॥ २८ ॥

प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जंते गुणकर्मसु ॥ तानकृ-
त्स्नविदो मंदान् कृत्स्नविन्न विचालयेत् ॥ २९ ॥

प्रकृतिके सत्वादिकगुणकार्योंकरके भूलेभये जो पुरुष वे सत्वादिगुणकर्मफलोंमें आसक्त होतेहैं उनै अल्पज्ञमंदोंको सर्वज्ञपुरुष कर्ममार्गसे चलायमान न करै ॥ २९ ॥

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याऽध्यात्मचेतसा ॥
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥ ३० ॥

हे अर्जुन! अध्यात्म जो स्वभाव "स्वभावोऽध्यात्म उच्यते" इस प्रमाणसे क्षत्रियका जो शूरत्वादिक स्वभाव है उसमें चित्तको लगायेभये उसकरके सर्व कर्म मेरेमें अर्पणकरके निराशी याने फलाशारहित निर्मम याने कर्त्तापनका ममत्व छोडके कर्मबंधनभयरूपज्वरसे छूटेभये युद्ध करो ॥ ३० ॥

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठंति मानवाः ॥

श्रद्धावंतोऽनसूयंतो मुच्यंते तेपि कर्मभिः ॥ ३१ ॥
ये त्वेतदभ्यसूयंतो नानुतिष्ठंति मे मतम् ॥
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ॥ ३२ ॥

जो मनुष्य इस मेरे मतको नित्य धारण करतेहैं और जो इसमें श्रद्धा ही रखतेहैं और जो इसकी निंदारहितेहैं वे भी कर्मबंधनोंसे छुटेंगे और जो इस मेरे मतकी निंदाकरते भये इसको ग्रहणनहीं करतेहैं वे सर्वज्ञानविषयमें मूढ उन अज्ञानिनको नष्टभये जानो ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ॥
प्रकृतिं यांति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥ ३३ ॥

जो ज्ञानवान् है सो भी आपके जातिस्वभावके सदृश चेष्टाकरताहै अज्ञकरे तो शंकाही क्या हैसर्वभूतप्राणी आपके जातिस्वभावको अनुसरतेहैं यहां निग्रह क्या करेगा ॥ ३३ ॥

इंद्रियस्येंद्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ॥
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपंथिनौ ॥ ३४ ॥

जब कर्म स्वभावहीसे है और उसका निग्रह नहीं तब उपाय क्या सो कहतेहैं कर्मेंद्रिय और ज्ञानेंद्रिय इनके निमित्त राग द्वेष युक्त हैं तिनके वश न होना क्योंकि, वे इसके शत्रु हैं याने जीवके बंधनकारक रागद्वेषही हैं ॥ ३४ ॥

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ॥
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥ ३५ ॥

जो रागद्वेषके वश होनेसे स्वधर्मका त्याग और परधर्ममें निष्ठा होतीहै उसका निवारण करतेभये श्रीकृष्ण कहतेहैं सो ऐसे कि, नेत्रादिइंद्रियोंकी प्रीतिसे अर्जुन स्वधर्मोंको त्यागने लगे कि, इन स्वजनोंको देखके मेरे दया आतीहै इससे युद्ध न करौंगा भीख मागि खाउंगा सो निवारते हैं जैसे कि, श्रेष्ठक-

मेंरंभे अन्यके धर्मसे स्वधर्म न्यूनभी कल्याणकारक है स्वधर्ममें मरना कल्याणदायक है परधर्ममें मरनेसे भी अतिभयंकारक है ॥ ३५ ॥

अर्जुन उवाच ।

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ॥
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥ ३६ ॥

अर्जुन भगवान्से पूंछतेहैं कि, हे वृष्णिवंशोत्पन्न कृष्ण! आपने कहा स्वधर्मही श्रेष्ठ है अन्यधर्म भयदायक है ऐसा जो जानताभी है और स्वधर्मपूर्वक ज्ञानयोगमें प्रवर्तहोके विषय भी त्यागेहैं तोभी फिर यह पुरुष विषयइच्छा नकरता भी बलात्कार विषयोंमें युक्तकिया सरीखा किसका प्रेरीभया पापोंको करता है ॥ ३६ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ॥
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥ ३७ ॥

अर्जुनका प्रश्न सुनके श्रीकृष्णभगवान् कहतेहैं कि,जो यह रजोगुणसे प्रगट काम याने कामना सो बड़ा पापी अतिविषयसेवनरूप बडे आहारका करनेवाला यही क्रोधरूप होताहै इसको इस ज्ञानविषयमें वैरी जानो ॥ ३७ ॥

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ॥
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥ ३८ ॥

जैसे अग्नि धुवांकरके ढकताहै और मलकरके दर्पण ढकताहै जैसे गर्भ जराकरके आवृत तैसे यह ज्ञान उसकामनाकरके ढका है ॥ ३८ ॥

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ॥

कामरूपेण कौंतेय दुःपूरेणानलेन च ॥ ३९ ॥

हेकुंतीपुत्र! इस ज्ञानीका नित्यवैरी दुःखसे भी नभरसके इससे अपरिपूर्ण और इच्छाचारी ऐसे इस कामकरके ज्ञान ढकरहाहै काम याने विषयवासना ॥ ३९ ॥

इंद्रियाणि मनो बुद्धिरस्याऽधिष्ठानमुच्यते ॥
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥ ४० ॥

जब शत्रुको जीतना होय तब प्रथम उसके स्थान स्वाधीन करना इससे इस कामनाके स्थान कहतेहैं सो वे ये कि, सर्व इंद्रियें मन और बुद्धि ये कामनाके स्थान कहतेहैं यह इनहींकरके ज्ञानको आच्छादित करके जीवको मोहितकरता है ॥ ४० ॥

तस्मात्त्वमिंद्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ॥
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥ ४१ ॥

हेभरतवंशिनमें श्रेष्ठ! तिससे तुम प्रथम इंद्रियोंको संयममें करके स्वरूपज्ञान और विज्ञान जो भक्ति इनके नाशनेवाले इस काम पापीको निश्चय मारो ॥ ४१ ॥

इंद्रियाणि पराण्याहुरिंद्रियेभ्यः परं मनः ॥
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥ ४२ ॥

जो ज्ञानके विरोधीहैं उनमें विद्वान् लोग इंद्रियोंको प्रबल कहतेहैं इंद्रियोंसे मन प्रबलहै और मनसे बुद्धि प्रबलहै और जो बुद्धिसे प्रबलहै सो वह कामनाहै ॥ ४२ ॥

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ॥
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥ ४३

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगोनाम
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

हे महाभुज अर्जुन ! ऐसे बुद्धिसे प्रबल स्वेच्छाचारी दुःसह कामनारूप शत्रुको जानके फिर मनको बुद्धिकरके रोकके इस शत्रुको मारो ॥ ४३ ॥

इतिश्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायांश्रीमद्भगवद्गीतामृततरंगिण्यांतृतीयाध्यायप्रवाहः ॥ ३ ॥

---

प्रकृतिसंसर्गी मुमुक्षू सहसा ज्ञानयोगाधिकारी नहीं होसकता है इससे तीसरे अध्यायमें उसको कर्म करनाही उपदेशा तथा ज्ञानयोगीकोभी कर्तृत्वत्यागपूर्वक कर्म करनाही उत्तम कहा और जनसंग्रहके वास्ते भी कर्म करनाही श्रेष्ठ कहा. अब जो जगत् उद्धारके वास्ते मन्वंतरके आदिमें इसी कर्मयोगका उपदेश किया था उसीको इस चौथे अध्यायमें दृढ करते हैं. ज्ञानयोग भी इसीके अंतर्गत है; इससे इसकी ज्ञानयोगाकारता दिखायके कर्मयोगका स्वरूप और भेद तथा उसमें ज्ञानांशकी प्रधानता तथा इसीप्रसंगसे भगवदवतारनिश्चय भी कहते हैं ॥

श्रीभगवानुवाच ।

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ॥
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥ १ ॥

श्रीकृष्णभगवान् अर्जुनसे कहते हैं कि, जो यह योग मैंने तुमसे कहा सो केवल अब युद्धोत्साह बढानेको तुम्हारेहीसे नहीं कहा इसको कल्पकी आदिमें भी कहा है सो सुनो मैं प्रथम इसे अव्यय कर्मयोगको सूर्यसे कहताभया सूर्य वैवस्वतमनुसे कहतेभये मनु इक्ष्वाकुसे कहतेभये ॥ १ ॥

एवं परंपराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ॥
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप ॥ २ ॥

ऐसेही परंपरासे प्राप्त इसको राजऋषि जानतेभये हे परंतप ! सो यह योग इससमयमें बहुत कालकरके नष्टभया था ॥ २ ॥

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ॥
भक्तोसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥ ३ ॥

सोई यह पुरातन योग मैंने तुम्हारेसे आज कहा क्योंकि तुम मेरे भक्त और सखा हो यह उत्तम रहस्य है ॥ २ ॥

अर्जुन उवाच ।

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः ॥
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥ ४ ॥

ऐसे सुनिके अर्जुन कहने लगेकि, तुम्हारा जन्म अभी भया विवस्वानको जन्म प्रथमभया तुम आदिमें उनको कहतेभये ऐसे इसको हम कैसे जानें ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ॥
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥ ५ ॥

अर्जुनके प्रश्नका श्रीकृष्ण भगवान् उत्तर देतेहैं इसीमें आपके अवतारका भी प्रयोजन कहेंगे सो ऐसे कि, हे परंतप ! याने शत्रुनको संतापित करनेवाले अर्जुन ! मेरे और तेरे बहुत जन्म व्यतीतभयेहैं उन सबको मैं जानताहौं तुम नहीं जानतेहो ॥ ५ ॥

अजोपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोपि सन् ॥
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥ ६ ॥

यहां कारण यह है कि, मैं अविनाशी सर्वांतर्यामी हूं सर्वभूतोंका भी ईश्वर भयाहुवा तथा अजन्मा भयाहुवा भी मेरा स्वभाव जो सौशील्य वात्सल्य शरणागतरक्षकत्व इत्यादिक तिसको आश्रितकरके याने उस स्वभावहीसे आपके ज्ञानसहित अवतारलेताहूं जीवको ज्ञान नहीं रहताहै मेरा ज्ञान अखंडहै मैं केवल स्वभक्त स्वसेतुरक्षणार्थं अवतार लेताहूं इसका कारण अगाडीके श्लोकोंमें है ॥ ६ ॥

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ॥
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥ ७ ॥

हे भारत ! जब जब निश्चयपूर्वक धर्मकी हानि अधर्मकी वृद्धि होती है तब मैं रूपको धारणकरताहूं ॥ ७ ॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ॥
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥ ८ ॥

जो स्वस्वभावसे अवतार कहा वह स्पष्ट करतेहैं धर्महानि अधर्मवृद्धि देखके मैं साधुनके संरक्षणके वास्ते और दुष्टनके विनाशके वास्ते युग युगमें धर्मस्थापनके वास्ते अवतार लेताहूं ॥ ८ ॥

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ॥
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥ ९ ॥

हे अर्जुन ! मेरे जन्म और कर्म दिव्य याने प्राकृत नहीं हैं ऐसे जो निश्चयकरके जानता है सो देहको त्यागिके फिरिके जन्म नहीं लेता है अर्थात् मेरेको प्राप्तहोताहै ॥ ९ ॥

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ॥
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥ १० ॥

व्यतीत भये हैं सांसारिक अनुराग भय और क्रोध जिनके तथा सर्वत्र मेरेहीको जानतेहैं और जो मेरे ही आश्रितहैं ऐसे बहुत मेरे स्वरूपज्ञानरूप तपकरके पवित्रभयेहुये मेरी सदृशताको प्राप्तभये हैं॥१०॥

**ये यथा मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम् ॥**
**मम वर्त्मानुवर्त्तंते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ ११ ॥**

हे पृथापुत्र अर्जुन ! सर्व मनुष्य ममवर्त्म याने जो जो सकामनिष्काम वेदमें मार्ग कहेहैं वे मेरेही कहे मार्ग हैं. उन्हीं मार्गोंके आश्रित कर्म करतेहैं तहां जो मेरेको जैसे भजतेहैं मैं उनको वैसे ही भजता हूं; याने जो सकाम इंद्रादिरूप मेरेको भजतेहैं उनको 'तदेवाग्निस्तत्सूर्य अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता' इत्यादि प्रमाणसे इंद्रादिलोक पुत्रादिकामना देता हूं और जो निष्काम मेरेको सर्वेश्वर जानके सर्वकर्म 'कायेन वाचा मनसेंद्रियैर्वा' इत्यादि प्रमाणोंसे मेरे अर्पण करतेहैं उनको मेरे स्वरूपवैभवको प्राप्त करताहूं ॥ ११ ॥

**कांक्षंतः कर्मणां सिद्धिं यजंत इह देवताः ॥**
**क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥ १२ ॥**

जो कर्मोंकी सिद्धिकी इच्छा करतेभये इस लोकमें देवताओंका यजन करतेहैं उनकों निश्चयकरके शीघ्र मनुष्यलोकमें कर्मसे उत्पन्न सिद्धि होती है ॥ १२ ॥

**चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ॥**
**तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्त्तारमव्ययम् ॥ १३ ॥**

गुणकर्मविभागसे जैसे सत्वगुणप्रधान ब्राह्मण उनके शमदमादि कर्म सत्वरजःप्रधान क्षत्रिय उनके शूरत्वादि कर्म रजस्तमः प्रधान वैश्य

उनके कृषिवाणिज्यादि कर्म तमःप्रधान शूद्र उनके परिचर्यात्मक कर्म ऐसे गुणकर्मविभागकरके चातुर्वर्ण्य यह संसार मैंने सृजा है उसका अविनाशी कर्त्ता भी मेरेको अकर्त्ता जानो ॥ १३ ॥

न मां कर्माणि लिम्पंति न मे कर्मफले स्पृहा ॥
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥ १४ ॥

जो प्रथम कहा कि, मेरेको अकर्त्ता जानो उसका कारण कहतेहैं सो ऐसा कि, मेरेको कर्मफलमें इच्छा नहीं इससे मेरे कर्म नहीं लिप्तहोतेहैं ऐसा मेरेको जो जानता है सो कर्मोंकरके नहीं बँधता है ॥ १४ ॥

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ॥
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥ १५ ॥

पूर्वसमयके मनु इत्यादिक मुमुक्षुजनोंने भी ऐसे जानके कर्म कियाहै तिससे तुम पूर्व मुमुक्षुनंकरके पूर्वकालमें किये भये कर्म हीको करो ॥ १५ ॥

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ॥
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् १६

कर्म क्या है और अकर्म क्या है ऐसे इसविषयमें कविजन भी मोहते भये सो कर्म मैं तुम्हारेको कहूंगा जिसको जानके संसारसे मुक्त होगे ॥ १६ ॥

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ॥
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥ १७ ॥

जिसवास्ते कि, कर्म याने करने योग्य कर्म उसका रूप भी जानना चाहिये और विकर्म जिस एककर्ममें विविध प्रकार है उसका रूप भी जानना चाहिये और अकर्म जो निश्चयात्मक बुद्धिकरके केवल ईश्वरारा-

धनार्थं निष्काम कर्म उसकाभी रूप जानना चाहिये इसवास्ते कर्मकी गति दुर्गम है ॥ १७ ॥

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ॥
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥ १८ ॥

अब कर्म और अकर्मका स्वरूप जानना कहतेहैं जो प्रारंभित कर्ममें अकर्म याने आत्मज्ञान देखे याने इस निष्कामकर्महीसे ज्ञान होयगा इससे यह ज्ञानही है और जो मनुष्य अकर्म जो आत्मज्ञान उसमें कर्म याने यह कर्मसे भया कर्म ही है ऐसा देखनेवाला मनुष्य मनुष्योंमें बुद्धिमान् है सो योगी और सोई सर्वकर्मोंका करनेवाला है ॥ १८ ॥

यस्य सर्वे समारंभाः कामसंकल्पवर्जिताः ॥
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पंडितं बुधाः ॥ १९ ॥

जो कर्म प्रत्यक्ष कररहेहैं उसकी ज्ञानाकारता कैसी होगी सो कहते हैं सो ऐसी कि, जिसके सर्व लौकिक वैदिककर्मोंके आरंभ कामना संकल्परहित हैं ज्ञानरूप अग्निकरके दग्धभयेहैं बंधक कर्म जिसके उसको विद्वान्जन पंडित कहतेहैं ॥ १९ ॥

त्यक्त्वा कर्मफलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रयः ॥
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित् करोति सः ॥२०॥

जो कर्मफलका संबंध छोड़के निरंतर आत्मस्वरूपहीमें तृप्त नश्वर संसारके आश्रयरहित कर्ममें प्रवृत्त भी है तोभी सो कुछ नहीं करता है ॥ २० ॥

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥ २१ ॥

जो कर्मफलकी आशारहितचित्त और मन जिसका संयममें हो जिसने परमात्मप्रीतिविना और सर्व उपासना त्यागी हो सो केवल शरीरसंबंधी कर्मको करताभया कर्मबंधनरूप पीड़ाको नहीं प्राप्तहोता है ॥ २१ ॥

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वंद्वातीतो विमत्सरः ॥
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते ॥ २२ ॥

जो आपही आयमिले इतनेही लाभसे संतुष्ट हो और जो सुखदुःख लाभालाभ जय पराजय हर्ष शोक इत्यादिक द्वंद्वोंकरके रहित होय मत्सर जो दूसरेका सुख न सहना उसकरके रहित कार्यकी सिद्धि और असिद्धिमें समबुद्धि सो कर्म करके भी नहीं बंधनपावै ॥ २२ ॥

गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ॥
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥ २३ ॥

निवृत्तभयाहै आत्मानंदविना संग जिसका और संसारवासनासे मुक्त है और आत्मज्ञानमें अवस्थित है चित्त जिसका सो जो यज्ञके अर्थ कर्म करे तो उसके बंधनकारक सर्व प्राचीन कर्म नाश होतेहैं॥२३॥

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ॥
ब्रह्मैव तेन गंतव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ २४ ॥

निष्कामकर्मसे ज्ञान होताहै इस भेदसे कर्मकी ज्ञानाकारता कही. अब परमात्माके अनुसंधानसे उसी निष्कामकर्मकी ज्ञानाकारता कहतेहैं सो ऐसे कि, जिसकरके हव्य अर्पणकरते हैं वह स्रुवादिक वस्तु ब्रह्म है याने ब्रह्महीका कार्यहै घृतादिक हव्य भी ब्रह्महीहै ब्रह्मरूप अग्निमें यह ब्रह्मरूप हव्य ब्रह्मरूप होताकरके होमाजाताहै ऐसे यह सर्व ब्रह्मरूपहै तिसे ब्रह्मकर्मनियमकरके ब्रह्मही प्राप्त होनेयोग्य है ॥ २४ ॥

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ॥

ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥ २५ ॥

ऐसे कर्मयोगकी ज्ञानाकारता कहके अब कर्मयोगके भेद कहतेहैं अपरे 'अकारो वै विष्णुः' इस श्रुतिप्रमाणसे जो विष्णुपरायण हैं वे योगी देवैयज्ञही याने प्रतिमापूजनरूप यज्ञ करतेहैं इनसे और भी ऐसेंही योगी ब्रह्मात्मक अग्निमें यज्ञसाधन सामग्रीकरके हवनात्मक यज्ञेंही को हवन करतेहैं ॥ २५ ॥

श्रोत्रादीनींद्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ॥
शब्दादीन्विषयानन्ये इंद्रियाग्निषु जुह्वति ॥ २६ ॥

और कितने योगी श्रोत्रादिक इंद्रियोंको संयमरूप अग्निमें होमतेहैं अर्थात् श्रोत्रादिकोंको हरिकीर्त्तिश्रवणादिकहीमें युक्त करतेहैं और कितनेक शब्दादिकविषयोंको इंद्रियरूप अग्निमें होमते हैं याने हरिकीर्त्तनविना और श्रवणादिक नहीं करतेहैं ॥ २६ ॥

सर्वाणींद्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ॥
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥ २७ ॥

और कितने योगी सर्व इंद्रियनके कर्मोंको और प्राणोंके कर्मोंको ज्ञानकरके प्रदीप्त ऐसे मनके संयमरूप अग्निमें होमतेहैं अर्थात् मनकरके इंद्रिय प्राण कर्म वृत्तिनको संसारविषयसे निवारणकरके आत्मज्ञानमें लगानेका यत्न करतेहैं ॥ २७ ॥

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ॥
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः शंसितव्रताः ॥ २८ ॥

और कितने योगी द्रव्यसे यज्ञ करतेहैं. याने दानादिक करतेहैं. कितनेक उपवासादि तपरूप यज्ञ करतेहैं. तैसेंही और कितनेक पुण्यक्षेत्रादिक वासरूप योग करते हैं और कितने दृढव्रती यती याने यत्नशील वे वेदाध्ययन वेदार्थविचाररूप यज्ञ करतेहैं ॥ २८ ॥

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथा परे ॥
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥ २९ ॥
अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ॥
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥ ३० ॥
यज्ञशिष्टाऽमृतभुजो यांति ब्रह्म सनातनम् ॥
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ३१॥

और कितनेक कर्मयोगी प्रमाणसे आहार करनेवाले जैसे कि, आधा पेट अन्नसे भरे चौथाई जलसे और चौथाई वायुसंचारनिमित्त खाली राखै ऐसे और प्राणायाम परायण हैं ऐसे योगी अपानमें प्राणको होमतेहैं याने पूरक करतेहैं; तैसेही कितनेक प्राणवायुमें अपानको होमतेहैं याने रेचक करतेहैं. ऐसेही और प्राण अपान दोनोंकी गति को रोकके प्राणोंको प्राणनही में होमतेहैं याने कुंभक करतेहैं; इतने ये सर्व भी यज्ञके जाननेवाले यज्ञकरके पापरहित यज्ञहीका शेष अमृतरूप अन्नके खानेवाले सनातन ब्रह्मको प्राप्त होतेहैं. हे कुरुवंशिनमें श्रेष्ठ अर्जुन! जो यज्ञ नहीं करताहै उसको यह लोकभी नहीं है और परलोक तो कैसे होयगा ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ॥
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥ ३२॥

ऐसे बहुते प्रकारके यज्ञ ब्रह्मके मुखमें याने वेदमें विस्तारसे कहेहैं उन सबको कर्मज जानो याने वे कर्महीसे होते हैं, ऐसे जानिके कर्म करके मुक्त होवोगे ॥ ३२ ॥

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप ॥
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥ ३३ ॥

हे परंतप! द्रव्यमय यज्ञसे ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है, कारण कि, द्रव्य-

यज्ञकाभी फल ज्ञानही है हे पार्थ ! फलसहित सर्व कर्म ज्ञानमें समाप्त होताहै; याने इस ज्ञानहीके वास्ते यज्ञ करतेहैं ॥ ३३ ॥

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ॥
उपदेक्ष्यंति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ ३४ ॥

सो ज्ञान तत्त्वदर्शी ज्ञानीजन तुमको उपदेशेंगे तुम उनकी सेवा करके और सत्कारपूर्वक नमस्कार करके उनसे प्रश्न करके जानो ॥ यहां श्रीकृष्णभगवान्ने केवल ज्ञानीजनोंकी प्रशंसानिमित्त यह वाक्य कहाहै और " अविनाशि तु तद्विद्धि " यहांसे लेके "एषा तेभिहिता सांख्ये" यहां पर्यंत ज्ञान उपदेश तो करही चुकेहैं ॥ ३४ ॥

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पांडव ॥
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥ ३५ ॥

हे पांडुपुत्र ! जिस ज्ञानको जानिके ऐसे मोहको फिर नहीं प्राप्त होगे. जिसज्ञानकरके सर्व भूतप्राणिमात्रको आपसदृश देखोगे. "जैसे कि, प्रकृतिसे भिन्न ये परज्ञानाकारतासे सर्वसमान हैं आपसदृश देखे पीछे फिर मेरेसमान देखोगे याने ज्ञान प्राप्तभये जीव मेरी समताको प्राप्तहोतेहैं सो आगे कहेंगेभी " इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ॥ " यहां ब्रह्मसूत्र भी प्रमाणहै "भोगमात्रसाम्यलिंगाच्च" ऐसेही श्रुतिभी प्रमाण है "तथा विद्वान्पुण्यपापे विधूय निरंजनः परमां शांतिमुपैति ॥" इत्यादिप्रमाणोंसे नामरूपरहित याने सूक्ष्मावस्थामें आत्मा और परमात्माकी स्वरूपसमता निश्चय होतीहै ॥ ३५ ॥

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ॥
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥ ३६ ॥

जो कि, सर्व पापिनसे भी तुम बड़े पापकारक होउगे तो भी इस ज्ञानरूप नौका करकेही सब दुःखसमुद्रको तरोगे ॥ ३६ ॥

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ॥
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥ ३७ ॥

हे अर्जुन ! जैसे प्रज्वलित अग्नि इंधनको समग्रभस्मकरताहै तैसे विज्ञानरूप अग्नि सर्वकर्मबंधनको समग्र भस्मकरताहै ॥ ३७ ॥

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ॥
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विंदति ॥ ३८ ॥

इसलोकमें निश्चयकरके ज्ञानके सदृश पवित्र नहीं है उस ज्ञानको कुछकाल कर्म करते करते कर्मयोगसे सिद्धिभयाहुवा आपहीमें आपे ही प्राप्तहोताहै ॥ ३८ ॥

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेंद्रियः ॥
ज्ञानं लब्ध्वा परां शांतिमचिरेणाधिगच्छति ॥ ३९ ॥

ज्ञानप्राप्तिमें लगाभया इंद्रियोंको संयममें कियेभये श्रद्धावान् पुरुष ज्ञानको प्राप्तहोते हैं उसज्ञानको पाइके थोड़हीकालमें परमशांति को प्राप्त होताहै ॥ ३९ ॥

अज्ञश्चाऽश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ॥
नायं लोकोस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥ ४० ॥

जो अज्ञानहै और ज्ञानप्राप्तिमें श्रद्धाको भी नहीं धारणकियेहै और मनमें संशय रखताहै सो नष्टभ्रष्ट संसारमें भ्रमताहै जिसके मनमें संशय है उसको यह लोक सुखदायक नहीं है परलोक भी नहीं है उसको कहीं भी सुख नहीं है ॥ ४० ॥

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ॥
आत्मवंतं न कर्माणि निबध्नंति धनंजय ॥ ४१ ॥

हे अर्जुन ! परमेश्वराराधनरूप जो निष्काम कर्मयोग उस योगकरके

परमात्माके अर्पण कियेहैं कर्म जिसने और ज्ञानकरके संछिन्नभये हैं संशय जिसके ऐसे स्थिरचित्त ज्ञानीको कर्म नहीं बंधनकरतेहैं ॥४१॥

तस्मादज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः ॥
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मसंन्यासयोगो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

हेभरतवंशोत्पन्न अर्जुन ! तिससे जो अज्ञानसे उत्पन्न तुम्हारे हृदयमें स्थित ऐसे इस आपके संशयको ज्ञानखड्गसे छेदनकरके उठो और कर्मयोगमें प्रवृत्त होउ याने क्षत्रियका कर्म युद्ध करो ॥ ४२ ॥

इति श्रीमत्सुकुलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायांश्रीमद्भगवद्गीतामृततरंगिण्यां चतुर्थोऽध्यायप्रवाहः ॥ ४ ॥

---

अर्जुन उवाच।

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि ॥
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥ १ ॥

श्रीकृष्णको अर्जुन पूंछतेहैं कि, हे कृष्ण! कर्मोंका संन्यास जो ज्ञानयोग उसको और फिर कर्मयोगको कहतेहो इन दोनोंमें एक जो निश्चय कियाभया श्रेष्ठ होय उसीको मुझे कहो जैसे कि, दूसरे अध्यायमें कहा कि, मुमुक्षु प्रथम कर्मकरके अंतःकरण शुद्धभयेपर ज्ञानयोग करके आत्मदर्शनका उपायकरे तीसरे चौथेमें ज्ञानीको भी कर्म करना ही श्रेष्ठ कहा, ऐसे दोनों कहते हो जो इन दोनोंमें श्रेष्ठ हो सोई कहो॥१॥

श्रीभगवानुवाच।

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ॥
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥ २ ॥

जब अर्जुनने प्रार्थना की तब श्रीकृष्ण भगवान् बोले सो ऐसे कि, संन्यास जो कर्मका त्याग और कर्मयोग ये दोनों कल्याणकारक हैं. तिनमेंसे भी कर्मके त्यागसे कर्मयोग विशेष श्रेष्ठ है ॥ २ ॥

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति ॥
निर्द्वंद्वो हि महाबाहो सुखं बंधात्प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

हे महाबाहो ! जो न कोई वस्तुसे द्वेष करै, न चाहनाकरै, सो सुखदुःखादि द्वंद्वरहित नित्यसंन्यासी जानना वह सुखपूर्वक निश्चय बंधनसे मुक्त होताहै ॥ ३ ॥

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदंति न पंडिताः ॥
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विंदते फलम् ॥ ४ ॥

जो मूर्ख हैं वे सांख्ययोगोंको याने ज्ञानकर्मोंको न्यारे कहतेहैं पंडित नहींकहतेहैं. इन दोनोंमेंसे एकमें भी अच्छीतरहसे स्थितरहाभया दोनोंके फलको पाता है ॥ ४ ॥

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ॥
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥ ५॥

जो स्थान ज्ञानकरिके प्राप्तहोताहै सोई कर्मकरिकेभी प्राप्तहोता है; इससे ज्ञानको और कर्मको जो एक जानताहै सो जानता है याने विद्वान् है ॥ ५ ॥

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ॥
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म न चिरेणाधिगच्छति ॥ ६ ॥

हे महाबाहो ! यह संन्यास कर्मविना प्राप्तहोनेको दुर्गम है याने होने-

हीका नहीं और जो कर्मयोगयुक्त आत्मज्ञानमें मनलगाये है सो थोड़ेही कालमें ब्रह्मको प्राप्तहोताहै ॥ ६ ॥

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेंद्रियः ॥
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ ७ ॥

जो कर्मयोगयुक्त है याने निष्काम कर्म करताहै और वाणी जिसकी शुद्ध है याने वाणीसे हरिकीर्त्तन करताहै और मन शुद्ध है याने मनसे हरिस्मरण करताहै और जितेंद्रिय है याने इंद्रियविषयको श्रेष्ठ नहीं जानताहै और सर्वभूतप्राणीका आत्मा अंतर्यामीमें है आत्मा मन जिसका सो पुरुष कर्म करताभया भी नहीं लिप्त होता है ॥ ७ ॥

नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ॥
पश्यञ्छृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्छ्वसन् ॥८॥
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ॥
इंद्रियाणींद्रियार्थेषु वर्तंत इति धारयन् ॥ ९ ॥

इंद्रियनके विषयोंमें इंद्रियां वर्त्तमान रहतीहैं ऐसे धारणकरेभये तत्वज्ञानी कर्मयोगी देखता, सुनता, स्पर्शता, सूंघता, खाता, चलता, सोता, श्वासलेता, बोलता, छोड़ता, पकरता, नेत्रखोलता, मीचता भयाभी मैं कुछ भी नहीं करताहूं ऐसे मानताहै ॥ ८ ॥ ९ ॥

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः ॥
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवांभसा ॥ १० ॥

जो शरीरमें याने शरीरस्थ इंद्रियनेमें कर्मोंको धारणकरके याने कर्मकरनेवाली इंद्रियां है ऐसे जानिके कर्मफलासक्तिको त्यागिके कर्म करता है सो पापकरके नहीं लिप्त होताहै, जलकरके कमलपत्रसरीखा ॥ १० ॥

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिंद्रियैरपि ॥
योगिनःकर्म कुर्वंति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥ ११ ॥

जो योगी हैं वे फलसंग त्यागिके आत्मशुद्धिके वास्ते याने आत्मगत प्राचीन कर्मबंधन छूटनेके वास्ते शरीरकरके, मनकरके, बुद्धिकरके, केवल इंद्रियोंकरके भी कर्म करते हैं ॥ ११ ॥

युक्तःकर्मफलं त्यक्त्वा शांतिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ॥
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबद्ध्यते ॥ १२ ॥

युक्त याने आत्मज्ञान योगयुक्त पुरुष कर्मफलको त्यागिके ईश्वरनिष्ठ शांतिको प्राप्तहोताहै जो आत्मज्ञान योगरहित है सो यथेष्ट करणकरके फलविषे आसक्तभया ऐसा जो जीव सो बंद्धहोय ॥ १२ ॥

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी ॥
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥१३॥

वशी याने जिसका चित्त वशहै ऐसा देही देहधारी जीव सो नवद्वारका पुर जो देहहै तिसमें मनसे सब कर्मोंको स्थापितकरके न करता नैं करांता भया सुखें जैसे होय तैसे ही रहता है ॥ १२ ॥

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ॥
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्त्तते ॥ १४ ॥

प्रभु याने अविनाशी आत्मा लोक जो देवादिक शरीर तिसका नैं कर्त्तापन न कर्म नं कर्मफलके संयोगको सिरजताहै क्योंकि, यह स्वभाव याने अनादिकाल प्रकृतिसंसर्गकी वासना प्रवृत्त है ॥ १४ ॥

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ॥
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यंति जंतवः ॥ १५ ॥

जैसे कि, कर्तृत्व और कर्मोंको नहीं उत्पन्नकरताहै इसीसे यह जी-

आत्मा किसी शरीरसंबंधी पापको भी नहीं ग्रहणकरता है और सुकृत को भी नहीं ग्रहणकरता है क्योंकि, जिनका ज्ञान अज्ञानकरके ढके-रहाहै उस करके वे जीव मोहको प्राप्त होतेहैं याने अज्ञानकरके देहा-दिकमें आसक्ति और उससे दुःख होताहै ॥ १५ ॥

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ॥
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥ १६ ॥

परंतु जिनका आत्मसंबंधी ज्ञानकरके वह अज्ञान नष्टभयाहै उनका वह श्रेष्ठ ज्ञान सूर्यसदृश प्रकाश करताहै याने वे संसारदुःखरहित मुक्तहैं १६।

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ॥
गच्छंत्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ १७ ॥

उस आत्मज्ञानहीमें है बुद्धि जिनकी उसीमें है मन जिनका उसीमें है निष्ठा जिनकी और वही है श्रेष्ठस्थान जिनका इसतरहसे ज्ञानकरके नष्ट भये हैं मनके विकार जिनके वे पुरुष मुक्तिको पावतेहैं ॥ १७ ॥

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ॥
शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः ॥ १८ ॥

विद्या और विनययुक्त ब्राह्मणमें, गऊमें, हाथीमें और कुत्तेमें और चांडालमें भी पंडितजन समदर्शी होतेहैं याने आत्माको आपसदृश जानते हैं ॥ १८ ॥

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ॥
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः १९॥

जिनका मन ऐसी समतामें स्थितहै उन्होंने इहां ही संसार जीता है. जिसवास्ते कि, ब्रह्म निर्दोष सर्वत्र समान है तिसीसे वे ब्रह्मप्राप्ति-निमित्त स्थित हैं ॥ १९ ॥

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् ॥
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः ॥ २० ॥

प्रियवस्तुको पायके हर्षना नहीं और अप्रियको पायके व्याकुल न होना; ऐसा स्थिरबुद्धि, विचारशील ब्रह्मका ज्ञाता ब्रह्मप्राप्तिनिमित्त स्थितहै ॥ २० ॥

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विंदत्यात्मनि यत्सुखम् ॥
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ॥ २१ ॥

जो शब्दादिक विषयोंमें अनासक्तभयाहुआ जो आत्मामें सुखको पावताहै सो ब्रह्मप्राप्ति उपायचित्तवाला पुरुष अक्षय सुखको पावताहै याने मोक्ष पाताहै ॥ २१ ॥

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ॥
आद्यंतवंतः कौंतेय न तेषु रमते बुधः ॥ २२ ॥

हे कुंतीपुत्र! जे शब्दस्पर्शादिक भोग हैं वे दुःखके कारण आद्यंतवंत याने होतेजाते रहते हैं अर्थात् अल्पसुख हैं इस निश्चयसे उनमें पंडितजन नहीं रमते हैं ॥ २२ ॥

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात् ॥
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥ २३ ॥

जो मनुष्य कामक्रोधके वेगको शरीरसे निकसनेके प्रथम उस वेगको सहनेको सकताहै सो योगी है सो मनुष्य इसी ही लोकमें सुखीहै ॥ २३ ॥

योंतःसुखोऽतरारामस्तथांतर्ज्योतिरेव यः ॥
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥ २४ ॥

जो आत्माहीमें सुखी और आत्माहीमें है विश्राम जिनको तैसे

ही जो अंतर्ज्योति याने आत्मज्ञान ही करके प्रकाशितहै सोई योगी ब्रह्मप्राप्ति उपायतत्पर ब्रह्मवत् मुक्तिको प्राप्तहोताहै ॥ २४ ॥

लभंते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ॥
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥ २५ ॥

जिनके लाभ अलाभ सुखदुःखादिक दो दो उपद्रव नष्ट भयेहैं जिनका मन ईश्वरमें लगाहै और सर्वभूतप्राणिमात्रके हितमें रहतेहैं इससे उनके पाप क्षीण भयेहैं ऐसे ऋषिजन ब्रह्मसमान मुक्तिको पातेहैं ॥ २५ ॥

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ॥
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥ २६ ॥

जो कामक्रोधरहित हैं और ईश्वरप्राप्तिके यत्नकरनेवालेहैं और चित्त जिनके वश हैं ऐसे आत्मज्ञानिनको सर्वप्रकारसे ब्रह्मसुख वर्त्तमान होरहाहै ॥ २६ ॥

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवांतरे भ्रुवोः ॥
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यंतरचारिणौ ॥ २७ ॥
यतेंद्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ॥
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥ २८ ॥

बाह्यइंद्रियोंके स्पर्श जो शब्दादिक विषय तिनको बाहर याने त्याग करके फिर भौंहोंके मध्यमें दृष्टिको करके नासिकाके भीतरही संचार करैं ऐसे प्राणापानोंको सम करके जो मुनि याने मननशील पुरुष इंद्रिय, मन और बुद्धिको वश करै मोक्षहीमें आसक्त इच्छा, भय और क्रोधकरके रहित होय सो सदा मुक्तही है ॥ २७॥ २८ ॥

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ॥
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शांतिमृच्छति ॥ २९ ॥

अब और भी अतिसुगम मुक्तिका उपाय कहतेहैं. सर्व यज्ञ और तपोंका

भोक्ता सर्वलोकोंका महेश्वर याने लोकेश्वरोंका भी ईश्वर सर्वभूतप्रा-
णिनका सुहृद् ऐसा मेरेको जानिके भी मुक्तिको प्राप्तहोता है ॥२९॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायां योग-
शास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मसंन्यासयोगो-
नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इति श्रीमंत्सुकुलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां
गीतामृततरंगिण्यां पंचमाध्यायप्रवाहः ॥ ५ ॥

---

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ॥
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ॥ १ ॥

कर्मयोग कहिके अब ज्ञानकर्मसाध्य आत्मदर्शनरूप योगाभ्यास
कहतेहैं. तहां कर्मयोगकी अपेक्षारहित योगसाधनत्व दृढकरनेको
ज्ञानाकार कर्मयोगको योगशिरोमणि कहतेहैं सो ऐसे कि, जो कर्म-
फलको नचाहताभया स्ववर्णाश्रमोचित करनेयोग्य कर्मको करताहै
सो संन्यासी है और योगीहै और जिसने अग्निकर्मको त्यागाहै सो
संन्यासी और योगी नहीं है और जिसने क्रियाकर्मको त्यागाहै
सोभी संन्यासी योगी नहींहै ॥

यहां श्रीकृष्णका एक अभिप्राय औरभी दीखताहै कि, कलियु-
गमें संन्यासका निर्वाह होगानहीं. क्योंकि मनुष्योंकी बुद्धि चंचल
होगी. सो देखनेमेंभी आता है कि, जो घर छोड़ते हैं तौ संन्यासी
हैके मठ बांधिके व्यापार करते हैं. जो स्त्री विवाहित नहीं तौ परस्त्री-
गमन करते हैं. पुत्रोंकी जगह शिष्य करते हैं; ऐसेही औरभी
सामान्यगृहस्थोंसे अधिक रखके केवल प्रपंचरत होते हैं इससे
श्रीकृष्णने निष्कामकर्मकर्त्ताहीको संन्यासी योगी कहा है और
अग्निकर्म तथा क्रियात्यागनेका निषेध किया है ॥ १ ॥

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पांडव ॥
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ॥ २ ॥

अब कहेभये कर्मयोगमें ज्ञानभी दिखातेहैं- हेपांडुपुत्र ! जिसको संन्यास कहतेहैं उसको अभेदकरके योग जानो जिसवास्ते कि, कर्मफल संकल्प त्यागेविना कोईभी योगी नहीं होता है- अर्थात् कर्मफलको ईश्वरार्पण कियेविना योगी संन्यासी होता नहीं- जो कर्मफलको ईश्वरार्पण करताहै वही योगी और संन्यासी है ॥ २ ॥

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ॥
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥ ३ ॥

आत्मज्ञानकी प्राप्ति चाहनेवाले मननशीलको ज्ञानप्राप्तिकारण कर्म कहाहै उसी ज्ञानप्राप्तभयेको मुक्तिकारण संकल्पविकल्पत्यागपूर्वक कर्म ही कहाहै ॥ ३ ॥

यदा हि नेंद्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ॥
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥ ४ ॥

जब न इंद्रियोंके विषयनमें न कर्मोंमें आसक्तहोय तब सर्वसंकल्पोंका त्यागी योगारूढ कहाताहै इससे कर्मकरना अवश्यहै ॥ ४ ॥

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ॥
आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ ५ ॥

ऐसे आपके वश मनकरके आपको उद्धारकरना, आपका अवसाद याने घात याने अधोगति नकरना- कारण कि, आपका मन ही आपका मित्र है और वह मन ही आपका शत्रु है ॥ ५ ॥

बंधुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ॥
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥ ६ ॥

जिसने बुद्धिकरके निश्चय मन जीताहै उस जीवात्माका मन मित्र है और जिसने मन नहीं जीताहै उसका मन ही शत्रुत्वमें शत्रुसरीखा होता है ॥ ६ ॥

**जितात्मनः प्रशांतस्य परमात्मा समाहितः ॥**
**शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥ ७ ॥**

शीत उष्ण सुख और दुःखमें तैसेही मान अपमानोंमें जीताहै मन जिसने ऐसे शांतकी बुद्धि अतिशय परिपूर्ण रहतीहै ॥ ७ ॥

**ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेंद्रियः ॥**
**युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्ठाश्मकांचनः ॥ ८ ॥**

ज्ञान जो आत्मज्ञान विज्ञान जो विशेषज्ञान याने अनात्म आत्मविवेक इन करके जिसका मन तृप्त होय कूटस्थ याने सर्वशरीरोंमें आत्माको समान जानिके निर्विकार इसीसे जितेंद्रियत्वसे जो ठीकरी पत्थर और सोना इनको सम जान रहाहै ऐसा योगी युक्त याने आत्मदर्शनयोगयुक्त कहाताहै ॥ ८ ॥

**सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबंधुषु ॥**
**साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥ ९ ॥**

सुहृद् जो प्रत्युपकारविना हितकारक मित्र परस्पर उपकारी अरि शत्रु उदासीन जो प्रीति वैररहित मध्यस्थ जो सर्वकाल प्रीति वैर समान द्वेष्य जो सदा ईर्षा करता होय सो जो सदाहितेच्छु सो बंधु जो धर्मशील सो साधु और जो पापशील सो पापी इन सबोंमेंभी जो समबुद्धि होय सो श्रेष्ठ है ॥ ९ ॥

**योगी युंजीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ॥**
**एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥ १० ॥**

एकही बैठा स्ववशचित्तमनवाला सांसारिक आशारहित आत्म-

विना परिग्रहरहित ऐसा योगी एकांतमें बैठाभया मनको निरंतर परमात्मामें लगातारहै ॥ १० ॥

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ॥
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥ ११ ॥
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेंद्रियक्रियः ॥
उपविश्यासने युंज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥ १२ ॥

अब योगाभ्यासमें आसननियम कहतेहैं. जैसे कि, पवित्र स्थानमें न अति ऊंचा न अति नीचा कुशासनपर मृगचर्मादिक उसपर वस्त्र ऐसा और थिर आपका आसन बिछाइके उस आसनपर बैठिके मनको एकाग्र करके चित्त और इंद्रियोंके कर्म स्ववशकिये भया अपना बंधन छुटनेके वास्ते योगको करै ॥ ११ ॥ १२ ॥

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरम् ॥
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ १३ ॥
प्रशांतात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ॥
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥ १४ ॥

अब बैठनेका नेम कहतेहैं–काया जो मध्यशरीर शिर और ग्रीवा इनको अचल थिर और सम राखेभये आपके नासिकाग्रको देखिके और औरऔर नदेखताभया प्रशांतचित्त भयरहित ब्रह्मचर्यव्रतमें स्थित मेरेमें चित्तलगाये भये मनको नियमितकरके आत्मनिष्ठ पुरुष मेरेमें लीनभयाहुआ बैठारहै ॥ १३ ॥ १४ ॥

युंजन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ॥
शांतिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥ १५ ॥

ऐसे नियममें मनहै जिसका ऐसा योगी ऐसेही सर्वकालमें मनको मेरेमें लगाताभया आनंद है परम जिसमें ऐसी मेरेसदृश शांतिको पावताहै ॥ १५ ॥

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकांतमनश्नतः ॥
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥ १६ ॥

अब योगीके आहारादिकोंका नियम कहतेहैं—जैसे कि, हे अर्जुन ! जो अति भोजन करताहै उसका योग नहीं सिद्धहोताहै; और जो कुछभी भोजन नकरै उसकाभी योग नहीं सिद्धहोताहै और अति-सोनेवालेका योग नहीं सिद्धहोताहै; और अतिजागनेवालेका भी योग नहीं सिद्धहोताहै ॥ १६ ॥

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ॥
युक्तस्वप्नाऽवबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ १७ ॥

जो आहार और स्त्रीप्रसंग प्रमाणसें करैगा " आहारका प्रमाण यह कि, आधापेट अन्नसे और चौथाई जलसे भरके चौथाई पवनसं-चारके वास्ते खाली राखे, स्त्रीप्रसंगप्रमाण यह कि, अतिकामकी इच्छा होनेसे स्त्रीसंग करै, जो कोई यहां शंका करै कि, योगीको तो ब्रह्म-चर्य कहि आये हैं—जैसे कि, इसी अध्यायके चौदहवें श्लोकमें कहाहै सो सत्य है; परंतु " ऋतौभार्यामुपेयात् " इस श्रुतिप्रमाणसे ऋतु-समयमें स्त्रीप्रसंग करनेमेंभी एक ब्रह्मचर्य है; औरभी कहाहै कि, "इंद्रियाणींद्रियार्थेषु वर्त्तंत इति धारयन् ॥ कर्मेंद्रियाणि मनसा निय-म्यारभतेऽर्जुन" इत्यादि तथा कहेंगे कि, " अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्" तो जो योगी स्त्रीप्रसंग न करैगा तो उसके कुलमें जन्म कैसे होगा ? इत्यादि प्रमाणोंसे योगी स्त्रीप्रसंग प्रमाणसे करै यह विहारशब्दका अर्थ सिद्धहै। ऐसेही कर्ममेंभी चेष्टा प्रमाणहीसे करै अति परिश्रम नकरना यहां भागवतका प्रमाणदेतेहैं " सिद्धेऽ-न्यथार्थे न यतेत तत्र परिश्रमं तत्र समीक्षमाणः" ऐसा द्वितीयस्कंधके

दूसरे अध्यायके तीसरे श्लोकमें कहाहै ऐसेही जो प्रमाणसे सोवे और प्रमाणहीसे जागे उसका दुःखनाशक योग सिद्ध होताहै ॥ १७ ॥

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ॥
निःस्पृहःसर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥ १८ ॥

जब आत्माहीमें अतिनिश्चल चित्त लगरहताहै तब सर्वकामना-ओंसे निःस्पृहहुआभया वह पुरुष युक्त ऐसा कहाताहै ॥ १८ ॥

यथा दीपो निवातस्थो नेंगते सोपमा स्मृता ॥
योगिनो यतचित्तस्य युंजतो योगमात्मनः ॥ १९ ॥

जैसे निवातस्थानमें धराभया दीपक नहीं हालता तथा डोलताहै तैसेही वशहै चित्त जिसका ऐसे योगके करनेवाले योगीके मनकी उपमा सोई कहीहै ॥ १९ ॥

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ॥
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥ २० ॥

योगसेवन करके विषयोंसे रोकाभया चित्त जहां विश्रामको प्राप्त होताहै और जहां बुद्धिकरके आत्मस्वरूपको निश्चय करता भया मन हीमें संतुष्ट होय ॥ २० ॥

सुखमात्यंतिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतींद्रियम् ॥
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्वतः ॥ २१ ॥

जो इंद्रियोंके जाननेमें नआवे बुद्धिकरके ग्रहणकरनेमें आवे ऐसा अत्यंत सुख उसको जिसयोगमें स्थितभयाहुआ यह पुरुष जानेहै ऐसा निश्चय और फिर आत्मस्वरूपसे न चलायमान होय ॥ २१ ॥

यं लब्ध्वा चाऽपरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ॥
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥२२॥

जिसको पायके फिर उससे अधिक श्रेष्ठ लाभ नहीं मानताहै जिसमें प्रवर्त्त भारी भी दुःखकरके नहीं घबराताहै ॥ २२ ॥

तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ॥
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥ २३ ॥

उसको दुःखसंयोगवियोगकारक योगनामक जानना सो योग निर्विकल्पचित्तसे निश्चयकरके करनेही योग्यहै ॥ २३ ॥

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ॥
मनसैवेंद्रियग्रामं विनियम्य समंततः ॥ २४ ॥
शनैःशनैरुपरमेत् बुद्ध्या धृतिगृहीतया ॥
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिंतयेत् ॥ २५ ॥

स्पर्शजन्य और संकल्पज ऐसे भेदसे कामना दोप्रकारकी है, तिनमें स्पर्शज शीत उष्णादिक, संकल्पज पुत्रवित्तादिक इनमें स्पर्शजका त्याग स्वरूपसे नहींहोसकता इससे संकल्पज सर्व कामनाओंको समग्रतासे मनहीसे त्यागिके सर्व इंद्रियोंको सर्वत्रसे नियमित करके विवेकशुद्ध बुद्धिकरके धीरे धीरे विश्रामको प्राप्तहोना फिर मनको आत्मस्वरूपमें स्थिर करके आत्मस्वरूपविना किसीकाभी न चिंतवनकरना ॥ २४ ॥ २५ ॥

यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम् ॥
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ २६ ॥

यह मन चंचल है इसीसे आत्मस्वरूपमें थिर नहीं रहताहै. सो यह मन जहां जहां लगै तहांतहां से इसको फिरायके आत्मस्वरूपहीमें लगाना ॥ २६ ॥

प्रशांतमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ॥
उपैति शांतरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥ २७ ॥

कारणं कि, जिसका मन आत्मस्वरूपमें स्थिर है उसीसे उसका रजोगुणभी नष्टभयाहै, उससे वह निष्पापहै, उससे वह आपके स्वरूपमें स्थिरहै ऐसे इस योगीको उत्तम याने आत्मानुभवरूप सुखं प्राप्त होताहै ॥ २७ ॥

युंजन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ॥
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यंतं सुखमश्नुते ॥ २८ ॥

ऐसे निष्पाप योगी इसीतरहे सर्वदा मनको स्वरूपज्ञानमें युक्त करताकरता ब्रह्मानुभवरूप अत्यंत सुखको सुखसे पावताहै ॥ २८ ॥

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ॥
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ २९ ॥

सर्वत्र शत्रुमित्रादिकोंमें समदृष्टियोग जो "द्वासुपर्णासयुजा सखाया" इस श्रुतिप्रमाणसे सखित्वरूप संयोग उसमें लगायाहै मन जिसने सो आपरूपको आकाशादि सर्वभूतोंमें स्थित और उनका आकाशादि सर्वभूतोंको आपमें देखताहै ॥ २९ ॥

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ॥
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥३०॥

ऐसे जो मेरेको सर्वत्र मालाके मणिकोंमें सूत्रकीतरह देखता है और सर्वजगत् सूत्रमें मणियोंकी तरह मेरेमें देखता है मैं उसके अदृश्य नहीं होताहूं और वह मेरे नहीं अदृश्य है ॥ ३० ॥

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ॥
सर्वथा वर्त्तमानोपि स योगी मयि वर्त्तते ॥ ३१ ॥

जो एकत्वं याने सर्वसे मित्रभाव, ( एकत्वका अर्थ जो स्वरूपकी एकताकरै तो भजन किसका करै ? इससे मित्रताही अर्थ है. वाल्मीकीय सुंदरकांडमें भी " रामसुग्रीवयोरैक्यं देव्येवं समजायत " इस

हनुमान्‌के वाक्य करके एकताका अर्थ मित्रता ही सिद्ध होताहै इस से ) जो सर्वकी मित्रतामें रहाभया सर्वभूतोंमें व्यापक मेरेको भजताहै निश्चय सो योगी सर्व आचरण करताभया मेरेमें. वर्त्तमानहै याने मेरे हृदयमें वसता रहताहै ॥ ३१ ॥

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ॥
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥ ३२ ॥

हे अर्जुन ! जो सुखं अथवा दुःखको आपके समत्व करके सर्वत्र समान देखता है सो योगी उत्तम है. यह श्लोक उनतिसवे श्लोकका खुलासा करनेवाला है ॥ ३२ ॥

अर्जुन उवाच ।

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ॥
एतस्याहं न पश्यामि चंचलत्वात्स्थितिं स्थिराम् ३३

श्रीकृष्णके वाक्य सुनके अर्जुन बोलते भये कि, हे मधुसूदन ! जो यह योग समताकरके तुमने कहा सो मनके चंचलत्वसे मैं इस की स्थिर स्थिति नहीं देखताहूं ॥ ३३ ॥

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ॥
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥ ३४ ॥

हे कृष्ण ! जिससे कि यह मन चंचल इंद्रियोंका क्षोभक दृढ बली है मैं इसको रोकना पवनका रोकना जैसा दुष्कर मानताहूं ॥ ३४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ॥
अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ ३५ ॥

ऐसा सुन श्रीकृष्णभगवान् बोले कि, हे महाबाहो ! यह मन चंचल है इसीसे रोकनेमें आना कठिन है. पर संशय नहीं तोभी हे कुंती-

पुत्र ! अभ्यास करके और वैराग्यकरके रोकनेमें आताहै ॥ ३५ ॥

**असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ॥**
**वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥ ३६ ॥**

यह योग जिसने मन वश न किया उसेकरके प्राप्त होनेका नहीं ऐसी मेरी मति है और जिनने मनको वश कियाहै उसकरके यत्न करते करते उपायसे प्राप्ति होनेको सकताहै ॥ ३६ ॥

अर्जुन उवाच ।

**अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः ॥**
**अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति॥३७॥**

"नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते" इत्यादि वाक्यों-करके योगमाहात्म्य सुना था तो भी विशेषज्ञानके वास्ते फिर पूंछ-ते हैं-जैसे कि, हे कृष्ण! जो श्रद्धाकरके युक्त और यत्न न करसका इस से योगसे मन चलायमान भया इससे योगसिद्धिको न पायके किस गतिको जाताहै ॥ ३७ ॥

**कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ॥**
**अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥ ३८ ॥**

हे महाबाहो! वेदके मार्गमें भूलाभया याने स्वर्गादिप्राप्तिनिमित्त कर्मत्यागके निष्कामकर्मरूप योगको भी न प्राप्तभया इसीसे वह अप्रतिष्ठित और उभयभ्रष्ट याने स्वर्गादिप्राप्तिकारक कर्मभी छोडा और योगभी नामिला इसीसे कदाचित् छिन्नाभ्रकी तरह जैसे बडे मेघमेंसे निकसिके मेघका टुकडा दूसरे मेघको न प्राप्त होके बीच-हीमें नष्टहोताहै तैसे न नष्टहोई ॥ ३८ ॥

**एतन्मे संशयं कृष्ण च्छेत्तुमर्हस्यशेषतः ॥**
**त्वदन्यः संशयस्यास्य च्छेत्ता नह्युपपद्यते ॥ ३९ ॥**

हे कृष्ण ! इस मेरे संशयको अच्छीतरहसे छेदन करनेको योग्यहो क्योंकि, इस संशयका छेदनेवाला तुमबिन दूसरा नहीं मिलेगा ॥ ३९ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

पार्थ नैव इह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ॥
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥ ४० ॥

अर्जुनके वाक्य सुनिके कृष्ण बोले कि, हे पार्थ ! उस योगीका नाश न इस लोकमें ही न परलोकमें होताहै; क्योंकि हे तात ! शुभकर्त्ता कोई भी दुर्गतिको नहीं पावताहै ॥ ४० ॥

प्राप्य पुण्यकृतांल्लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ॥
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥ ४१ ॥

जो योग पूराभयेविना मरजाय तौ भी वह योगभ्रष्ट पुण्यकरके उपार्जित लोकोंको प्राप्तहोके वहां अनेक वर्ष रहिके पवित्र और धनवालोंके घरमें जन्मताहै ॥ ४१ ॥

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ॥
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥ ४२ ॥

अथवा बुद्धिमान् योगिनके कुलमें ही जन्मताहै, जो ऐसा यह जन्म सो इस लोकमें निश्चय दुर्लभहै ॥ ४२ ॥

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदैहिकम् ॥
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनंदन ॥ ४३ ॥

हे कुरुनंदन ! वहां जन्मलेके वही पूर्व देहसंबंधि बुद्धिसंयोगको पावताहै और उसपीछे फिरभी उस सिद्धिनिमित्त यत्नकरताहै ॥ ४३ ॥

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोपि सः ॥
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्त्तते ॥ ४४ ॥

जो न करना चाहै इंद्रियजित न होय तो भी वह पुरुष उसी

पूर्वाभ्यासकरके ही उसीको प्राप्तहोताहै. क्योंकि जो योगके जाननेकी भी इच्छाकरे तौ भी शब्दब्रह्म वाले देवादिनाम शब्दयुक्त जो प्रकृति उसको उल्लंघन करजाताहै याने मुक्त होता है ॥ ४४ ॥

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ॥
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥ ४५ ॥

ऐसे प्रयत्नसे योगकरता करता निष्पाप भयाहुआ योगी अनेक जन्मोंकरके सिद्धभया तब उत्तम मुक्तिको प्राप्तहोताहै ॥ ४५ ॥

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ॥
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥४६॥

हे अर्जुन ! योगी जो निष्काम कर्म कर्त्ता सो सकामिक तपस्विनसे अधिक मानाहै, ज्ञानिनसे भी अधिकहै और सकाम कर्म करनेवालोंसे भी योगी अधिकहै; तिससे तुम योगी हो याने निष्काम होके स्वधर्मरूप क्षत्रियकर्म युद्ध करो ॥ ४६ ॥

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनांतरात्मना ॥
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥४७॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अभ्यासयोगोनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

जो श्रद्धावान् पुरुष मेरेमें लगारहै जो चित्त ऐसे चित्तकरके मेरेको भजताहै सो सब योगिनमें भी श्रेष्ठ योगी है ऐसा मेरी अभिप्राय है ॥ ४७ ॥

इति श्रीमत्सुकुलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायांश्रीमद्भगवद्गीतामृततरंगिण्यां षष्ठाध्यायप्रवाहः ॥ ६ ॥

इति प्रथमं षट्कं समाप्तम्।

अथ द्वितीयषट्कं प्रारभ्यते ॥ प्रथम षट्कमें याने प्रथमके छः अध्यायनमें ईश्वरप्राप्तिका उपायरूप भक्तियोगका अंग आत्मस्वरूपज्ञानकी प्राप्ति ज्ञानयोग कर्मयोगसे कही. अब मध्यषट्कमें याने छःसे बारहपर्यंत छः अध्यायनमें परमात्मस्वरूपका यथार्थ ज्ञान और उस ज्ञानके माहात्म्यपूर्वक भगवान्की उपासना याने भक्ति इसीको प्रतिपादन करते हैं. इसका खुलासा अठारवहें अध्यायमें पैंतालिस श्लोकपीछे "यतःप्रवृत्तिः" यहाँसे लेके "मद्भक्तिं लभते परां" इस चौअनवें श्लोकपर्यंत कहेंगे. अब सातवें अध्यायमें भगवान् आपका स्वरूपवैभव वर्णन करेंगे ॥

श्रीभगवानुवाच ।

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युंजन्मदाश्रयः ॥
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥ १ ॥

हे पृथापुत्र अर्जुन ! तुम मेरेमें चित्तलगायेभये मेरे आश्रित भयेहुये योगमें युक्तभये हुये जैसे संशयरहित समग्र याने विभूतिबलसहित मेरेको जानोगे सो सुनो ॥ १ ॥

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ॥
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ २ ॥

मैं तुम्हारेको इस विज्ञानसहित ज्ञानको संपूर्णकरके कहताहूं जिसको जानके फिर इस लोकमें और जाननेयोग्य नहीं रहता है॥२॥

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ॥
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्वतः ॥ ३ ॥

मनुष्योंके हजारोंमें याने अनेक हजारमनुष्योंमें आत्मज्ञानसिद्धिके वास्ते कोई एक यत्नकरताहै यत्नकरनेवाले सिद्धोंमें भी

कोई एक मेरेको निश्चयकरके जानताहै अर्थात् ऐसा जाननेवालाही दुर्लभ है॥ ३॥

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च॥
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥ ४॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्॥
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥ ५॥

हेमहाबाहो! पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार ऐसे आठ प्रकारकरके न्यारीन्यारीभयी यह जो मेरी प्रकृति सो यह अपरा याने जड है और इससे और जीवरूपको मेरी परा याने चेतन प्रकृति जानो जिस प्रकृतिकरिके यह जगत् धारण भयाहै॥ ४॥ ५॥

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय॥
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा॥ ६॥

सर्वभूत प्राणीमात्र इन्ही दोनोंसे प्रगट होतेहैं ऐसा जानो. मैं सब जगत्का उत्पत्तिस्थान तथा प्रलयस्थान भी हूं॥ ६॥

मत्तः परतरं किंचिन्नान्यदस्ति धनंजय॥
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥ ७॥

सूत्रमें मालाके मणियोंकी तरह मेरेमें यह सर्वजगत् पोहा है इसीसे हे धनंजय मेरेसे न्यारा और कुछभी नहीं है॥ ७॥

रसोऽहमप्सु कौंतेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः॥
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु॥ ८॥

"सूत्रे मणिगणा इव" इसीको दिखातेहैं. हे कुंतीपुत्र! जलमें रस चंद्रसूर्यकी कांति सर्ववेदोंमें ओंकार आकाशमें शब्द पुरुषोंमें पुरुषार्थ मैं हूं याने इन जलादिकोंके सार जो रसादिक उनका भी शरी-

ही मैं और वे मेरे शरीर हैं ऐसे अहंशब्दका अर्थ सर्वत्र शरीरशरीरीसंबंधसे जानना ॥ ८ ॥

पुण्यो गंधः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ॥
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥ ९ ॥

पृथिवीमें पवित्र गंध और अग्निमें तेज मैही हूं सर्वभूतप्राणिनमें आयुष्य और तपस्विनमें तप मैं हूं ॥ ९ ॥

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ॥
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥ १० ॥

हे पार्थ ! सर्वभूतोंका सनातन उत्पत्तिकारण मेरेको जानो मैं बुद्धिमानोंमें बुद्धि तेजस्विनमें तेज हौं ॥ १० ॥

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ॥
धर्माऽविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥ ११ ॥

हे भरतर्षभ ! मैं जो वस्तु प्राप्त नहीं उनकी कामना और प्राप्त वस्तुमें जो अनुराग इन कामरागोंविना बलवंतोंका बल और भूत प्राणिनमें धर्मसे अविरुद्ध काम हूं ॥ ११ ॥

ये चैव सात्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ॥
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥ १२ ॥

जो शमादिक सात्विक भाव और द्वेषादिक राजस और जड़-मोहादिक तामस भाव हैं वे मेरेसे ही हैं ऐसे उनको जानो और मैं उनमें नहीं याने उनके स्वाधीन नहीं हूं वे मेरेमें हैं याने मेरे स्वाधीन हैं ॥ १२ ॥

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ॥
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥ १३ ॥

इन तीनों गुणमय भावोंकरके मोहित यह सर्व जगत् इनसे परं अविनाशी मेरेको नहीं जानता है ॥ १३ ॥

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ॥
मामेव ये प्रपद्यंते मायामेतां तरंति ते ॥ १४ ॥

जिसवास्ते कि, यह गुणमयी दैवी याने मेरे संबंधिनी मेरी माया दुरत्यय है इसीसे जो मेरे शरण होतेहैं वे इस मायाको तरतेहैं॥१४॥

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यंते नराधमाः ॥
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥ १५ ॥

मायाकरके हरागयाहै ज्ञान जिनका ऐसे मनुष्य वे असुरनके धर्मको प्राप्तहोरहे निंदित कर्मकरनेवाले नरनमें अधम मूर्ख मेरेको नहीं भजतेहैं ॥ १५ ॥

चतुर्विधा भजंते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ॥
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ १६ ॥
तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ॥
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं च स च मे प्रियः॥१७॥

हे अर्जुन ! एकप्रकारके जो संसारसे दुःखी दूसरे जाननेकी इच्छा करनेवाले तीसरे धनादिक चाहनेवाले और चौथे ज्ञानी याने स्वरूपज्ञाता ऐसे चार प्रकारके सुकृती जन मेरेको भजतेहैं. हे भरतर्षभ ! तिनमें ज्ञानी नित्ययोगयुक्त मेरी मुख्यभक्तिवाला श्रेष्ठ है कारण कि, ज्ञानीके मैं अत्यंत प्रियहूं और सो मेरे अतिशय प्रियहै ॥ १६ ॥ १७ ॥

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ॥
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्॥१८॥

वे सर्व ही उदार हैं तो भी ज्ञानी आत्माही मेरेको पुत्रवत् प्रियहै;

ऐसा मेरा अभिप्राय है कारण कि, वह मेरेहीमें चित्तको युक्तकिये भये सर्वोत्तम गति मेरेही को ध्यावताहै ॥ १८ ॥

बहूनां जन्मनामंते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ॥
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥ १९ ॥

अनेक जन्मोंके अंतमें सर्वजगत् वासुदेवरूप है ऐसे ज्ञानवान् होताहै याने वासुदेवात्मक जानिके ईर्षादिरहित होताहै तब मेरेको भजताहै सो महात्मा अति दुर्लभ है याने कोट्यावधीनमें कोईएक होता है ॥ १९ ॥

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यंतेऽन्यदेवताः ॥
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताःस्वया ॥ २० ॥

दूसरे सर्व तो आपकी राजस तामस प्रकृतिकरके राजस तामस कर्मोंमें लगेभये उनउन कामनोंकरके नष्टज्ञानभयेहुये उनउन पुत्रादिनिमित्त नियमोंको धारणकरके अन्यदेवोंको भजते हैं ॥ २० ॥

यो यो यांयां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ॥
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥ २१ ॥
स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ॥
लभते च ततःकामान्मयैव विहितान्हितान् ॥ २२ ॥
अंतवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ॥
देवान्देवयजो यांति मद्भक्ता यांति मामपि ॥ २३ ॥

"तदेवाग्निस्तत्सूर्यस्तदुचंद्रमाः" इत्यादि श्रुतिनके अर्थको खुलासा करनेवाली जो "यस्यादित्यः शरीरं" इत्यादि श्रुतिनके अर्थरूप इन श्लोकोंकरके अन्य देवतोंको भी भगवान् आपहीके शरीरभूत दिखातेहैं. जैसे कि, जोजो भक्त जिस जिस इंद्रादिरूप मेरे

शरीरको श्रद्धाकरके अर्चनेको चाहताहै उसउस भक्तको मैं वेही अचल श्रद्धा धारणकरातांहूं सो भक्त उसी श्रद्धाकरके युक्त उसी इंद्रादिरूप मेरी मूर्तिका आराधन करताहै. और उसीसे मेरे ही करके नियमित कियेभये हित कामनोंको प्राप्तहोताहै; परंतु उनै अल्पबुद्धिनके वह फल नाशवान् होताहै. जैसे कि, इंद्रादिदेव पूजनेवाले इंद्रादि देवोंको प्राप्तहोतेहैं मेरे भक्त निश्चय मेरेको प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यंते मामबुद्धयः ॥
परंभावमजानंतो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥ २४ ॥

मेरे अविनाशी सर्वोत्तम परस्वरूपको न जाननेवाले मूर्खलोग जो मैं सबके हृदयमें मूर्तिमान् प्राप्त तिस मेरेको अव्यक्त याने अमूर्ति मानतेहैं. तात्पर्य इसीसे अन्यदेवोंको भजते हैं ॥ २४ ॥

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ॥
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥२५॥

यहां न जाननेका कारण कि, योगमायाकरके आच्छादित मैं सबको दीखता नहीं हूं इसीसे यह मूर्ख जन अजन्मा अविनाशी मेरेको नहीं जानता है ॥ २५ ॥

वेदाहं समतीतानि वर्त्तमानानि चार्जुन ॥
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥ २६ ॥

हे अर्जुन ! मैं जो प्रथम भये उनको और हैं तिनको और होयंगे उन सर्वभूतप्राणीमात्रोंको जानताहूं, परंतु मेरेको कोई भी नहीं जानताहै ॥ २६ ॥

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वंद्वमोहेन भारत ॥
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यांति परंतप ॥ २७ ॥

हेभारत ! हेपरंतप ! इच्छा और द्वेषकरके उत्पन्नभये सुख दुःख लाभ अलाभादि द्वंद्वरूप मोहकरके सर्वभूतप्राणि संसारमें मोहको प्राप्त होतेहैं॥

येषां त्वंतगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ॥
ते द्वंद्वमोहनिर्मुक्ता भजंते मां दृढव्रताः ॥ २८ ॥

और जिन पुण्यकर्मवाले मनुष्योंका पाप नाशको प्राप्तभयाहै वे द्वंद्वमोहसे छुटेभये दृढव्रती मेरेको भजते हैं ॥ २८ ॥

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतंति ये ॥
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥ २९ ॥

जो मेरे आश्रितहोके जरामरण छूटनेके वास्ते यत्नकरतेहैं वे उस ब्रह्मको और सर्व अध्यात्मको सर्व कर्मको जानतेहैं इन ब्रह्मशब्दादिकोंका खुलासा आठवें अध्यायमें होगा ॥ २९ ॥

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ॥
प्रयाणकालेपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥ ३० ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योग
शास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विज्ञानयोगो
नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

जो मेरेको अधिभूत और अधिदैवसहित और अधियज्ञसहित जानतेहैं वे मनुष्य ही मेरेमें नित्य चित्तलगायेभये मरणकालमें भी मेरेको जानतेहैं ॥ ३० ॥

इति श्रीमत्सुकुलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचिता-
यां श्रीगीतामृततरंगिण्यांसप्तमोऽध्यायप्रवाहः ॥ ७॥

---

अर्जुन उवाच ।

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ॥

अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥ १ ॥

जो सातवें अध्यायमें कहा था कि, जो जरामरणसे मुक्त होनेके वास्ते मेरा आसरा करके यत्न करतेहैं वे उस ब्रह्मको तथा सर्व अध्यात्मको और सर्व कर्मको जानते हैं इत्यादि सुनिके अर्जुन कृष्णसे पूंछते हैं कि, हे पुरुषोत्तम ! जो आपने कहा वह ब्रह्म कौन है, अध्यात्म कौनहै, कर्म क्याहै और अधिभूत कौन कहाताहै और अधिदैव कौन कहाताहै ? ॥ १ ॥

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ॥
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥ २ ॥

हे मधुसूदन ! इस देहमें अधियज्ञ कैसे भया और कौन है और इसलोकमें मरणकालमें जिसने मन जीताहै उसकरके कैसे जाननेमें आतेहो ? ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ॥
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥ ३ ॥

ऐसे अर्जुनके वचन सुनिके श्रीकृष्णभगवान् बोले कि, परहै प्रकृति जिससे याने प्रकृतिमुक्त जो अक्षर याने मुक्तजीव सो ब्रह्म है स्वभाव अध्यात्म कहाताहै जो सर्व भूतप्राणिनकी उत्पत्ति करनेवाला विसर्ग याने सृष्टि सो कर्मसंज्ञक है ॥ ३ ॥

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ॥
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतांवर ॥ ४ ॥

जो क्षर भाव याने नाशवान् देहादिक सो अधिभूतहै और पुरुष जो सूर्यमंडलवर्त्ती मेराही एकरूप सो अधिदैवत है. हे देहधारिनमें श्रेष्ठ अर्जुन ! इस देहमें अधियज्ञ मैं ही हूं याने जीवका पूज्य मैं हूं ॥ ४ ॥

अंतकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ॥
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥ ५ ॥

और जो पुरुष अंतसमयमें मेरे हीको सुमिरतासुमिरता देहको त्यागिके इसलोकसे जाताहै सो मेरी समताको प्राप्तहोताहै यहाँ संशय नहीं ॥ ५ ॥

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यंते कलेवरम् ॥
तं तमेवैति कौंतेय सदा तद्भावभावितः ॥ ६ ॥

जो मेरा सदा और अंतकालहीमें स्मरण करतेकरते शरीर त्यागै सो तो मेरेहीको पावै. अथवा जो जो भाव याने वस्तु अथवा कोई प्राणीको सुमिरतासुमिरता सदा उसीमें लवलीन भयाहुआ अंतमें देहको त्यागताहै, सो हे कुंतीपुत्र! उसी उसीको ही प्राप्तहोताहै ॥ ६ ॥

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्ध्य च ॥
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयः ॥ ७ ॥

तिससे सर्व कालमें मेरेको सुमिरो और युद्धकरो; ऐसे मेरेमें मन बुद्धिको लगायेभये मेरे हीको पावोगे, इसमें संदेह नहीं ॥ ७ ॥

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ॥
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिंतयन् ॥ ८ ॥

हे पृथापुत्र! सदा अभ्यासयोगयुक्त आत्मस्वरूपविना दूसरेमें नहीं जानेवाला ऐसे चित्तकरके मेरा चिंतवन करताकरता देदीप्यमान अति- उत्तम ऐसा जो परमपुरुष मैं उस मेरेको प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ॥
सर्वस्य धातारमचिंत्यरूपमादित्यवर्णं तमसः पर-

स्तात् ॥ ९ ॥ प्रयाणकाले मनसाऽचलेन भक्त्यायु-
क्तो योगबलेन चैव ॥ भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ १० ॥

जोकोई भक्तिकरके युक्त पुरुष मरणसमयमें अचेल मनकरके और योगबलकरके भौंहोंके मध्यमें निश्चल अच्छीतरहसे प्राणोंको प्रवेशकरके अर्थात् कुंभककरके जो सर्वज्ञ, पुरातन, सर्वका शिक्षक, सूक्ष्मसे सूक्ष्म, सर्वका पालनेवाला, नहीं चिंतवनमें आताहै रूप जिसका, सूर्यसरीखा प्रकाशमान जो पुरुष और प्रकृतिसे परे उसको सुमिरताहै सो उस परं देदीप्यमान पुरुषको प्राप्तहोताहै ॥ ९ ॥ १० ॥

यदक्षरं वेदविदो वदंति विशंति यद्यतयो वीतरागाः ॥
यदिच्छंतो ब्रह्मचर्यं चरंति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ११

वेदके जाननेवाले जिसको अक्षर कहतेहैं, वीतराग ईश्वरप्राप्तिका यत्न करनेवाले जिसको प्राप्तहोतेहैं; जिसको चाहनेवाले ब्रह्मचर्यको आचरतेहैं, उस पदको तुम्हारेसे संक्षेपकरके कहूंगा ॥ ११ ॥

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ॥
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥ १२ ॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ॥
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥ १३ ॥

जो योगी देहको त्यागतात्यागता सर्व इंद्रियोंको संयममें करके और हृदयमें मनको रोकके आपके प्राणोंको मस्तकमें चढायके योगधारणामें थिर भयाहुआ 'ॐ' इस एकअक्षर ब्रह्मका उच्चारण करताकरता मेरेको सुमिरतासुमिरता देहत्यागिके जाताहै सो अतिउत्तम गतिको प्राप्तहोताहै ॥ १२ ॥ १३ ॥

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ॥
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥ १४॥

हे पृथापुत्र! जो अनन्यचित्त मेरेको नित्य निरंतर सुमिरताहै उस नित्य मेरे संयोग चाहनेवाले योगीको मैं सुलभ हूं ॥ १४ ॥

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ॥
नाप्नुवंति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥ १५ ॥

यहांसे अध्यायसमाप्तिपर्यंत ज्ञानी जो कैवल्यार्थी उसकी मुक्ति और ऐश्वर्य चाहनेवालेकी पुनरावृत्ति कहतेहैं सो ऐसे कि, जो मेरी उपासनारूप परमसिद्धिको प्राप्तभयेहैं वे महात्माजन मेरेको प्राप्त होके फिर दुःखका घर नाशमान जन्मको नहीं प्राप्तहोतेहैं ॥ १५ ॥

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ॥
मामुपेत्य तु कौंतेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १६ ॥

हे अर्जुन! ब्रह्मलोकपर्यंत सर्वलोक, पुनरावर्त्ती है और हे कुंती-पुत्र! मेरेको प्राप्तहोके फिर जन्म नहीं होताहै ॥ १६ ॥

सहस्रयुगपर्यंतमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ॥
रात्रिं युगसहस्रांतां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ १७ ॥

ब्रह्मलोकपर्यंत पुनरावृत्ति देखनेको ब्रह्माके दिनरात्रिका प्रमाण दिखातेभये उसको जाननेवालोंकी श्रेष्ठता कहतेहैं—जो ब्रह्माका हजार चतुर्युगीपर्यंत दिन और हजार चतुर्युगीपर्यंत रात्रिको जानतेहैं वे मनुष्य दिनरातिके जाननेवाले हैं, याने दीर्घदर्शी हैं ॥ १७ ॥

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवंत्यहरागमे ॥
रात्र्यागमे प्रलीयंते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥ १८ ॥

दीर्घदर्शित्व दिखातेहैं सो ऐसे कि, ब्रह्माके दिनके आगममें ब्रह्माके

शरीरसे सर्व जीवोंके शरीर होतेहैं रात्रिके आगममें उसी ब्रह्माके शरीरमें लीनहोतेहैं ॥ १८ ॥

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ॥
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवंत्यहरागमे ॥ १९ ॥

हे पृथापुत्र ! सोई यह भूतप्राणीसमूह कर्मपरवश भया हुआ सदा है है के रात्रिके आगममें लीन होताहै, दिनके आगममें उत्पन्न होताहै ॥ १९ ॥

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ॥
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्स्वपि न नश्यति ॥ २० ॥

उस ब्रह्माके जडप्रकृतिशरीरसे श्रेष्ठ और जो अव्यक्त सनातन भाव है याने शुद्धचेतन है सो सर्व आकाशादि और शरीर नष्टहोने- से भी नहीं नष्टहोताहै ॥ २० ॥

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ॥
यं प्राप्य न निवर्तंते तद्धाम परमं मम ॥ २१ ॥

वह अव्यक्त अक्षर ऐसे कहाहै 'कूटस्थोऽक्षर उच्यते' उसको परम गति कहतेहैं जिस शुद्धरूपको प्राप्तहोके नहीं जन्मतेहैं वह मेरा सर्वोत्तम धाम है; याने जैसे प्रकृतिमें मेरा शरीर है और जीवभी मेरा शरीर है परंतु जैसे सर्व घर किसी पुरुषका है उसमें निजमंदिर श्रेष्ठहो- ताहै तैसे जीवकृतिमें और मैं जीवमें रहताहूं इससे वह मेरा मुख्य- शरीर है. यह कैवल्यमुक्ति कही, अब ऐश्वर्य प्राप्ति कहतेहैं ॥ २१ ॥

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ॥
यस्यांतःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥ २२ ॥

हे पृथापुत्र ! ये सर्व भूतप्राणि जिसके अंतस्थ हैं और यह सर्व

जगत् जिसकरके विस्तारितहै सो पर पुरुष याने परमात्मा अनन्य-भक्ति करके प्राप्तहोने योग्यहै ॥ २२ ॥

यत्र कालेत्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ॥
प्रयाता यांति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥ २३ ॥

हे पुरुषनमें श्रेष्ठ ! जिसे कालमें देहत्यागिके गयेभये योगी अनावृत्तिको और आवृत्तिको जातेहैं उस कालको मैं कहताहूं ॥ २३ ॥

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ॥
तत्र प्रयाता गच्छंति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥ २४ ॥

जिसकालमें अग्नि प्रकाशक है तथा दिन शुक्लपक्षहै ऐसे छ महीने उत्तरायेण उसमें गये भये ब्रह्मज्ञानी जन ब्रह्मको प्राप्तहोतेहैं ॥ २४ ॥

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ॥
तत्र चांद्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥ २५ ॥

जिसकालमें धूम राति तथा कृष्णपक्ष छःमहीने दक्षिणायन इसमें गयाभया योगी चांद्रमस ज्योतिको याने स्वर्गपायके यज्ञादि फलभोगिके फिर यहां जन्मलेताहै ॥ २५ ॥

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ॥
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ॥ २६ ॥

ये शुक्लकृष्ण मार्ग जगत्के सनातन नियमितहैं एककरके मुक्तिको जाताहै दूसरेकरके फिर जन्मता है ॥ २६ ॥

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन ॥
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥ २७ ॥

हे पृथापुत्र ! इन मार्गोंको जानताभया कोईभी योगी नहीं मोहताहै. हे अर्जुन ! तिससे सर्व कालमें योगयुक्त हो ॥ २७ ॥

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं
प्रदिष्टम् ॥ अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा
योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योग
शास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अक्षरब्रह्मयोगोनाम
अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

मनुष्य इसको जानिके फिर जो पुण्यफल वेदाध्ययनमें, यज्ञमें, तपमें और दानमें कहा है उस सबको अतिक्रमणकरताहै याने इससेभी अधिकफल पाताहै, फिर योगी होके सर्वोत्तम आदि स्थानको पाताहै, याने मुक्तहोताहै ॥ २८ ॥

इति श्रीमत्सुकुलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां
श्रीगीतामृततरंगिण्यामष्टमोऽध्यायप्रवाहः ॥ ८ ॥

---

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ॥
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥ १ ॥

सप्तम और अष्टम अध्यायोंमें आपकी स्वरूपप्राप्ति भक्तिहीसे कही है. अब नवममें आपका सर्वोत्तम प्रभाव और भक्तिका भी प्रभाव कहते हैं सो ऐसे कि, हे अर्जुन ! यह अतिगुप्तकरनेयोग्य विज्ञानसहित ज्ञानको असूया जो पराये गुणमें दोष लगाना उसकरके रहित जो तुम तिनसे कहूंगा ॥ जिसको जानिके संसारदुःखसे छूटोगे ॥ १ ॥

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ॥
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥ २ ॥

यह भक्ति ज्ञान विद्या और गोप्यवस्तुनमें सर्वोत्तम पवित्र अतिउत्तम

प्रत्यक्षफलरूप धर्मयुक्त करनेकोभी अतिसुगम और अविनाशी है॥२॥

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप ॥
अप्राप्य मां निवर्तंते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ ३ ॥

हे परंतप अर्जुन ! इस धर्मसंबंधी श्रद्धाको न धारणकरनेवाले पुरुष मेरेको प्राप्तभयेविना मृत्युरूपसंसारमार्गमें फिरतेरहतेहैं ॥ ३ ॥

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ॥
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥ ४ ॥
न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ॥
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥ ५ ॥

यह सर्व जगत् अतिसूक्ष्म अंतर्यामीरूप मेरे करके व्याप्तहै; इससे सर्वभूतप्राणी मेरे स्वाधीनहैं और मैं उनमें नहीं स्थितहूं यानें उनके स्वाधीन नहींहूं और वे भूतप्राणी मेरेमें स्थित नहीं है यानें जैसे घडेमें जल तैसे नहीं हैं मेरे ईश्वरसंबंधी इस योगको देखो भूतोंका भरने पोषनेवाला भी मेरा आत्मा यानें मेरा शरीरभूत जीवात्मा भूतोंको धारणकरनेवाला और भूतोंमें स्थित नहीं है॥४॥५॥

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ॥
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥ ६ ॥

जैसे महान् वायु नित्यही आकाशमें रहाभया मेरे आधारसे सर्वत्र विचरताहै तैसेंही सर्व भूत मेरे आधार हैं ऐसे निश्चयकरो ॥ ६ ॥

सर्वभूतानि कौंतेय प्रकृतिं यांति मामिकाम् ॥
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥ ७ ॥

हे कुंतीपुत्र ! प्रलयकालमें सर्वभूतप्राणी मेरी प्रकृतिमें लीन होतेहैं कल्पकी आदिमें मैं उनको फिर अनेक प्रकारके उत्पन्न करताहूं ॥ ७ ॥

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ॥
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥ ८ ॥

अपनी प्रकृतिको आश्रयदेके प्राचीनस्वभावके वशसे परवश संपूर्ण इस भूतप्राणीसमूहको वारंवार सृजता हूं ॥ ८ ॥

न च मां तानि कर्माणि निबध्नंति धनंजय ॥
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥ ९ ॥

हेअर्जुन ! जो कहोगे कि, ऐसे विषमसृष्टि सृजनेवालेको विषमताके वैषम्य निर्दयत्वदोष क्यों न लगेंगे तहाँ सुनो, जो मैं सृष्ट्यादिककर्म करताहूं उन कर्मोंमें असक्त और उदासीनसरीखा स्थित ऐसे मेरेको वे कर्म नहीं बंधनकरतेहैं ॥ ९ ॥

मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ॥
हेतुनानेन कौंतेय जगद्विपरिवर्त्तते ॥ १० ॥

हे कुंतीपुत्र ! जब मैं अध्यक्ष याने सर्वकृत्यका सम्हारनेवाला होता हूं तब मेरे करके प्रकृति चराचरजगतको उत्पन्नकरती है इस कारण करके जगत् उत्पन्नहोताहै ॥ १० ॥

अवजानंति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ॥
परं भावमजानंतो मम भूतमहेश्वरम् ॥ ११ ॥
मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ॥
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥ १२ ॥

जो राक्षसी और आसुरी आपसरीखी मोहकारक प्रकृतिको धारण कररहेहैं याने ऐसे स्वभाववाले, निष्फल आशावाले, निष्फल कर्मवाले, निष्फलज्ञानवाले वे भ्रष्टचित्त पुरुष, जो सर्व भूतोंके

ईश्वरोंका भी ईश्वर ऐसे मेरे प्रभावको न जानतेभये मूर्ख अति-
करुणासे मनुष्यरूप शरीरमें स्थित मेरी अवज्ञाकरतेहैं ॥ ११॥१२॥

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ॥
भजंत्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥ १३ ॥

हे पृथापुत्र ! दैवी प्रकृतिको प्राप्तभयेहुये महात्माजन मेरेको सर्वभूतोंका आदि और अविनाशी जानिके अनन्यमनवाले भयेहुए मेरेही को भजतेहैं ॥ १३ ॥

सततं कीर्त्तयंतो मां यतंतश्च दृढव्रताः ॥
नमस्यंतश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥ १४ ॥

अब महात्मनके भजनकी रीति कहतेहैं जैसे कि, निरंतर मेरो कीर्त्तनकरतेभये और दृढसंकल्पकियेभये मेरी प्राप्तिके वास्ते यत्नकरतेभये और भक्तिकरके मेरेको नमस्कार करतेभये नित्य मेरे समागमकी इच्छा करनेवाले मेरी उपासना करते हैं ॥ १४ ॥

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजंतोमामुपासते ॥
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥ १५ ॥

और कितनेक महात्मा एकत्वकरके याने सख्यभावसे और कितनेक पृथक्त्वसे याने दास्यभावसे ऐसे बहुधा याने कोई वात्सल्य और कोई शृंगार इत्यादि भावनाकरके सर्वतोमुख याने सर्वव्यापी मेरेको इत्यादि ज्ञानयज्ञकरके पूजतेभये उपासना करते हैं ॥ १५ ॥

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाऽहमहमौषधम् ॥
मंत्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥ १६ ॥

अब आपका सर्वव्यापित्व दिखातेहैं सो ऐसे कि; भगवान् कहतेहैं कि, क्रतु याने अग्निष्टोमादिक श्रौतयज्ञ मैं हौं, यज्ञ जो स्मार्त पंचमहायज्ञ सो मैं हौं स्वधा जो पितृनके श्राद्धादिकमें सो मैं हौं,

औषध याने अन्न सो मैं हौं, मंत्र मैं हौं, आज्य याने घृत सो मैं हौं, अग्नि मैं हौं, होम मैं हौं यह निश्चय है ॥ १६ ॥

पिताऽहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ॥
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक् साम यजुरेव च ॥ १७ ॥
गतिर्भर्त्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ॥
प्रभवः प्रलयस्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥ १८ ॥

इस जगत्का पिता, माता, धाता पितामह जो जाननेयोग्य सो और पवित्रहै सो और ओंकार, ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद इस जगत्की गति, पालनेकर्त्ता, स्वामी, शुभाशुभकर्मनका साक्षी, रहनेका स्थान इच्छितवस्तु देनेवाला और अनिष्टका निवारक सुहृद् उत्पत्ति और नाशका स्थान धारणकरनेवाला अविनाशी उत्पत्तिकारण सर्व मैं ही हौं ॥ १७ ॥ १८ ॥

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ॥
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥ १९ ॥

हे अर्जुन ! अग्नि और सूर्यरूप होके मैं ही तपाताहौं, मैं ही ग्रीष्मादिऋतुनमें वर्षाको बंदकरताहौं और वर्षाऋतुमें वर्षाताहौं, अमृत और मृत्यु और सत् और असत् मैं निश्चय हौं ॥ १९ ॥

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयंते ॥ ते पुण्यमासाद्य सुरेंद्रलोकमश्नंति दिव्यान् दिवि देवभोगान् ॥ २० ॥ ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशंति ॥ एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभंते ॥ २१ ॥

इसतरहसे महात्मा ज्ञानिनका व्यवहार और आपका वैभव कहा अब सकाम जनोंकी रहनि रीति कहतेहैं; जैसे कि, त्रैविद्या याने ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेदोक्त इंद्रादिदेवनिमित्त यज्ञ करनेवाले सोमपाने कियेभये पापरहित यज्ञोंकरके इंद्रादिरूप मेरेको आराधिके स्वर्गकी प्राप्ति मानते हैं वे पुण्यरूप इंद्रलोकमें प्राप्तहोके वहां स्वर्गमें दिव्य देवभोगोंको भोगते हैं. फिर वे उस विशाल स्वर्गलोकको भोगिके पुण्य क्षीण होनेसे इस मनुष्यलोकमें प्राप्तहोते हैं, ऐसे वेदत्रयीधर्मको केवल वारंवार करतेभये सकामीजन गतागत याने स्वर्गजाना मनुष्यलोकको आना फिर जाना फिर आना ऐसे फलको पाते हैं ॥ २० ॥ २१ ॥

अनन्याश्चिंतयंतो मां ये जनाः पर्युपासते ॥
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ २२ ॥

जो मनुष्य अनन्यभयेहुये मेरा चिंतवन करते करते मेरेको भजते हैं उन नित्य मेरे संयोग चाहने वालोंका योग जो धनादिककी और मेरी प्राप्ति क्षेम जो धनादि संरक्षण और अपुनरावृत्ति इनको मैं प्राप्तकरताहों ॥ २२ ॥

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ॥
तेपि मामेव कौंतेय यजंत्यविधिपूर्वकम् ॥ २३ ॥

जोकि और देवतोंके भक्त उनका श्रद्धायुक्त पूजन करतेहैं वेभी मेराही पूजन करतेहैं; परंतु हे कुंतीपुत्र ! वे अविधिपूर्वक पूजन करतेहैं याने विधिपूर्वक नहीं ॥ २३ ॥

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ॥
न तु मामभिजानंति तत्त्वेनातश्च्यवंति ते ॥ २४ ॥

मैं निश्चय करके सर्वयज्ञोंका भोक्ता और स्वामी भी हों परंतु

वे सकामिक जन मेरेको ऐसे निश्चयकरके नहीं जानतेहैं इससे जन्म मरणेको प्राप्त होतेहैं ॥ २४ ॥

यांति देवव्रता देवान्पितॄन्यांति पितृव्रताः ॥
भूतानि यांति भूतेज्या यांति मद्याजिनोऽपि माम् २५

अहो जो कहोगे कि, एकही कर्ममें संकल्पमात्रसे कैसे भेद भया तहां सुनो जो इंद्रादिदेवनको भक्तिपूर्वक आराधते हैं तो उनहीको प्राप्त होतेहैं, पितृभक्त पितृनको प्राप्त होतेहैं; जो कोईसे भी राजा साधू चोर इत्यादि भूत प्राणिकी सेवा संगतिकरतेहैं वे उनहीकी समताको प्राप्त होतेहैं; जो मेरी भक्तिकरतेहैं वे निश्चय मेरेको प्राप्त होते हैं याने मेरी समताको पाते हैं ॥ २५ ॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ॥
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ २६ ॥

जो कहोगे कि, बडनके प्रसन्न करनेको बडे उपाय चाहिये तहां सुनो जो कोई पत्र, पुष्प, फल, जल मेरेको भक्तिकरके मुझे अर्पण करताहै मैं उस शुद्धचित्तभक्तका भक्तिपूर्वक अर्पणकियेभये उस पत्रादिके पदार्थको स्वीकार करताहौं ॥ २६ ॥

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ॥
यत्तपस्यसि कौंतेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ २७ ॥
शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबंधनैः ॥
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥ २८ ॥

हे कुंतीपुत्र! मेरेको ऐसा सुलभ जानिके जो कुछभी तुमकरो, जो खाउ, जो होमो, जो देउ, जो तपकरो उसको मेरे अर्पण किये भये करो; ऐसे करतेभये जो कर्म बंधनकारक हैं उन शुभाशुभ फल कर्मोंकरके छुटोगे. ऐसेही इस कर्मफलअर्पण संन्यासयोगयुक्त चित्तवाले तुम मुक्त भये हुये मेरेको प्राप्तहोवोगे ॥ २७ ॥ २८ ॥

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ॥
ये भजंति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥ २९ ॥

मैं सर्वभूतोंपर सम हों मेरे न अप्रिय न कोई प्रिय है. परंतु जो मेरेको भक्तिकरके भजतेहैं वे मेरे हृदयमें और उनके हृदयमें निश्चयकरके मैं रहताहों ॥ २९ ॥

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ॥
साधुरेव स मंतव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥ ३० ॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छांतिं निगच्छति ॥
कौंतेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥ ३१ ॥

जो कदाचित् कोई पुरुष अतिदुराचारी भी होई और वह मेरेको अनन्यभाक् याने औरको न भाग देताभया सर्वत्र मेरेहीको जानिके सर्व मेरे अर्पण करताभया भजताहोय सो साधूही है ऐसे माननो चाहिये, जिससे कि वह सम्यक् निश्चय कियेहै उससे वह शीघ्रही धर्मात्मा होयगा और मोक्षहीको प्राप्तहोयगा. हे कुंतीपुत्र! तुम यह निश्चय जानो कि, मेरा भक्त नहीं नाशको पावताहै याने मुक्तही होताहै ॥ ३० ॥ ३१ ॥

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ॥ स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेपि यांति परां गतिम् ॥ किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ॥ अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

हे पृथापुत्र! निश्चयपूर्वक मेरेको आश्रय करके जो पापयोनी भी होय तथा स्त्री शूद्र वैश्य वे भी उत्तम मोक्षको जातेहैं. जो पवित्र

ब्राह्मण तथा क्षत्रिय भक्तहैं उनकी मोक्षको फिर क्या शंकाहै ? इससे अनित्य दुःखरूप इस लोकको पाइके मेरेको भजो ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ॥
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥ ३४ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

भजनरीति यह कि, मेरेहीमें मनको युक्त कियेभये रहो मेरेही भक्त मेराही पूजन करनेवाले होउ, मेरहीको नमस्कार करो, ऐसे मनको मेरेमें युक्तकरके मेरेही परायण भयेहुये मेरेहीको प्राप्तहोवोगे ॥ ३४ ॥

इति श्रीमत्सुकुलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीगीतामृततरंगिण्यां नवमोऽध्यायप्रवाहः ॥ ९ ॥

---

सप्तमादिक तीनों अध्यायोंमें श्रीकृष्णजीने आपका भगवत्तत्त्व और विभूति वर्णन की. जैसे कि, सप्तममें " रसोऽहमप्सु कौंतेय " इत्यादि, अष्टममें " अधियज्ञोऽहमेवात्र " इत्यादि, नवममें " अहं क्रतुः " इत्यादिकरके संक्षेपसे कहीं. उनको और भक्तिकी आवश्यकता अब दशमाध्यायमें विस्तारसे कहते हैं ॥

श्रीभगवानुवाच ।

भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः ॥
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥ १ ॥

श्रीकृष्णभगवान् कहतेभये कि, हे महाबाहो मेरा सर्वोत्तम वाक्य फिर भी सुनो; जो वाक्य प्रीतियुक्त जो तुम तिन तुमसे तुम्हारे हितके वास्ते मैं कहताहों ॥ १ ॥

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ॥
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥ २ ॥

मेरा जन्मभया ऐसा न देवता न महर्षी जानते हैं; कारण कि, मैं देवनको और सर्व महर्षिनकोभी आदि हों ॥ २ ॥

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ॥
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

जो मेरेको अजन्मा और अनादि लोकमहेश्वर जानता है सो मनुष्योंमें ज्ञानी है और सर्वपापोंकरके छुटाहै ॥ ३ ॥

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ॥
सुखं दुःखं भवो भावो भयं चाभयमेव च ॥ ४ ॥
अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ॥
भवंति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥ ५ ॥

बुद्धि, ज्ञान, अव्याकुलता, क्षमा, सत्य, दम, शम, सुख, दुःख, उत्पत्ति, नाश, भय और अभयभी और अहिंसा, समता, संतोष, तप, दान, यश, अयश ये न्यारे न्यारे भूतोंके भाव मेरेहीसे होते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ॥
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ॥ ६ ॥

सात महाऋषी याने मरीचि वसिष्ठादिक महाऋषि चार इनके भी पूर्वज याने सनकादिक ऋषि तथा चौदह मनु मेरे संकल्पज मन इच्छा प्रमाण उत्पन्नहोतेभये जिनके लोकमें ये प्रजा हैं ॥ ६ ॥

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः ॥
सोऽविकंपेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥ ७ ॥

जो पुरुष मेरी महर्षी इत्यादिकोंकी उत्पत्तिरूप इस विभूतिको

और कल्याणगुणादिरूप योगको तत्त्वसे जानताहै सो अचल भक्तियोगकरके युक्तहोताहै इसमें संशय नहींहै ॥ ७ ॥

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ॥
इति मत्वा भजंते मां बुधा भावसमन्विताः ॥ ८ ॥

मैं सर्वका उत्पत्तिस्थान हौं मेरेसे सर्व प्रवर्त्तहोताहै ऐसा मेरेको मानिके भावसंयुक्त ज्ञानीजन मेरेको भजतेहैं ॥ ८ ॥

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयंतः परस्परम् ॥
कथयंतश्च मां नित्यं तुष्यंति च रमंति च ॥ ९ ॥

उनका भजन प्रकार यह कि, मेरेहीमें जिनका चित्त है श्वासोच्छ्वासपर मेरा स्मरण करते रहते हैं. परस्पर एक दूसरेको उपदेश करतेभये निश्चयपूर्वक मेरेको याने मेरेही गुणगणनको कहते रहते निरंतर संतुष्ट होतेहैं और मेरी करीभई क्रीडा करने लगतेहैं ॥ ९ ॥

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ॥
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयांति ते ॥ १० ॥

ऐसे वे निरंतर मेरे संगी मेरेको प्रीतिपूर्वक भजनेवाले तिनको उस बुद्धियोगको देताहौं कि, जिसकरके वे मेरेको प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

तेषामेवानुकंपार्थमहमज्ञानजं तमः ॥
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥ ११ ॥

उनहींकी दयाके वास्ते उनकी मनोवृत्तिमें रहाभया मैं प्रकाशित ज्ञानरूप दीपकरके उनके अज्ञानजन्य तिमिरका नाशकरताहौं ॥ ११ ॥

अर्जुन उवाच ।

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ॥
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥ १२ ॥

आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ॥
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ॥१३॥

ऐसे श्रीकृष्णजीके वाक्य सुनिके अर्जुन बोले कि, आप परब्रह्म हो श्रेष्ठप्रभाव हो परम पवित्र हो; सर्व ऋषिजन आपको अविनाशी दिव्य पुरुष आदिदेव अजन्म व्यापक ऐसे कहतेहैं, वे ये जैसे कि, देवऋषि नारद तथा असित देवल व्यास और आप भी मेरेसे कहतेहो ॥ १२ ॥ १३ ॥

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ॥
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ॥१४॥

हे केशव! जो मेरेसे कहतेहो यह सर्व सत्य मानताहों, कारण कि, हे भगवन्! तुम्हारी उत्पत्तिको न देवता जानतेहैं न दानव जानतेहैं ॥ १४ ॥

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ॥
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ॥ १५ ॥

हे पुरुषोत्तम! हे भूतभावन! हे भूतेश! हे देवदेव! हे जगत्पते! आप आपको आपहीकी बुद्धिसे आपही जानतेहो ॥ १५ ॥

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ॥
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि॥१६॥

जो दिव्य आपकी विभूती हैं उनको समग्रतासे कहनेको योग्य हो कारण कि, जिन विभूतिनकरके इन लोकोंमें आप व्यापिके रहेहो ॥ १६ ॥

कथं विद्यामहं योगींस्त्वां सदा परिचिंतयन् ॥
केषु केषु च भावेषु चिंत्योसि भगवन्मया ॥ १७ ॥

मैं भक्तियोगयुक्तभयाहुआ आपको सदा ध्यावताभया कैसे जानों. और हेभगवन्! आप मेरेकरके कौन कौनसे रूपोंमें ध्यावनयोग्य हो ॥ १७ ॥

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ॥
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ॥ १८ ॥

हे जनार्दन! आपकी प्राप्ति उपाय और विभूति याने वैभव सो विस्तारसे फिर कहो. याने संक्षेप कहा अब विस्तार कहो क्योंकि, इस अमृतरूप माहात्म्यको सुनते सुनते मेरे तृप्ति नहीं होतीहै ॥ १८ ॥

श्रीभगवानुवाच।

हंत ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ॥
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यंतो विस्तरस्य मे ॥ १९ ॥

ऐसे सुनिके भगवान् बोले कि, हंत याने हे अर्जुन! तुम्हारेसे दिव्य जो विभूतिनको प्रधानतासे याने मुख्य मुख्य कहोंगा क्योंकि, हे कुरुश्रेष्ठ! मेरे विस्तारका अंत नहीं है ॥ १९ ॥

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ॥
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामंत एव च ॥ २० ॥

हे गुडाकेश! सर्वभूतोंके अंतःकरणमें रहाभया मैं सर्वभूतोंका अंतर्यामी हों और मैंही आदि और मध्य और अंतभी हों, अब यहांसे मैं मैं कहते जायंगे यहां ऐसा अर्थ करना कि, जैसे आदित्यनमें विष्णुनाम आदित्य मैं हों ऐसे कहनेसे यह भया कि, विष्णु आदित्य मेरी श्रेष्ठ विभूति है याने उसमें मेरी शक्ति जादा है ऐसाही जहां मैंही हों शब्द आवे तहां समझना विशेष गीतावाक्यार्थबोधिनी टीकामें मैंने लिखाहै वहां श्रुतिस्मृतिनका भी प्रमाण दियाहै सो देखलेना ॥ २० ॥

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् ॥
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥ २१ ॥

द्वादश आदित्यनमें विष्णुनाम आदित्य मैं हौं, ज्योतिनमें किरणवंत सूर्य उनचास मरुतनमें मरीचिमरुत् नक्षत्रोंमें चंद्रमा मैं हौं ॥ २१ ॥

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ॥
इंद्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ॥ २२ ॥

वेदनमें सामवेद हौं, देवनमें इंद्र हौं और इंद्रियोंमें मन हौं भूतप्राणिनमें चेतना हौं ॥ २२ ॥

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ॥
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥ २३ ॥

रुद्रनमें शंकर हौं और यक्षराक्षसोंमें कुबेर, और अष्टवसुनमें अग्नि शिखरवालोंमें मेरुपर्वत मैं हौं ॥ २३ ॥

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ॥
सेनानीनामहं स्कंदः सरसामस्मि सागरः ॥ २४ ॥

हे पृथापुत्र! पुरोहितनमें मुख्य बृहस्पति मेरेहीको जानो और सेनापतिनमें कार्त्तिकस्वामी, सरोवरनमें समुद्र मैं ही हौं ॥ २४ ॥

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ॥
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥ २५ ॥

महर्षिनमें भृगु, वाक्यनमें एक अक्षर याने "ओम्" मैं हौं यज्ञनमें जपयज्ञ, स्थावरोंमें हिमाचल हौं ॥ २५ ॥

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः ॥
गंधर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥ २६ ॥

सर्ववृक्षनमें पीपर और देवऋषिनमें नारद, गंधर्वनमें चित्ररथ सिद्धनमें कपिलमुनि हौं ॥ २६ ॥

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ॥
ऐरावतं गजेंद्राणां नराणां च नराधिपम् ॥ २७ ॥

घोडोंमें अमृतसे उत्पन्न उच्चैःश्रवाको, हाथिनमें ऐरावतको और मनुष्योंमें राजा मेरेहीको जानो ॥ २७ ॥

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् ॥
प्रजनश्चास्मि कंदर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥ २८ ॥

आयुधनमें वज्र, धेनुनमें कामधेनु मैं हौं उत्पत्तिकारक कामदेव हौं और एकशिरवाले सर्पनमें वासुकीसर्प मैं हौं ॥ २८ ॥

अनंतश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् ॥
पितॄणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ॥ २९ ॥

और अनेक शिरवाले सर्पोंमें शेषजी मैं हौं; जलजीवनमें मैं वरुण हौं पितृनमें अर्यमा और शासनकरनेवालोंमें मैं यम हौं ॥ २९ ॥

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् ॥
मृगाणां च मृगेंद्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥ ३० ॥

दैत्यनमें प्रह्लाद हौं और अनर्थकारककी गनतीकारकोंमें मैं काल हौं और मृगोंमें मैं हौं और पक्षिनमें गरुड हौं ॥ ३० ॥

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् ॥
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी ॥ ३१ ॥

पवित्रकारकोंमें पवन हौं, शस्त्रधारीनमें राम साक्षात् मैं हौं, यहां शस्त्रधारणमात्र विभूति है मच्छनमें मकर हौं और प्रवाहवालोंमें श्रीभागीरथी हौं ॥ ३१ ॥

सर्गाणामादिरंतश्च मध्यं चैवाहमर्जुन ॥
अध्यात्मविद्याविद्यानां वादः प्रवदतामहम् ॥ ३२ ॥

सर्ग जो ब्रह्माके दिवस उनमें आदि उत्पत्तिकारक और अंत प्रलय-कारक और मध्य याने रक्षक मैं ही हौं. हे अर्जुन ! सर्वविद्यांनमें अध्यात्मविद्या वादकरनेवालोंमें वाद याने सिद्धांत मैं हौं ॥ ३२ ॥

अक्षराणामकारोस्मि द्वंद्वः सामासिकस्य च ॥
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः ॥ ३३ ॥

अक्षरोंमें अकार हौं समासनमें द्वंद्वसमास और अक्षय काल मैं चौतरफ मुख जिसके ऐसा सर्वनका भरनेपोषनेवाला मैं ही हौं॥३३॥

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ॥
कीर्तिःश्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिःक्षमा॥३४॥

सर्वका हरनेवाला मृत्यु मैं और आपकी बढती चाहनेवालोंमें उद्भव याने बढती मैं हौं; स्त्रीजनोंमें कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा मैं हौं ॥ ३४ ॥

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छंदसामहम् ॥
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ॥ ३५ ॥

तैसे सामवेदके मंत्रोंमें बृहत्साम, छंदोंमें गायत्रीमंत्र मैं हौं महीनोंमें मार्गशीर्ष ऋतुनमें वसंत मैं हौं ॥ ३५ ॥

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥
जयोस्मि व्यवसायोस्मि सत्वं सत्ववतामहम् ॥३६॥

छलकारिनमें जुवा तेजस्विनमें तेज मैं हौं, जीतनेवालोंमें जय हौं, निश्चयवालोंमें निश्चय, हौं उदारनमें उदारता मैं हौं ॥ ३६॥

वृष्णीनां वासुदेवोस्मि पांडवानां धनंजयः ॥

मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः ॥ ३७ ॥

वृष्णिवंशिनमें वासुदेव यहां वसुदेवपुत्रत्व मात्र विभूति जानना पांडवमें अर्जुन तुमहो सो श्रेष्ठ विभूति हो इससे तुमभी मैं हौं, मुनिनमें व्यासजी मैं हौं, कवि जो शास्त्रदर्शी उनमें शुक्राचार्य कवि मैं हौं ॥ ३७ ॥

दंडो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ॥
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ॥ ३८ ॥

स्ववशकर्तनमें दंड हौं, जय चाहनेवालोंमें नीति हौं, गुप्तकरनेके उपायोंमें मौन हौं, ज्ञानिनमें मैं ज्ञान हौं ॥ ३८ ॥

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ॥
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥ ३९ ॥

हे अर्जुन ! सर्वभूतोंका जो आदिकारण है सो मैं हौं; जो चराचर भूत मेरे विना होय सो नहीं है ॥ ३९ ॥

नांतोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप ॥
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥ ४० ॥

हे अर्जुन ! मेरी दिव्य विभूतिनका अंत नहीं है परंतु यह विभूतिका विस्तार मैंने संकेतमात्रसे कहाहै ॥ ४० ॥

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ॥
तत्तदेवाऽवगच्छ त्वं मम तेजोंशसंभवम् ॥ ४१ ॥

जो जो प्राणी ऐश्वर्यवान्, शोभायमान अथवा बडा होय सोसो मेरे तेजके अंशयुक्त है ऐसे तुम जानो ॥ ४१ ॥

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ॥
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रेश्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

हेअर्जुन ! अथवा इस बहुत जानकरके तुम्हारे क्या प्रयोजन है मैं इस सर्व जगत्को एक अंशकरके धारण कियेभयेस्थित हों ॥४२॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीगीतामृततरंगिण्यां दशमोऽध्यायप्रवाहः ॥ १० ॥

---

अर्जुन उवाच ।

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ॥
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥ १ ॥

जब भगवान्ने आपकी विभूति कही और उसमें आपका स्वरूप वर्णन किया तब सुनिके अर्जुन देखनेकी इच्छा करके बोले कि, हे भगवन् ! मेरे अनुग्रहके वास्ते सर्वोत्तम गोप्य अध्यात्मसंज्ञित याने आत्मज्ञानविषयक जो वचन आपने कहा उसकरके मेरा यह मोह गया ॥ १ ॥

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया ॥
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ॥ २ ॥

कारण कि, हे कमलदलनयन! भूतप्राणिनके उत्पत्ति, प्रलय आपसे मैंने विस्तारपूर्वक सुने और आपका अक्षयमाहात्म्य भी सुना॥२॥

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ॥
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥ ३ ॥

हे परमेश्वर! तुम आपको जैसे कहतेहो यह ऐसाही है हे पुरुषोत्तम ! तुम्हारे ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, तेज, इन छहों ऐश्वर्ययुक्त रूपको देखनेको चाहताहों ॥ ३ ॥

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ॥
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ॥ ४ ॥

हे प्रभो ! जो वहरूप मेरेकरके देखनेको योग्य है ऐसा मानते हो हे योगेश्वर ! तो तुम अविनाशी आपके रूपको मेरेको दिखावो ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ॥
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥ ५ ॥

ऐसे वचन सुनिके भगवान् बोले कि, हे पृथापुत्र ! सैकडों फिरै हजारों अनेकप्रकारके दिव्य और अनेकवर्ण आकारके मेरे रूपोंको देखो ॥ ५ ॥

पश्यादित्यान् वसून् रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ॥
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥ ६ ॥
इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ॥
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥ ७ ॥

हे भारत ! मेरी देहमें द्वादशसूर्य अष्टवसु ११ रुद्र अश्विनीकुमार ४९ मरुत् देखो तथा जो प्रथमें न देखे ऐसे बहुत आश्चर्य देखो हे गुडाकेश ! इस मेरे देहमें सचराचर सर्व जगत् एकही ठिकाने इकट्ठेको आज देखो और जो और भी देखनेको चाहतेहो उसे भी देखो ॥ ६ ॥ ७ ॥

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ॥
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥ ८ ॥

इस आपकी दृष्टिकरके मेरेको देखनेको न समर्थ होवेंगे इससे तुमको दिव्य नेत्र देताहों तिसकरके मेरे ईश्वरसंबंधी योगको देखो ॥ ८ ॥

संजय उवाच।

एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः॥
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम्॥ ९॥

संजय धृतराष्ट्रसे कहतेभये कि, हे राजन्! महायोगेश्वर श्रीकृष्ण ऐसे कहिके फिर सर्वोत्तम ईश्वरसंबंधी रूप अर्जुनको दिखावतेभये॥ ९॥

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम्॥
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम्॥ १०॥

जिसरूपमें अनेक मुख और नेत्र हैं और अनेक अद्भुत दर्शन हैं अनेक दिव्य आभूषणयुक्त है और दिव्य अनेक उगाये हैं आयुध जिसमें॥ १०॥

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगंधानुलेपनम्॥
सर्वाश्चर्यमयं देवमनंतं विश्वतोमुखम्॥ ११॥

दिव्य माला और वस्त्रधारणकियेहैं दिव्य चंदनादि गंधका लेपन किये हैं सर्व आश्चर्यमय प्रकाशमान् अंतरहित और सब ओर जिसमें मुख हैं ऐसा रूप अर्जुनको दिखातेभये॥ ११॥

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता॥
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः॥ १२॥

जो आकाशमें हजारों सूर्यनका एक समयमें उत्पन्नभयाहुआ तेज होये सो तेज उन महात्मा भगवानके तेजके समान होये॥ १२॥

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा॥
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पांडवस्तदा॥ १३॥

उस देवनकेभी प्रकाशक कृष्णके शरीरमें उस समयमें अनेक

प्रकारका न्यारा न्यारा एकही ठेकाने इकट्ठा ऐसे सर्व जगत्को अर्जुन देखतेभये ॥ १३ ॥

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनंजयः ॥
प्रणम्य शिरसा देवं कृतांजलिरभाषत ॥ १४ ॥

तब विस्मय करके व्याप्त रोमांचयुक्त वह अर्जुन कृष्णको मस्तकसे प्रणामकरके हाथ जोरेभये बोले ॥ १४ ॥

अर्जुन उवाच ।

पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतवि-
शेषसंघान् ॥ ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषीं-
श्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥ १५ ॥

अर्जुन कहते हैं कि, हे देव ! तुम्हारे शरीरमें देवनको तथा सर्व भूतप्राणिनके समूहोंको तथा ब्रह्माको और कमलासन जो ब्रह्मा उनमें स्थित जो ईश्वर याने आपही तिनको और सर्व ऋषिनको और दिव्य सर्पनको देखताहों ॥ १५ ॥

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनंत-
रूपम् ॥ नांतं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि
विश्वेश्वर विश्वरूप ॥ १६ ॥

हे विश्वेश्वर ! हे विश्वरूप ! तुमको सर्व ओरसे अनेक भुजा उदर मुख और नेत्रवाले अनंतरूप देखताहों तुम्हारा न अंत न मध्य न फिर आदि देखताहों ॥ १६ ॥

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशिं सर्वतो
दीप्तिमंतम् ॥ पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समंता-
द्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥ १७ ॥

तुमको किरीटवान् गदावान् चक्रवान् और तेजकी राशि सब ओरसे प्रकाशवान् सब ओरसे दुर्निरीक्ष्य प्रदीप्त अग्नि और सूर्यनकी कांतिसरीखी कांतिमान् और अपरिमितरूप देखताहौं ॥ १७ ॥

त्वमक्षरं परमं वेदितव्य त्वमस्य विश्वस्य परं
निधानम् ॥ त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनात-
नस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥ १८ ॥

जो मुमुक्षु जनोंकरके जानने योग्य सर्वोत्तम विष्णु आप हो इस विश्वके श्रेष्ठ आधार आप हो सनातनधर्मके रक्षक अविनाशी आप हो सनातन पुरुष आप हो यह मैंने जाना है ॥ १८ ॥

अनादिमध्यांतमनंतवीर्यमनंतबाहुं शशिसूर्यने-
त्रम् ॥ पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वते-
जसा विश्वमिदं तपंतम् ॥ १९ ॥

नहीं है आदि, मध्य और अंत जिनके अनंत है पराक्रम जिनका अनंत है भुजा जिनके चंद्र सूर्य हैं नेत्र जिनके प्रदीप्त अग्निसदृश मुख जिनके जो आपके तेजकरके इस विश्वको तपायमान कररहेहो ऐसे तुमको देखता हौं ॥ १९ ॥

द्यावापृथिव्योरिदमंतरं हि व्याप्तं त्वयैकेन
दिशश्च सर्वाः ॥ दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं
लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥ २० ॥

हे महाशरीर ! द्यावापृथिवीका यह अंतर याने इस ब्रह्मांडका पोल आप एक करके व्याप्त है और सर्व दिशा व्याप्त हैं अर्थात् ऊंचाई करके ब्रह्मांड पोल और चौडाई करके सर्व दिशा पूरगई हैं ऐसे

आपके इस अद्भुत उग्र रूपको देखिके तीनों लोकैं याने तीनों लोकोंके निवासी देव मनुष्यादिक व्याकुल हैं ॥ २० ॥

अमी हि त्वां सुरसंघा विशंति केचिद्भीताः प्रां-
जलयो गृणंति ॥ स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसं-
घाः स्तुवंति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ॥ २१ ॥

ये देवतनके समूह आपके समीप प्राप्त भयेहैं कितनेक भयभीत हाथ जोरे भये तुम्हारे गुण नाम उच्चारण करतेहैं महर्षी और सिद्धन-के समूह स्वस्ति ऐसे कहिके तुह्मारी अनेक प्रकारकी स्तुतिन करके स्तुति करतेहैं ॥ २१ ॥

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वेऽश्विनौ म-
रुतश्चोष्मपाश्च ॥ गंधर्वयक्षासुरसिद्धसंघा वीक्षं-
ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥ २२ ॥

एकादश रुद्र द्वादश आदित्य अष्ट वसु और जो साध्य नामक उपदेव तेरह विश्वेदेव दो अश्विनीकुमार उंचास मरुत् और पितर और गंधर्व यक्ष देवता और सिद्ध इनके समूह ये सब विस्मित भये हुए तुमको ही देखिरहेहैं ॥ २२ ॥

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपा-
दम् ॥ बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः
प्रव्यथितास्तथाहम् ॥ २३ ॥

हे महाबाहो ! बहुत हैं मुख और नेत्र जिसमें तथा बहुत हैं भुजा जांघें और चरण जिसमें बहुत हैं उदर जिसमें बहुत दाढों करके

विकराल ऐसे तुम्हारे महत् रूपको देखिके लोकं व्याकुल हैं तैसेही मैं भी व्याकुल हूं ॥ २३ ॥

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ॥ दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितांतरात्मा धृतिं न विंदामि शमं च विष्णो ॥ २४ ॥ दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ॥ दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ २५ ॥ अमी च त्वां ("दृष्ट्वा दिशो न जानंति शर्म न लभंते इति पूर्वेण पंचविंशतितमेन पद्येनान्वयः") धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैवावनिपालसंघैः ॥ भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथाऽसौ सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥ ॥ २६ ॥ वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशंति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ॥ केचिद्विलग्ना दशनांतरेषु संदृश्यंते चूर्णितैरुत्तमांगैः ॥ २७ ॥

हे विष्णो ! नभ जो प्रकृतिसे परे परम आकाश वैकुंठ तहांपर्यंत है स्पर्श जिनेका जो प्रकाशमान अनेक वर्णयुक्त रूप तथा मुखे फैलाये प्रदीप्त और विशाल नेत्र ऐसे आपको देखिके जिससे कि, मैं व्याकुलचित्त भयाहुआ धीरजको और शांतिको नहीं प्राप्त होताहूं और दाढैं हैं कराल जिनमें और कालानलके तुल्य हैं ऐसे तुम्हारे मुखोंको देखि के ही दिशाओंको नहीं जानताहूं और सुखको भी नहीं प्राप्तहोताहूं और राजोंके समूहोंकरके सहित सर्व धृत राष्ट्रके पुत्र तथा भीष्म द्रोण यह कर्ण और हमारे जोधनमें मुख्य जो हैं

तिनकरके सहित तुमको ("देखिके दिशाओंको नहीं जानते हैं और सुखको नहीं प्राप्तहोते हैं ऐसे प्रथमके पच्चीसवें श्लोककरके अन्वय है")। ये सर्व अतिवेगको प्राप्तभये डाढे हैं कराल जिनमें ऐसे भयानक आपके मुखोंमें प्रवेश करते हैं कितनेक चूर्णितभयेहुये मस्तकोंकरके सहित तुम्हारे दांतोंकी संधिनमें पटकेभये दीखते हैं इससे हे देवेश ! हे जगन्निवास ! आप कृपा करो याने हम सब डरते हैं इससे आप प्रथमसरीखे सौम्यरूपको धारणकरो॥२४॥२५॥२६॥२७॥

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवंति ॥ तथा तवामी नरलोकवीरा विशंति वक्त्राण्यभितो ज्वलंति ॥ २८ ॥

जैसे नदिनके बहुतसे पानीके वेग समुद्रहीके संमुख धावते हैं वैसे ये नरलोकवीर तुम्हारे सर्व ओर प्रज्वलित मुखोंमें प्रवेश करतेहैं ॥ २८ ॥

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतंगा विशंति नाशाय समृद्धवेगाः ॥ तथैव नाशाय विशंति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥ २९ ॥

जैसे अतिवेगवंत पतंग आपके नाशके वास्ते प्रदीप्त अग्निमें प्रवेश करतेहैं तैसेही अतिवेगवंत ये लोग भी अपने विनाशके वास्ते तुम्हारे मुखोंमें प्रवेश करते हैं ॥ २९ ॥

लेलिह्यसे ग्रसमानः समंताल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ॥ तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं भासस्तवोग्राः प्रतपंति विष्णो ॥ ३० ॥

हे विष्णो ! प्रज्वलित अपने मुखोंकरके सर्व लोगोंको सब ओरसे घेरतेभये चाटेजातेहो याने खायेजातेहो तुम्हारे उग्र प्रकाश

सर्वे जगत्को अपने तेजकारिके परिपूरितं करिके तपरहेहैं ॥ ३० ॥

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो नमोऽस्तु ते
देववर प्रसीद ॥ विज्ञातुमिच्छामि भवंतमाद्यं
न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥ ३१ ॥

हे देववर ! ऐसे उग्ररूप आप कौन हो सो मेरेसे कहो क्योंकि, तुम्हारी प्रवृत्तिको मैं नहीं जानताहूं जो आप आदिहो उनको जाननेकी इच्छा करताहूं आप कृपाकरो तुम्हारेको नमस्कार होउ ॥ ३१ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाह-
र्तुमिह प्रवृत्तः ॥ ऋतेऽपि त्वां न भविष्यंति स-
र्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥ ३२ ॥

ऐसे सुनिके श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि, मैं इन लोगोंके क्षयके वास्ते बढाभया काल हूं यहां इन लोगोंका संहार करनेके वास्ते प्रवर्त भयाहूं जो ये जोधा तुम्हारी शत्रुसेनाओंमें खडेहैं ये सर्व तुम्हारे विना निश्चयपूर्वक न रहेंगे ॥ ३२ ॥

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून् भुं-
क्ष्व राज्यं समृद्धम् ॥ मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥ ३३ ॥

हे सव्यसाचिन् ! हे अर्जुन ! जिससे कि ये मरेंहोंगे तिससे तुम उठो यश लेउ शत्रुनको जीतिके समृद्ध राज्यको भोगो प्रथमही ये सब मैंने माररखेहैं तुम तो निमित्तमात्र होउ ॥ ३३ ॥

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथाऽन्यानपि

योधवीरान् ॥ मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥ ३४ ॥

द्रोण और भीष्म और जयद्रथ और कर्ण तथा औरभी शूरवीर इनको मेरे मारेभयेनको तुम मारो, मति दुःखित होउ रणमें शत्रून्को जीतोगे युद्धकरो ॥ ३४ ॥

संजय उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य कृतांजलिर्वेपमानः
किरीटी ॥ नमस्कृत्वा भूयएवाह कृष्णं सगद्गदं
भीतभीतः प्रणम्य ॥ ३५ ॥

संजय धृतराष्ट्रसे कहतेहैं कि, किरीटी जो अर्जुन सो श्रीकृष्ण के इतने वचन सुनिके कांपते कांपते हाथ जोड़ेभये नमस्कार करके फिरभी भयभीत प्रणाम करके गद्गदकंठयुक्त श्रीकृष्णसे बोलतेभये ॥ ३५ ॥

अर्जुन उवाच ।

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनु-
रज्यते च ॥ रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवंति स-
र्वे नमस्यंति च सिद्धसंघाः ॥ ३६ ॥

अर्जुन कहतेहैं कि, हे हृषीकेश ! तुम्हारी उत्तम कीर्तिकरके जगत् आनंदित होताहै और आपसे प्रीति करताहै राक्षस भयको प्राप्तभयेहुये सर्वदिशाओंको भागतेहैं और सर्व सिद्धसमूह नमस्कार करतेहैं सो यह योग्यही है ॥ ३६ ॥

कस्माच्च ते न नमेरन् महात्मन् गरीयसे ब्रह्म-
णोऽप्यादिकर्त्रे ॥ अनंत देवेश जगन्निवास त्व-
मक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥ ३७ ॥

हे महात्मन्! ब्रह्मासे भी बडे आदिकर्त्ता जो आप तिने तुमको वे क्यों न नमन करैं अर्थात् करेहींकरैं. हे अनंत! हे देवेश! हे जगन्निवास! जो अक्षर याने जीवतत्त्व सत् जो कार्य स्थूलप्रकृति असत् जो सूक्ष्मप्रकृति कारण तत्पर जो शुद्ध आत्मा सो सब आप हो याने सबके अंतर्यामी हो ॥ ३७ ॥

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य
परं निधानम् ॥ वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनंतरूप ॥ ३८ ॥

आप आदिदेव पुराण पुरुष हो तुम इस विश्वके परम आधार हो इसके जाननेवाले और जानने योग्य और इसके सर्वोत्तम वासस्थान हो हे अनंतरूप! यह विश्व तुमकरके व्याप्त है ॥ ३८ ॥

वायुर्यमोग्निर्वरुणः शशांकः पितामहस्त्वं प्रपि-
तामहश्च ॥ नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च
भूयोपि नमो नमस्ते ॥ ३९ ॥

पवन अग्नि यम वरुण चंद्र पितामह और प्रपितामह तुम हो इससे तुमको हजारोंवार नमोनमः होउ फिर और फिरभी तुमको नमोनमः ॥ ३९ ॥

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत
एव सर्व ॥ अनंतवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं
समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥ ४० ॥

हे सर्व! तुमको अगारीसे और पिछारीसे नमस्कार और तुमको सब ओरसे भी नमस्कार होउ अनंत बल और अमित पराक्रम तुम सर्वमें व्यापक हो इसीसे तुम सर्वरूप हो ॥ ४० ॥

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव

हे सखेति ॥ अजानता महिमानं तवेदं मया
प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥ ४१ ॥ यच्चावहा-
सार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु ॥
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वाम-
हमप्रमेयम् ॥ ४२ ॥

हे अच्युत ! तुम्हारे महिमाको और इस विश्वरूपको न जाननेवाला जो मैं तिसे मैंने प्रमादसे अथवा प्रणयसे भी सखा ऐसे मानिके हे कृष्ण! हे यादव ! हे सखे ! ऐसे हठसे जो कहाहोय और क्रीडा शयन आसन तथा भोजनकालमें अकेला अथवा और उन सखाके संमुख इसीके वास्ते जो आपका अपमान किया होय सो परमितिरहित जो आप तिनें आपसे मैं क्षमा करताहूं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च
गुरुर्गरीयान् ॥ न त्वत्समोस्त्यभ्यधिकः
कुतोन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभावः ॥ ४३ ॥
तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वाम-
हमीशमीड्यम् ॥ पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥ ४४ ॥

हे सर्वोत्तमप्रभाव ! आप इस चराचर लोकके पिता हो और सर्व गुरुनसे बडे गुरु हो इसीसे पूज्य हो तीनों लोकमें भी आप समान और नहीं है तो कहांसे और अधिक होयगा तिससे मैं शरीरको पृथिवीपर धारणकियेभये प्रणामकरके ईश्वर इसीसे स्तुतिकरनेयोग्य आपको प्रसन्न करूंहूं हे देव ! पुत्रके प्रियके वास्ते पिता जैसे सखाके प्रियके वास्ते सखा जैसे ऐसे मेरे प्रिय आप हो सो मेरे प्यारके वास्ते मेरे अपराध सहनेको योग्य हो ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

अदृष्टपूर्वं हृषितोस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं
मनो मे ॥ तदेव मे दर्शय देव रूपं प्रसीद देवे-
श जगन्निवास ॥ ४५ ॥

जो रूप मैंने और किसीनेभी प्रथम नहीं देखा था उसको देखिके चकित भयाहूं और भयसे मेरो मन व्याकुल भयाहै हे देव ! मेरेको वही प्रथमका रूप दिखावो हे देवेश ! हे जगन्निवास ! आप मेरेपर प्रसन्न होउ ॥ ४५ ॥

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टु-
महं तथैव ॥ तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्र-
बाहो भव विश्वमूर्त्ते ॥ ४६ ॥

हे सहस्रबाहो ! हे विश्वमूर्ते ! मैं वैसाही किरीटयुक्त गदायुक्त चक्रहस्त आपको देखनेको चाहता हूं इसवास्ते उस ही चतुर्भुज रूपकरके युक्त होउ ॥ ४६ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं रूपं परं दर्शितमात्म-
योगात् ॥ तेजोमयं विश्वमनंतमाद्यं यन्मे त्वद-
न्येन न दृष्टपूर्वम् ॥ ४७ ॥

ऐसी अर्जुनकी प्रार्थना सुनिके भगवान् बोले कि, हे अर्जुन ! जो मेरो तेजोमय विश्वरूप अंतरहित सर्वका आदि तुम्हारे विना और किसीने नहीं प्रथम देखा सो यह पर रूप प्रसन्न होके मैंने आपके सत्यसंकल्परूपयोगसे तुमको दिखायो ॥ ४७ ॥

न वेदयज्ञाऽध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न
तपोभिरुग्रैः ॥ एवंरूपः शक्य अहं नृलोके द्रष्टुं
त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥ ४८ ॥

हे कुरुवंशिनमें श्रेष्ठवीर! ऐसे रूपका मैं इस मनुष्यलोकमें तुम्हारे विना औरके न वेदपाठ यज्ञ और मंत्रजपकरके न दानकरके औरें न योगक्रियाकरके न उग्र तपकरके देखनेको योग्यहूं ॥ ४८ ॥

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो दृष्ट्वा रूपं घोर-
मीदृङ् ममेदम् ॥ व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं
तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ॥ ४९ ॥

ऐसे घोर मेरे इस रूपको देखिके तुमको व्यथा मति होउ औरें मोहभाव भी मति होउ भयरहित प्रसन्नमन तुम वही यह मेरा रूप फिरि देखो ॥ ४९ ॥

संजय उवाच ।

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा स्वकं रूपं दर्शया-
मास भूयः ॥ आश्वासयामास च भीतमेनं
भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥ ५० ॥

संजय धृतराष्ट्रसे कहते हैं कि, वसुदेवपुत्र कृष्ण ऐसे अर्जुनको कहिके वैसा ही पूर्ववत् आपके रूपको फिरि दिखातेभये और जो बडेशरीरयुक्त थे सो सौम्यरूप होके फिरि भयभीत अर्जुनको आश्वासते भये ॥ ५० ॥

अर्जुन उवाच ।

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन ॥
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥ ५१ ॥

तब अर्जुन बोले कि, हे जनार्दन! तुम्हारे इस सौम्य मानुष रूपको देखिके अब सचेतभयाहुआ आपके स्वभावको प्रीतभया सावधान हूं ॥ ५१ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम ॥

देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः ॥ ५२ ॥

अर्जुनके वाक्य सुनिके श्रीकृष्ण बोले कि, हे अर्जुन ! जो अति-दुर्लभदर्शन इस मेरे रूपको तुम देखतेभये इस रूपके देवता भी निरंतर दर्शनाभिलाषी रहाकरते हैं ॥ ५२ ॥

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ॥
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥ ५३ ॥
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ॥
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥ ५४ ॥

हे अर्जुन ! जैसे मेरेको तुम देखतेभये इसप्रकारका मैं न वेदों-करके न तपकरके न दानकरके और न यज्ञकरके देखनेको सकताहौं क्योंकि हे परंतप ! ऐसा मैं अनन्य भक्तिकरके निश्चयपूर्वक जाननेको और देखनेको समीप प्राप्तहोनेको भी सकताहौं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः ॥
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पांडव ॥ ५५ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां यो-गशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शन-योगो नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

हे पांडव ! जो मनुष्य मेरेनिमित्त लौकिक वैदिक सर्व कर्म करताहै मेरेहीको सर्वसे अतिउत्तम मान रहाहै मेरा ही भक्त है मेरे संबंध विना और संगोंकरके रहितहै और सर्वभूतप्राणिनमें निर्वैर है सो मेरे को प्राप्तहोताहै ॥ ५५ ॥

इति श्रीमत्सुकुलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीमद्भगवद्गीतामृततरंगिण्यामेकादशाध्यायप्रवाहः ॥ ११ ॥

अर्जुन उवाच ।

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ॥
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥ १ ॥

ऐसे प्रथम आत्मज्ञानकी महिमा श्रीकृष्णजीने वर्णन की फिर भक्तिहीसे जानने देखनेमें और प्राप्तहोनेमें आताहों सो दोनोंको सुनिके अर्जुन पूंछते हैं कि, निरंतर भक्तियोगयुक्तभयेहुए जो भक्त ऐसे जो आप पीछे अध्यायके अंतमें कहा तैसे आपकी उपासना करते हैं और जो इंद्रियोंके अदृश्य अक्षर याने आत्मस्वरूप उसकी उपासना करतेहैं उन दोनोंमें अतिश्रेष्ठ कौन है याने आत्मज्ञानी श्रेष्ठ है कि, आपके उपासक श्रेष्ठ हैं सो कहो ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ॥
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥ २ ॥

ऐसा अर्जुनका प्रश्न सुनिके श्रीकृष्णभगवान् बोले कि, जो निरंतर भक्तियोगयुक्त मेरेमें मनको लगायके परम श्रद्धाकरके युक्त मेरेको भजते हैं वे योगिनमें श्रेष्ठ मेरे मान्य हैं ॥ २ ॥

येत्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ॥ सर्वत्र-
गमचिंत्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥ सन्नियम्य-
म्येंद्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ॥ ते प्राप्नुवंति
मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥ क्लेशोऽधिकतरस्ते-
षामव्यक्तासक्तचेतसाम् ॥ अव्यक्ता हि गति-
र्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

जो कोई इंद्रियसमूहको नियममें राखिके सर्वत्र समबुद्धि सर्वभू-तोंके हितमें रतहुयेभये अनिर्देश्य याने देवादि शरीरशब्दोंकरके कह-

नेमें न आवे ऐसे अव्यक्त याने इंद्रियगोचर नहीं "सर्वत्रगं"याने सर्वत्र देवादिशरीरोंमें रहनेवाला अचिंत्य याने ध्यानमें न आवे और कूटस्थ याने सर्वत्र एकसा रहे अचल याने स्वस्वरूपहीमें स्थिर इसीसे नित्य ऐसे अक्षरको याने आत्मस्वरूपको भजते हैं याने आत्मस्वरूपहीका अनुसंधान करते हैं वेभी मेरेहीको प्राप्तहोते हैं परंतु आत्मज्ञानें देशा दुःखपूर्वक देहधारिनकरके प्राप्तहोताहै इससे उन अव्यक्तासक्तचित्तनको क्लेश अतिशय है ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ॥
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायंत उपासते ॥ ६ ॥
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ॥
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥ ७ ॥

हे पृथापुत्र ! जो कोई सर्व कर्मोंको मेरेमें अर्पणकरके मेरेही शरणभयेहुये अनन्य भक्तियोगकरके मेरे को ध्यावते पूजते हैं ऐसे मेरेमें लगायाहै चित्त जिनने उनका मैं थोडे ही कालमें मृत्युदुःखरूप संसारसागरसे उद्धारकर्त्ता होउंगा ॥ ६ ॥ ७ ॥

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ॥
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥ ८ ॥

इससे तुम मेरेहीमें मनको लगावो मेरेहीमें बुद्धिको लगावो इस मन,बुद्धिलगाये पीछे मेरेही समीप रहोगे इसमें संशय नहीं है॥८॥

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ॥
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय ॥ ९ ॥

हे अर्जुन ! जो कदाचित् मेरेमें चित्तको स्थिर समाधानकरनेको नहीं सकते हो तो अभ्यासयोगकरके मेरे प्राप्तहोनेको इच्छेतरहो ॥ ९ ॥

अभ्यासेप्यसमर्थोसि मत्कर्मपरमो भव ॥
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ १० ॥

जो अभ्याससेंभी असमर्थ होउ तो मेरे पूजनादिक कर्मोमें मुख्य स्थिर होउ मेरे अर्थ भी कर्मोको करतेकरते मेरी प्राप्तिरूप सिद्धिको प्राप्त होवोगे ॥ १० ॥

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ॥
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥ ११ ॥

जोकि, तुम यहभी करनेको अशक्त होउ इससे मनको सावधान कियेभये मेरे भक्तियोगका आश्रय कियेभये सर्व कर्मफलका त्याग करो ॥ ११ ॥

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ॥
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छांतिरनंतरम् ॥१२॥

जिससे कि, अभ्याससे कल्याणकारक ज्ञान होताहै ज्ञानसे विचार होताहै विचारसे कर्मफलका त्याग होताहै कर्मफलके त्यागसे फिर शांति याने संसारसे वैराग्य होताहै ॥ १२ ॥

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ॥
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥ १३ ॥
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ॥
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १४ ॥

जो सर्वभूतोंको न द्वेषकारक होय और सबका मित्र होय और दयालू भी होय ममतारहित अहंकाररहित सुखदुःखमें सम क्षमावान् यथालाभसंतुष्ट निरंतर भक्तियोगवान् जितचित्त दृढनिश्चय मेरेमें मन बुद्धिको लगायेहोई सो मेरा भक्त मेरे को प्रिय है ॥ १३ ॥ १४ ॥

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ॥
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥ १५ ॥

जिससे कोई भी जंतु त्रास नपावे और जो किसीसे भी दुःख न पावै और जो हर्ष, ईर्षा, भय और उद्वेगोंकरके रहित होय सो मेरा प्रिय है १५

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ॥
सर्वारंभपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १६ ॥

जो मनुष्य मेरे संबंधविना सर्वत्र अपेक्षारहित शुचि याने शुद्ध-आहारी और बाहर मृत्तिका जलादिकरके और अंदर चित्तकी शुद्धताकरके पवित्र स्वधर्मअनुष्ठानमें चतुर शत्रुमित्रादिभेदरहित शास्त्रोक्त कर्म करनेमें व्यथारहित सर्व आरंभोंके फल और ममता का त्यागी ऐसा मेरा भक्त सो मेरे को प्रिय है ॥ १६ ॥

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति ॥
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥१७॥

जो सुखकारक वस्तु पायके न हर्ष दुःखकारक पायके न द्वेषकरे शोकनिमित्तमें न शोककरे और हर्षकारककी न इच्छाकरे जो शुभा-शुभ कर्मफलोंका त्यागीहुआभया भक्त होय सो मेरे प्रिय है ॥१७॥

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ॥
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः॥तुल्यनिं-
दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येनकेनचित् ॥ अनिकेतः
स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥१८॥ १९ ॥

शत्रु और मित्रमें सम तैसा ही मान अपमानमें और शीतउ-ष्ण सुखदुःखोंमें सम होय विषयोंकी आसक्तिरहित निंदा स्तुति तुल्यमाने मितभाषी जो स्वतःप्राप्तहोई इसीकरके संतुष्ट घरमें अनासक्त स्थिरबुद्धि भक्तिमान् मनुष्य मेरा प्रिय है ॥ १८ ॥ १९ ॥

येतु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ॥
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥ २० ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो
नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

जो कोई श्रद्धा धारेभये मेरेहीको सर्वोत्तम जाननेवाले भक्त इस यथोक्त धर्मरूप अमृतको याने मेरेमें मन लगाना इत्यादि धर्मरूप अमृतको सेवते हैं वे मनुष्य मेरे अतिशय प्रिय हैं ॥ २० ॥

इति श्रीमत्सुकुलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीगीतामृततरंगिण्यां द्वादशोऽध्यायप्रवाहः ॥ १२ ॥

इति द्वितीयं षट्कम् ।

---

## अथ तृतीयं षट्कम् ।

श्रीभगवानुवाच ।

इदं शरीरं कौंतेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ॥
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥ १ ॥

प्रथमके छः अध्यायोंमें ईश्वरप्राप्तिका उपायभूत उपासना और उपासनाका अंगभूत आत्मस्वरूपज्ञान कहा और उस आत्मस्वरूपज्ञानकी प्राप्ति ज्ञानयोगकर्मयोगनिष्ठासे होती है ऐसे कहा ॥ मध्यके छःअध्यायोंमें परमात्मस्वरूपका यथार्थ ज्ञान और उसके माहात्म्यज्ञानपूर्वक उपासना जिस उपासनाको भक्ति भी कहते हैं सो कहते भये ॥ अब अंतके छः अध्यायोंमें प्रकृतिपुरुषका निरूपण और इस प्रपंचका प्रकृतिपुरुषसंयोगसे होना कहेंगे और प्रथम बारह अध्यायोंमें जो परमात्मस्वरूपका यथार्थ निश्चय और कर्मज्ञानभक्ति-

स्वरूप और इनके ग्रहणके न्यारेन्यारे प्रकार कहेंगे॥ तहां तेरहवें अध्यायमें देह और आत्माके स्वरूप और आत्मस्वरूपप्राप्तिका उपाय तथा प्रकृतिमुक्त आत्माका स्वरूप और उसके प्रकृतिसंबंधका कारण और प्रकृतिपुरुषविवेकका अनुसंधानप्रकार कहेंगे॥ श्रीकृष्णभगवान् कहतेहैं कि; हे कुंतीपुत्र! यह शरीर क्षेत्र ऐसो कहाहै जो इसको जानताहै उसको देहात्मज्ञानिजन क्षेत्रज्ञ ऐसे कहते हैं याने देह क्षेत्र और आत्मा क्षेत्रज्ञ हैं॥ १॥

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत॥
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम॥ २॥

हे भारत! सर्वक्षेत्रोंमें याने सर्वदेहोंमें क्षेत्रज्ञ जो जीव और मैं जो परमात्मा तिस मेरेको भी जानो जो क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका ज्ञान याने इनका विवेक ज्ञान है सो ज्ञान मेरेको अंगीकार है॥ यहां जो शरीरमें आत्मा परमात्मा दोनों कहे उसपर श्रुति प्रमाण है सो यह "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते॥ तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति॥" अर्थ—दोपक्षी संगसंग रहनेवाले परस्पर सखा एक सदृश वृक्षपर रहतेहैं उनमेंसे एक उस वृक्षके स्वादु फल खाताहै दूसरा खाएविना प्रकाशताहै॥ अर्थात् ईश्वर और जीव सदा संग रहते हैं परस्पर सखा एकसरीखे देहमें रहतेहैं तिनमें जीव शरीरजन्य कर्मफलोंका भोक्ता है और ईश्वर साक्षीमात्र प्रकाशक है दूसरा यह अर्थ होताहै कि, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ मैंहीं हौं अर्थात् इन दोनोंका अंतर्यामी हौं तो भी देहांतर्यामी जीव जीवांतर्यामी परमात्मा ऐसे भी वही अर्थ सिद्धभया जो यहां जीव और ईश्वर एकही कहते हैं उनको "उत्तमःपुरुषस्त्वन्यः" यहां अर्थकी पंचाइत होनेकी शंका आती है अंतर्यामित्वमें तो "ईश्वरःसर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति॥ नतदस्तिविनायत्स्यान्मया भूतं चराचरम्" और

"यस्यात्मा शरीरं य आत्मनि तिष्ठन् य आत्मानमंतरो यमयति यमात्मा न वेद स ते आत्मा अमृत" इत्यादिक श्रुति भी प्रमाण हैं ॥ २ ॥

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत् ॥
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ॥ ३ ॥

सो क्षेत्र जिस द्रव्यका है और जिनके आश्रयभूत है और जिन विकारोंकरके और जिस प्रयोजनकेवास्ते उत्पन्न भयाहै और जिसरूपसे वर्तमान है और वह क्षेत्रज्ञ जो है याने जैसे रूपयुक्त है और जैसे प्रभाववाला है सो संक्षेपकरके मेरे से सुनो ॥ ३ ॥

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छंदोभिर्विविधैः पृथक् ॥
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥ ४ ॥

वह क्षेत्र क्षेत्रज्ञका यथास्वरूप बहुत प्रकारकरके पराशरादिक ऋषिननें और ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद ऐसे अनेक प्रकार वेदोंने और ब्रह्मके प्रतिपादन करनेवाले जो ब्रह्मसूत्र याने व्यासकृत शारीरक सूत्ररूप पदोंने जो कारणयुक्त निश्चय याने सिद्धांतकरने-वाले उनने भी क्षेत्रक्षेत्रज्ञके स्वरूपको न्यारान्यारा कहाहै सो मैं संक्षे-पसे कहोंगा तुम मेरेसे सुनो ॥ ४ ॥

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ॥
इंद्रियाणि दशैकं च पंच चेंद्रियगोचराः ॥ ५ ॥
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः ॥
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥ ६ ॥

पंचमहाभूत, अहंकार, बुद्धि याने महत्तत्व और अव्यक्त याने सूक्ष्मरूप प्रकृति ये क्षेत्रके उत्पत्तिकारक द्रव्य हैं अब विकार याने कार्य कहते हैं दश और एक ऐसे ग्यारह इंद्रियां हैं जैसे कि, कान, त्वचा, नेत्र, जीभ और नासिका ये पांच ज्ञानइंद्रियां वाणी, हाथ, पाँव,

गुदा और लिंग ये पांच कर्मइंद्रियां एक मन ऐसे ग्यारह इंद्रियों और शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ये पांच इंद्रियोंके विषय हैं ये सोलह विकारहैं इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, संघात याने सविकार-भूतसमूह चेतना जो ज्ञानशक्ति धृति जो धीरज ऐसे संक्षेपसे विकारसहित यह क्षेत्र कहा ॥ ५ ॥ ६ ॥

अमानित्वमदंभित्वमहिंसा क्षांतिरार्जवम् ॥
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥ ७ ॥

अब क्षेत्रकार्यों में आत्मज्ञानसाधनके वास्ते ग्रहण करनेके गुण कहतेहैं जैसे कि, श्रेष्ठ जनोंमें मानका न चाहना लोक दिखानेको धर्म कर्मरूप दंभ न करना, परपीडारूप हिंसाका न करना, अपनेसे बलहीनके अपराध सहनरूप क्षमा राखना, सर्वसे सरलस्वभाव रहना, मन, वचन, कर्म करके गुरुकी सेवा करना, मृत्तिका जलादिसे बाहर और शुद्धचित्तसे ईश्वरस्मरणरूप अंतर ऐसा शौच करना आत्म-ज्ञानमें स्थिर रहना, मनको सर्वत्रसे निवारणकरके ईश्वरमें लगाना॥ ७॥

इंद्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ॥
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥ ८ ॥

इंद्रियविषयोंमें गुणबुद्धि न करना और देहमें और देहसंबंधी पदार्थोंमें अहंबुद्धिभी न करना, जन्म मृत्यु वृद्धावस्था अनेक रोग ऐसे शरीरमें इन दुःखरूप दोषोंका विचारना ॥ ८ ॥

असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु ॥
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ ९ ॥

आत्माविना अन्यत्र आसक्तिरहित पुत्र स्त्री और घर इत्यादि-कोंमें अति मिलाप न रखना और इष्ट और अनिष्टवस्तुकी प्राप्तिमें निरंतर समचित्त रहना ॥ ९ ॥

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ॥
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥ १० ॥

मेरेमें अनन्ययोगकरके अखंड भक्ति और एकांत रहनेमें प्रीति जनसभामें अप्रीति ॥ १० ॥

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्वज्ञानार्थदर्शनम् ॥
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥ ११ ॥

आत्मसंबंधी ज्ञानकी नित्यता तत्वज्ञानके प्रयोजनका विचारनो ऐसे यह ज्ञान कहा जो इससे अन्यथा है सो अज्ञान है ॥ ११ ॥

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ॥
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥ १२ ॥

जो जाननेयोग्यहै सो कहताहूं जिसको जानिके मोक्षको पाताहै वह ऐसा है कि, अनादि याने जन्मरहित है मत्पर याने उससे श्रेष्ठ मैंही हूं वह केवल मेरे स्वाधीन है ब्रह्म याने प्रकृतिमुक्त शुद्ध चैतन्य जीवात्मा है वह आत्मा न सत् न असत् कहनेमें आताहै याने कार्य-कारण दोनों अवस्थाओंकरके रहित है ॥ १२ ॥

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ॥
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ १३ ॥

वह जीवात्मा सब ओरसे हाथपाँववाला है सब ओरसे नेत्र मस्तक और मुखवालाहै सब ओरसे कानवालाहै लोकमें वस्तुमात्रमें व्यापक होके रहताहै यह स्वरूप मुक्तजीवका कहा मुक्तदशामें जीवकी समता परमात्माके सरीखी है सो यहां गीतामेंभी कहेंगे " इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः " सूत्रभी है " भोगमात्रसाम्यलिंगाच्च " और " तथाविद्वान् पुण्यपापे विधूय निरंजनः परमं साम्यमुपैति " ऐसे जो परमात्माकी समता कही है सो परमात्मासरीखा स्वरूप होनेमें क्या शंका है ॥ १३ ॥

सर्वेंद्रियगुणाभासं सर्वेंद्रियविवर्जितम् ॥
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥ १४ ॥

सर्व इंद्रियनकी वृत्तिनकरके भी विषयनको जाननेमें समर्थ हैं और आप स्वभावसे सर्वइंद्रियोंकरके रहित भी हैं याने इंद्रियनकी वृत्तिनविना भी विषयनको जाननेमें समर्थ हैं आप स्वयं देवादि शरीरोंमें आसक्त नहीं हैं और सर्व देवादिशरीरोंका धारणकरनेवालाहै सत्वादिगुणरहित और गुणोंका भोगनेवाला है ॥ १४ ॥

बहिरंतश्च भूतानामचरं चरमेव च ॥
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चांतिके च तत् ॥ १५॥

वह आत्मा मुक्तावस्थामें पृथिव्यादिभूतोंके बाहर और बद्धावस्थामें भीतर रहता है स्वयं आप अचर है और देहसंयोगसे चरहोता है सूक्ष्म है इससे जानने योग्य नहीं है वह अज्ञानिनको दूररहै और ज्ञानिनको समीप है ॥ १५ ॥

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ॥
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥ १६ ॥

वह पृथिव्यादि भूतविकार देवादि शरीरोंमें एकरसं रहता है और अज्ञानिनको देवादिशरीरोंमें देवादिशरीरोंके सदृश दीखता है कि, यह देव यह मनुष्य पशु इत्यादिक विभक्तसरीखा स्थित दीखता है और सर्वभूतोंका पोषक है और अन्नादिक भूतोंका भक्षक है देहरूपसे आहारकरनेवाला है और उसी अन्नादिविकारसे उत्पत्तिकर्ताभी है ऐसे जाननेयोग्य है ॥ १६ ॥

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ॥
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य धिष्ठितम् ॥ १७॥

वह सूर्यादिक ज्योतिनको भी प्रकाशक है सूक्ष्मकारणरूप प्रकृ-

तिसे पर यानें न्यारा कहाता है ज्ञानरूप जाननेयोग्य ज्ञानसे प्राप्त-होने योग्य सर्वके हृदयमें रहता है याने सर्व देव, मनुष्य, पशु, पक्ष्यादि शरीरोंके हृदयमें रहता है ॥ १७ ॥

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ॥
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥ १८ ॥

ऐसे "महाभूतान्यहंकारः" यहांसे लेके, "संघातश्चेतनाधृतिः" यहां-पर्यंत क्षेत्र कहा तथा "अमानित्वं" यहांसे लेके "तत्वज्ञानार्थदर्शनं" यहांपर्यंत ज्ञान कहा और "अनादिमत्परं" यहांसे लेके "हृदि सर्वस्य धिष्ठितं" यहांपर्यंत ज्ञेय याने जाननेयोग्य आत्मस्वरूप कहा ऐसे यह संक्षेपसे कहा यतनेको जानिके मेरा भक्तहोके मेरेसरीखे स्वरूपको प्राप्तहोय ॥ १८ ॥

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ॥
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान् ॥ १९ ॥

प्रकृतिको और पुरुषको याने जीवको इन दोनोंको भी अनादि याने सनातन जानो जो बंधनकारक इच्छा द्वेष सुख दुःखादिक विकार उनको और मोक्षकारक अमानित्व अदंभित्व गुण उनको निश्चयपूर्वक प्रकृतिसंभव जानो अर्थात् इच्छादिविकारयुक्त प्रकृति पुरुषकी बंधनकारक और अमानित्वगुणयुक्त मोक्षदायक होती है ॥ १९ ॥

कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ॥
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥ २० ॥

अब एकसंग रहेभये प्रकृतिपुरुषोंके कार्यभेद कहते हैं जैसे कि, कार्य जो प्रकृतिपरिणाम देहकारण मनसहित इंद्रियां इनका व्यापार करानेमें कारण प्रकृति कही है सुखदुःखोंके भोक्तापनेमें कारण

पुरुष कहां है याने भोगसाधनकर्मकी आश्रय प्रकृतिपरिणाम और पुरुषयुक्त देह तथा सुखादिभोक्तृत्वआश्रय पुरुष है ॥ २० ॥

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुंक्ते प्रकृतिजान्गुणान् ॥
कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥ २१ ॥

जिसवास्ते कि, यह पुरुष प्रकृतिहीमें रहाभया प्रकृतिजन्य गुणोंको भोगताहै तिसीसे इसका ऊंचनीचयोनिनमें जन्मलेनेमें कारण प्रकृतिगुणोंका याने सत्वादिगुणोंका संगही है अर्थात् उन गुणनकी आसक्तिहीसे ऊंच नीच जन्म होते हैं ॥ २१ ॥

उपद्रष्टाऽनुमंता च भर्त्ता भोक्ता महेश्वरः ॥
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥ २२ ॥

इस देहमें यह पुरुष देखनेवाला है याने चौकसी करनेवाला है और अनुमोदन देनेवाला याने सलाह देनेवाला है और इस देहका पोषनेवाला है और भोगनेवाला है और इसका महेश्वर है जैसे कि, इस देहमें ईश्वर इंद्रिय मन इत्यादि हैं उनका भी ईश्वर है. ऐसे इस देहसे यह जीव न्याराभी है तौभी अज्ञानसे केवल यह देह ऐसा कहाताहै ॥ २२ ॥

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ॥
सर्वथा वर्त्तमानोपि न स भूयोऽभिजायते ॥ २३ ॥

जो ऐसे इस जीवको और गुणोंकरके सहित प्रकृतिको जानता है सो सर्व प्रकारसे संसारमें रहताहै तौभी फिर नहीं उत्पन्न होताहै ॥ २३ ॥

ध्यानेनात्मनि पश्यंति केचिदात्मानमात्मना ॥
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥ २४ ॥
अन्ये त्वेवमजानंतः श्रुत्वाऽन्येभ्य उपासते ॥

तेपि चातितरंत्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥ २५ ॥

कितनेक पुरुष आपके अंतःकरणमें बुद्धिसे विचारकरके इस जीवात्माको जानतेहैं और कितनेक सांख्य योगकरके जानतेहैं और कितनेक कर्मयोग करके याने ईश्वरार्पणकर्म करते करते जानतेहैं और कितनेक और ऐसे नहीं जानतेभये दूसरोंसे सुनिके उपासना करतेहैं याने सुनिके प्रथमसरीखे उपाय करके जानतेहैं और कितनेक केवल श्रद्धायुक्त श्रवणही करते रहते हैं तो वे भी संसारको तरतेहैं ॥ २४ ॥ २५ ॥

यावत्संजायते किंचित्सत्वं स्थावरजंगमम् ॥
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥ २६ ॥

हे भरतवंशिनमें श्रेष्ठ अर्जुन ! जितनो कुछ थावर और जंगम प्राणी उत्पन्न होता है उसको क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके संयोगसे याने शरीर और जीवके संयोगसे जानो ॥ २६ ॥

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठंतं परमेश्वरम् ॥
विनश्यत्स्वविनश्यंतं यः पश्यति स पश्यति ॥ २७ ॥

जो कोई सर्व भूतोंमें सम रहेभये केवल मन इंद्रियादिकोंके ईश्वर इस जीवको इन इंद्रियादिकोंके नाशहोतेभी इसको नाशरहित दीखताहै याने जानताहै सोई जानताहै ॥ २७ ॥

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ॥
नहिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥ २८ ॥

सर्व देवादिशरीरोंमें एकसरीखे रहेभये इस मन इंद्रियादिकोंके ईश्वर जीवात्माको सम देखताभयो जो कि, बुद्धिपूर्वक आपको नहीं हनताहै याने संसारमें नहीं गिराताहै उससे वह परम गतिको याने मुक्तिको पावताहै ॥ २८ ॥

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ॥
यः पश्यति तथात्मानमकर्त्तारं स पश्यति ॥ २९ ॥

जो सर्व कर्मोंको प्रकृतिहीकरके याने प्रकृतिविकार इंद्रियों-करके ही करेभये जानताहै और तैसेंही आपको अकर्त्ता जानताहै सो जानताहै ॥ २९ ॥

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ॥
तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ३० ॥

जब भूतोंका पृथग्भाव याने देवमनुष्यादिक शरीरोंकी छोटाई बड़ाई मोटाई पतराई इत्यादिक न्यारेन्यारे भावोंको एकस्थ याने एकप्रकृतिहीमें देखताहै और उसी प्रकृतिमें पुत्रादिरूप विस्तारको देखताहै तब शुद्धस्वरूपको प्राप्तहोताहै ॥ ३० ॥

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ॥
शरीरस्थोपि कौंतेय न करोति न लिप्यते ॥ ३१ ॥

हे कुंतीपुत्र ! यह जीवात्मा अनादिपनेसे अविनाशी है केवल शरीरमें रहाभया भी निर्गुणपनेसे न कुछ कर्मनको करताहै न उन कर्मफलोंकरके लिप्त होताहै ॥ ३१ ॥

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ॥
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥ ३२ ॥

जैसे सर्वत्र प्राप्त भयाहुआ आकाश सूक्ष्मतासे उन भूतोंके गुणोंकरके लिप्त नहीं होता है तैसें सर्वदेवादिशरीरोंमें रहाभया जीवात्मा देहगुणोंकरके नहीं लिप्तहोताहै ॥ ३२ ॥

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ॥
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥ ३३ ॥

हे भारत ! जैसे एक सूर्य इस सर्व लोकको प्रकाशताहै तैसे यह जीव सर्व शरीरको प्रकाशताहै ॥ ३३ ॥

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमंतरं ज्ञानचक्षुषा ॥
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यांति ते परम् ॥ ३४ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे प्रकृतिपुरुषविवेकयोगो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

जोकोई ज्ञानदृष्टिकरके क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका ऐसे अंतरको और भूतप्रकृतिके मोक्षको जानतेहैं वे मेरेको प्राप्तहोतेहैं ॥ ३४ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीमद्भगवद्गीतामृततरंगिण्यांत्रयोदशाध्यायप्रवाहः॥ १३ ॥

---

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ॥
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥ १ ॥

श्रीकृष्णभगवान् अर्जुनसे कहतेहैं कि, सर्वज्ञानोंमें उत्तम प्रसिद्ध भयाहुआ ज्ञान फिर कहताहौं जिसको जानिके सर्व मुनिजन यहांसे श्रेष्ठ सिद्धिको याने परमपदको जातेभये ॥ १ ॥

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ॥
सर्गेऽपि नोपजायंते प्रलये न व्यथंति च ॥ २ ॥

जो कहताहौं इस ज्ञानको प्राप्तहोके मेरी सधर्मताको याने मेरे समानरूप वैभवको वे मुनिजन प्राप्तहोतेभये वे उत्पत्तिकालमें न उत्पन्न होतेहैं और प्रलयमें न दुःखी होते हैं ॥ २ ॥

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम् ॥
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥ ३ ॥

हे भारत ! मम महद्ब्रह्म यानी मेरी प्रकृति सर्वभूतोंका योनि याने उत्पत्तिस्थान है मैं उस प्रकृतिमें जीवरूप गर्भको धारण करता हौं तब उससे सर्वभूतोंकी उत्पत्ति होतीहै ॥ ३ ॥

**सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्त्तयः संभवंति याः ॥**
**तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥ ४ ॥**

हे कुंतीपुत्र ! देवमनुष्यादि सर्व योनिनमें जो देहें उत्पन्नहोतेहैं उन सबकी महत् ब्रह्म याने प्रकृति कारण है मैं चेतनरूप बीजका देनेवाला पिता हौं ॥ ४ ॥

**सत्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः ॥**
**निबध्नंति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥ ५ ॥**

हे महाबाहो ! सत्वगुण रजोगुण और तमोगुण ये प्रकृतिसे उत्पन्न गुण इस देहमें अविनाशी जीवको बंधनकरतेहैं ॥ ५ ॥

**तत्र सत्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ॥**
**सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चाऽनघ ॥ ६ ॥**

हे निष्पाप ! उनगुणोंमें सत्वगुण निर्मलतासे प्रकाशक याने शुभाशुभकर्मोंका दिखानेवाला रोगरहित है इसीसे यह सुखकी आसक्तिसे और ज्ञानके संग करके बांधताहै याने ज्ञानसुखसे शुभकर्म शुभकर्मसे स्वर्गादि फिर उत्तमकुलमें जन्म फिर ज्ञानसुख ऐसे बांधताहै ॥ ६ ॥

**रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासंगसमुद्भवम् ॥**
**तन्निबध्नाति कौंतेय कर्मसंगेन देहिनम् ॥ ७ ॥**

हे कुंतीपुत्र ! तृष्णा और स्त्री धनादिनमें आसक्तिका करनेवाला रजोगुण विषयादिकमें प्रीति उपजानेवाला जानो वह जीवको कर्म

संगसे बांधताहै जैसे प्रीत्यात्मक कर्मसे उन कर्मसंगिनमें जन्म फिर कर्म फिर जन्म ऐसे ॥ ७ ॥

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ॥
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥ ८ ॥

हे भारत ! सर्वदेहधारी जीवोंको मोहनेवालो तमोगुण अज्ञानका कारण जानो और वह प्रमाद आलस और निद्राकरके बंधन करताहै ॥ ८ ॥

सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत ॥
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत ॥ ९ ॥

हे भारत ! सत्वगुण मनुष्यको सुखमें लगाताहै रजोगुण कर्ममें तमोगुण ज्ञानको ढकिके फिर प्रमादमें लगाताहै ॥ ९ ॥

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत ॥
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ॥ १० ॥

हे भारत ! यद्यपि ये गुण प्रकृतिके हैं तोभी विपरीतताका कारण यह कि, रजोगुण और तमोगुणको जीतिके सत्वगुण प्रबल होताहै और रजोगुण सत्वगुणको जीतिके तमोगुण प्रबल होताहै तैसेही तमोगुण सत्वगुणको जीतिके रजोगुण प्रबल होताहै यहां कारण प्राचीन कर्म और नित्य आहारादिक हैं ॥ १० ॥

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन् प्रकाश उपजायते ॥
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ॥ ११ ॥
लोभः प्रवृत्तिरारंभः कर्मणामशमः स्पृहा ॥
रजस्येतानि जायंते विवृद्धे भरतर्षभ ॥ १२ ॥

हे भरतवंशिनमेंश्रेष्ठ ! इस देहमें जब सर्वनेत्रादिद्वारोंमें प्रकाश याने वस्तुका यथार्थ निश्चय सोई ज्ञान उत्पन्नहोय तब सत्वगुण बढाहै ऐसा जानना और रजोगुणके बढनेसे लोभ जो धनादिक खनारचेवि-

और मिलनेकी इच्छा प्रवृत्ति याने प्रयोजनविना चंचलता कर्मनेका आरंभ इंद्रियलोलुपता विषयइच्छा इतने उत्पन्न होतेहैं ॥ ११ ॥ १२ ॥

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ॥
तमस्येतानि जायंते विवृद्धे कुरुनंदन ॥ १३ ॥

हे कुरुनंदन ! तमोगुणके बढनेसे विवेककी हानि निरुद्यमता और न करनेका करना और विपरीतज्ञान इतने ये होतेहैं ॥ १३ ॥

यदा सत्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् ॥
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते ॥ १४ ॥

जब सत्वगुणके बढनेके समयमें देहधारी प्रलय याने मृत्युको प्राप्त होय तब आत्मज्ञानिनके शुद्ध लोकोंको प्राप्तहोताहै अर्थात् आत्मज्ञानिनके कुलमें आत्मज्ञान जाननेयोग्य शरीरोंको प्राप्तहोताहै " लोकस्तुभुवनेजने" इसप्रमाणसे यहाँ लोकशब्द जनवाचीहै ॥ १४ ॥

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसंगिषु जायते ॥
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥ १५ ॥

रजोगुणकी बृद्धिमें मृत्युको प्राप्त होके कर्मसंगिनमें जन्म लेता है याने उनमें जन्म लेके सकामकर्म करके स्वर्ग जाताहै फिर उनहीमें जन्म लेके फिर कर्म करके स्वर्ग ऐसेही फिरता रहताहै तथा तमोगुणमें मराभया नीचयोनिमें जन्मताहै वहाँभी वैसाही क्रम जानना ॥ १५ ॥

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्विकं निर्मलं फलम् ॥
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥ १६ ॥

सुकृत कर्मका फल सात्विक निर्मल कहते हैं याने उसके करते करते कोई जन्ममें मुक्तहोताहै और रजोगुणी कर्मका फल दुःख याने उस सकामसे स्वर्ग स्वर्गसे मृत्युलोक फिर स्वर्ग ऐसे संसारदुःख ही है

तमोगुणीकर्मका फल अज्ञान है याने उससे नरक ही है ॥ १६ ॥

सत्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ॥
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥ १७ ॥

सात्विककर्मसे ज्ञान होताहै और राजससे लोभही होताहै तामससे अज्ञान और मोह होतेहैं और अज्ञान भी होताहै ॥ १७ ॥

ऊर्ध्वं गच्छंति सत्वस्था मध्ये तिष्ठंति राजसाः ॥
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छंति तामसाः ॥ १८ ॥

सात्विककर्म करनेवाले मुक्तिको पातेहैं राजसकर्मवाले मध्यमें (स्वर्ग मृत्यु लोकहीमें) रहतेहैं जैसे पुण्यसे स्वर्ग पुण्य क्षीण होनेसे मनुष्यलोक फिर पुण्यसे स्वर्ग ऐसे वारंवार मध्यहीमें रहतेहैं तमोगुणी नीचगुणकी वृत्तिमें वर्त्तनेवाले तामसी नीचजाति पशुकीटादिकमें जन्मते रहतेहैं ॥ १८ ॥

नान्यं गुणेभ्यः कर्त्तारं यदा द्रष्टाऽनुपश्यति ॥
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥ १९ ॥

जब विवेकी पुरुष सत्वादिगुणोंके विना और किसीको कर्त्ता नहीं जानता है और आपको गुणोंसे न्यारा जानता है तब सो मेरी साम्यताको प्राप्तहोताहै ॥ १९ ॥

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान् ॥
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥ २० ॥

यह देहधारी जीव देहमें उत्पन्नभये इन सत्वादि तीनि गुणोंको उल्लंघन करके जन्म मृत्यु और जरापनके दुःखोंकरके छुटाभया मोक्षको पाताहै गुणयुक्त नहीं ॥ २० ॥

अर्जुन उवाच।

कैर्लिंगैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ॥

किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्त्तते ॥ २१ ॥

ऐसे सुनिके अर्जुन पूंछते हैं कि, हे प्रभो ! कौनसे चिह्नोंकरके इन तीन गुणोंको उल्लंघनकियाभया होताहै वह कैसे आचरणवाला होताहै और इन तीनों गुणोंको कैसे उल्लंघन करै ॥ २१ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पांडव ॥
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति ॥ २२ ॥
उदासीनवदासीनो यो गुणैर्न विचाल्यते ॥
गुणा वर्त्तत इत्येवं योऽवतिष्ठति नेंगते ॥ २३ ॥
समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकांचनः ॥
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिंदात्मसंस्तुतिः॥२४॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ॥
सर्वारंभपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥ २५ ॥

अर्जुनका प्रश्न सुनिके भगवान् कहते हैं कि, हे पांडुपुत्र ! जो पुरुष प्रकाश याने आरोग्यादिक सत्वगुणके कार्य और प्रवृत्ति याने रजोगुणके कार्य और मोह याने तमोगुणके कार्य ये जो प्रवृत्तहोयँ तो इनको नहीं त्यागचाहता है और निवर्त्तभये इनको न चाहता है उदासीनसरीखा स्थित भयाहुआ गुणोंकरके नहीं चलायमान होता है आप आपके कार्योंमें गुण ही वर्त्तमान हैं ऐसे जो स्थिर है चलायमान नहीं होताहै सुखदुःखमें सम स्वस्थ ठीकरी कंकर पत्थर और सोना जिसके सम हैं तुल्य हैं प्रिय अप्रिय जिसके धीर इसीसे आपकी निंदा स्तुति समान जानताहै मान और अप-

आनें तुल्य मित्रशत्रुपक्षमें तुल्य मेरे सेवनादिकविना सर्व आरंभोंकों त्यागी सो गुणातीत कहाताहै ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ॥
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ २६ ॥
ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाऽहममृतस्याव्ययस्य च ॥
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकांतिकस्य च ॥ २७॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे गुणत्रयविभागयोगो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

जिसवास्ते कि मरणधर्मरहित और इसीसे अविनाशी जो ब्रह्म याने मुक्तजीव उसका और सनातन धर्म जो भक्तियोग उसका और मुख्य सुख जो स्वस्वरूपकी प्राप्ति उसका मैं आधारहूं इसीसे जो अखंडित भक्तियोगकरके मेरेको भजताहै सो इन गुणोंको उल्लंघन करके मेरी समताको प्राप्त होताहै ॥ २६ ॥ २७ ॥

इति श्रीमत्सुकुलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीमद्भगवद्गीतामृततरंगिण्यांचतुर्दशाध्यायप्रवाहः ॥१४॥

---

श्रीभगवानुवाच ।

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ॥
छंदांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥ १ ॥

तेरहवें अध्यायमें क्षेत्ररूप प्रकृति और क्षेत्रज्ञ पुरुष याने जीव इनका स्वरूप कहा, शुद्धजीवात्माके भी प्रकृतिसंबंधी गुणोंके प्रवाहनिमित्त देवादिक आकारसे परिणामको प्राप्तभई जो प्रकृति उसका संबंध अनादि कहा, चौदहवें अध्यायमें कहा कि, इस जीवको जो कार्य और

कारण अवस्थानमें यह गुणसंगप्रवाह मूलप्रकृतिसंबंध सो भगवान्‌हीने किया है ऐसे कहिके विस्तारसहित गुणसंगप्रकारको कहिके कहा कि, गुणसंगनिवृत्तिपूर्वक स्वस्वरूपकी प्राप्ति भगवद्भक्तिमूल ही है. अब पंद्रहवें अध्यायमें जो भजने योग्य भगवान् आपके कल्याण-गुणादिकोंकरके बद्ध मुक्त दोनों प्रकारके जीवोंसे विलक्षण ( न्यारे ) उनका पुरुषोत्तमत्व कहनेको जो यह बंधन आकारसे विस्तारित प्रकृतिका परिणाम विशेषसंसार उसको पीपरवृक्षरूप कल्पित करके श्रीकृष्ण भगवान् बोलतेभये कि, जिसके वेद पत्ते अर्थात् जैसे पत्तोंकरके वृक्ष बढताहै तैसे यह संसाररूप वृक्ष वेदोक्तकर्म करके बढताहै इससे वेद पत्तारूप हैं ऊर्ध्वमूल याने सत्यलोकमें ब्रह्मा जिसका मूल है अधःशाख याने सत्यलोकसे नीचे जो देव मनुष्य कीट पतंगपर्यंत शरीर ये उसकी शाखा हैं ऐसा अव्यय याने सम्यक् ज्ञानप्राप्ति होनेसे प्रथम अज्ञानदशामें प्रवाहरूप करके छेदनेके अयोग्य इसीसे अज्ञानिनके अविनाशी हैं ऐसा इस संसारको अश्वत्थ याने पीपरवृक्षरूप श्रुति कहती हैं तिसको जो[10] जानताहै[11] सो[12] वेदका जाननेवाला है अर्थात् वेद इस संसारके छेदनेका उपाय कहताहै तो जो इसको जानेगा तो छेदनेका भी उपाय जानेगा इससे वह वेदजाननेवाला है ॥ १ ॥

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ॥ अधश्च मूलान्यनुसंततानि कर्मानुबंधीनि मनुष्यलोके ॥ २ ॥

अब उस संसारवृक्षकी और भी विलक्षणता कहते हैं जैसे कि, सत्त्वादिगुणोंकरके बढीभई और शब्दादिक विषय जिनके प्रवाले याने

कोंपल याने जो नये एक दिनके निकसेभये पत्ते वैसे पत्ते जिनके विषय हैं ऐसी उस वृक्षकी शाखायें नीचे मनुष्यलोकमें और ऊपर देव गंधर्वादिलोकोंमें फैलरही हैं अर्थात् नीचकर्मसे नीचे मनुष्योंसे भी नीच पश्वादिशरीर ऊपर उत्तमकर्मसे उत्तम देवादिशरीररूप शाखें फैलरही हैं नीचे मनुष्यलोकमें भी उसकी कर्मानुसारी मूलें फैली-रही हैं अर्थात् मनुष्यलोकमें जो ऊंच नीच कर्म वही मूलरूप हैं ऊंच नीच पदवी कर्मविना नहीं कर्म मनुष्यशरीरविना नहीं होताहै ॥ २ ॥

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नांतो न चादिर्न
च संप्रतिष्ठा ॥ अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसं-
गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ॥३॥ ततः पदं तत्परिमा-
र्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्त्तंति भूयः ॥ तमेव
चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥४॥

इस संसारवृक्षका इस लोकमें जैसा कहा है तैसा रूप अज्ञानीजनों करके नहीं जाननेमें आताहै न उसका अंत और न आदि और न स्थिति जाननेमें आतीहै ऐसे दृढमूल इस पीपरवृक्षको अतिदृढ वैराग्यरूप शस्त्रसे छेदन करके फिर जिससे यह प्राचीन प्रवृत्ति याने गुणमय भोगरूप संसारप्रवाह विस्तरितहै उसी आदि पुरुषके शरणागत होके उस पदको ढूंढना कि, जिसमें गयेभये मुनिजन फिर इस संसारमें नहीं आतेहैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

निर्मानमोहा जितसंगदोषा अध्यात्मनित्या
विनिवृत्तकामाः ॥ द्वंद्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्ग-
च्छंत्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥ ५ ॥

जो मानमोहकरके रहित हैं और जिनने संगदोषोंको जीताहै और जो अध्यात्मशास्त्रहीमें नित्य वर्तमान हैं और जिनकी कामना निवृत्त

है जो सुखदुःखसंज्ञक द्वंद्वोंसे छुटेभये हैं वही ज्ञानीजन उस अविनाशी पदको प्राप्त होतेहैं याने स्वस्वरूपको प्राप्त होतेहैं ॥ ५ ॥

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः ॥
यद्गत्वा न निवर्त्तंते तद्धाम परमं मम ॥ ६ ॥

सूर्य उस आत्माको नहीं प्रकाशिसकताहै न चन्द्रमा और न अग्नि प्रकाशिसकताहै जिसरूपको याने शुद्धआत्मस्वरूपको प्राप्त होके नहीं संसारमें आतेहैं वह मेरा परम धाम है याने मेरे रहनेका मुख्य स्थान मेरा शरीर है इस जगह "यस्यात्मा शरीरं" यह श्रुति भी प्रमाण है ॥ ६ ॥

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ॥
मनःषष्ठानींद्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥ ७ ॥

जो यह ऐसा वर्णन किया सो यह मेराही सनातन अंश है याने जैसे प्रकृति और अनंत जीव मेरेही हैं उनमें यह एक मेराही है मेरी ही विभूति है सो यह इस जीवलोकमें जीवभूत याने अति संकुचितज्ञान-भयाहुआ पांच ज्ञानेंद्रिय और एक मन ऐसे मनसहित छः प्रकृतिवि-कार इस देहमें रहीभयीं इंद्रियोंको खैंचता फिरताहै ॥ ७ ॥

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ॥
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गंधानिवाशयात् ॥ ८ ॥

जब यह जीव शरीरको प्राप्तहोताहै और जब वर्त्तमान शरीरसे जाताहै तब यह मन इंद्रियोंका ईश्वर आपकी सेनारूप इन इंद्रियों-को, पवन पुष्पादिक गंधस्थानसे गंधोंको जैसे तैसे ग्रहणकरके जाताहै ॥ ८ ॥

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ॥

अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥ ९ ॥

यह जीवात्मा श्रोत्रइंद्रिय याने कान नेत्र और स्पर्शन जो त्वचा-इंद्रिय रसना जो जिह्वा और घ्राण जो नासिका और मन इनको आश्रयकरके विषयोंको सेवता है ॥ ९ ॥

उत्क्रामंतं स्थितं वापि भुंजानं वा गुणान्वितम् ॥
विमूढा नानुपश्यंति पश्यंति ज्ञानचक्षुषः ॥ १० ॥

यह जो गुणोंकरके युक्त आत्मा तिसको देहत्यागतेको अथवा देहमें रहते भयेको अथवा विषयभोगतेभयेको भी अज्ञानीजन नहीं देखतेहैं जिनके ज्ञानदृष्टि है वे देखतेहैं ॥ १० ॥

यतंतो योगिनश्चैनं पश्यंत्यात्मन्यवस्थितम् ॥
यतंतोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यंत्यचेतसः ॥ ११ ॥

योगीजन जतन करते करते आपके अंतःकरणमें रहेभये इस आत्माको देखतेहैं और जो विषयासक्त हैं वे जो शास्त्रद्वारा उपाय करें तोभी वे अज्ञानी इस आत्माको न देखिसकें ॥ ११ ॥

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ॥
यच्चंद्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥ १२ ॥

जो सूर्यमें रहाभया तेज सर्व जगत्को प्रकाशिरहा है और जो तेज चंद्रमामें और जो अग्निमें है उस तेजको मेराही तेज जानो ॥ १२ ॥

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ॥
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ॥ १३ ॥

मैं पृथिवीमें प्रविष्टहोके अपने अचिंत्य सामर्थ्यकरके सर्वभूतोंको धारण करताहूं और अमृतमय चंद्र होके सर्व औषधिनको पोखताहूं ॥ १३ ॥

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ॥
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥ १४ ॥

मैं जठराग्नि होके सर्वप्राणिनके देहमें रहाभया प्राण और अपान-संयुक्त भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, पेय ऐसे चारप्रकारके अन्नको पचाताहूं १४

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञान-
मपोहनं च ॥ वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदांत-
कृद्वेदविदेव चाहम् ॥ १५ ॥

मैं सर्वके हृदयमें प्रविष्टहूं और सर्वके स्मृति ज्ञान और विचार मेरेसे होतेहैं और सर्व वेदोंकरके मैं ही जानने योग्यहूं और वेदांतका कर्ता और वेदका जाननेवाला मैं ही हूं ॥ १५ ॥

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ॥
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ १६ ॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ॥
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ १७ ॥

इस लोकमें क्षर और अक्षर ऐसे ये दोप्रकारके पुरुष हैं तिनमें सर्व शरीरधारी भूतप्राणी क्षर और मुक्तजीव अक्षर कहाताहै इन दोनोंसे उत्तम पुरुष और है जो परमात्मा ऐसे कहाताहै जो अविनाशी ईश्वर त्रिलोकीमें प्रवेशकरके सर्व त्रिलोकीका भरण पोषण करता है ॥ १६ ॥ १७ ॥

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ॥
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥

जिसवास्ते कि, मैं बद्धावस्थ जीवसे श्रेष्ठ और मुक्तसेभी उत्तम हूं इससे स्मृति और वेदमेंभी पुरुषोत्तम प्रसिद्धहूं ॥ १८ ॥

यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ॥
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥ १९ ॥

हे भारत ! जो सम्यक् ज्ञानीपुरुष ऐसे मेरेको पुरुषोत्तम जांनता है सो सर्वज्ञ है इसीसे वह सर्वभाव याने माता पिता सुहृद् धनादिक मेरेको जांनिके मेरेहीको भजताहै ॥ १९ ॥

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयाऽनघ ॥
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥ २० ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुराणपुरुषोत्तमयोगो नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

हे निष्पाप ! ऐसे यह अतिगोप्य शास्त्र मैंने कहा हे भारत । इसको जांनिके बुद्धिमान् और कृतकृत्य होताहै ॥ २० ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीमद्भगवद्गीताऽमृततरंगिण्यां पंचदशाध्यायप्रवाहः ॥१५॥

---

ऐसे तेरवहें अध्यायसे पंद्रहके समाप्तिपर्यंत क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका विवेक और गुणत्रयका विभाग और क्षराक्षर याने बद्ध मुक्त जीवोंका स्वरूप तथा परमात्माका पुरुषोत्तमत्व और सामर्थ्य कहते भये अब सोरहें अध्यायमें जीवकी शास्त्रवश्यता और दैवासुरसंपत्तिविभाग कहेंगे॥

श्रीभगवानुवाच ।

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ॥
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥ १ ॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शांतिरपैशुनम् ॥
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥ २ ॥

तेजः क्षमा धृतिःशौचमद्रोहो नातिमानिता ॥
भवंति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥ ३ ॥

श्रीकृष्ण भगवान् अर्जुनसे कहतेहैं कि, हे भारत ! दैवी संपदाको प्राप्त भये मनुष्यको निर्भय रहना अंतःकरणकी शुद्धि प्रकृतिसे भिन्न आत्मा है ऐसी निष्ठा सुपात्रको कुछ देना और मनको विषयोंसे निवृत्त करना और निष्कामतासे भगवान्के पूजनरूप पंचमहायज्ञोंका करना वेदमंत्रादिकोंको जप एकादशीव्रतादिरूप तप सर्वसे सरल रहना जीवमात्रको पीडा न देना हित और यथार्थ भाषण क्रोधका न करना उदारता शांति याने इंद्रियोंको वशकरना चुगली न करना भूतप्राणिमात्रपरे दया परस्त्रीधनादिपर इच्छा न करना अक्रूरता लज्जा व्यर्थकामका न करना तेज क्षमा याने सहनशीलता धीरज पवित्रता द्रोहको न करना मानप्राप्तिके वास्ते अतिमानका न करना ये २६ गुण दैवीसंपदाके होतेहैं ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

दंभो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ॥
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम् ॥ ४ ॥

हे पृथापुत्र ! आसुरी संपदाको प्राप्तभये मनुष्यके दंभ, दर्प और अभिमान क्रोध और कटुभाषण और अज्ञान ये लक्षण होतेहैं ॥ ४ ॥

दैवीसंपद्विमोक्षाय निबंधायासुरी मता ॥
मा शुचः संपदं दैवीमभिजातोसि पांडव ॥ ५ ॥

हे पांडुपुत्र ! दैवीसंपदा मोक्षके वास्ते है आसुरी बंधनके वास्ते निश्चय कीगई है तुम दैवीसंपदाको प्राप्तभयेहो मति शोचो ॥ ५ ॥

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुरएव च ॥
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ॥ ६ ॥

हे पार्थ! इस लोकमें दो प्रकारके प्राणीहैं एक दैव और दूसरे आसुर दैव विस्तारसे कहा और मुझसे आसुरको सुनो ॥ ६ ॥

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः ॥
न शौचं नाऽपि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥ ७ ॥

असुरस्वभाववाले मनुष्य संसारसाधन और मोक्षसाधनभी नहीं जानतेहैं उनमें न शुचिता और न शास्त्रीय आचरण न सत्यभी रहताहै ॥ ७ ॥

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ॥
अपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥ ८ ॥

वे असुरप्रकृति मनुष्य इस जगत्को कोई तो असत्य याने मिथ्या और भ्रम कहतेहैं कोई अप्रतिष्ठ याने इसका कोई आधार नहीं ऐसा कहतेहैं कोई अनीश्वर कहतेहैं स्त्रीपुरुषके परस्परसंयोगसे भये विना और जगत् क्या है केवल कामहीके निमित्तसे याने स्त्रीपुरुषके संयोग-हीसे होताहै ऐसा कहतेहैं ॥ ८ ॥

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ॥
प्रभवंत्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥ ९ ॥

वे अज्ञानी जन खानपानादिके अल्पपदार्थमें बुद्धिवाले ऐसी समुझ-को ग्रहणकरके उग्रकर्मकरनेवाले याने परस्त्री धन पुत्रादिकोंके हरण करनेवाले सबके अहित जगत्के नाशके वास्ते प्रवृत्त होते हैं ॥ ९ ॥

काममाश्रित्य दुःपूरं दंभमानमदान्विताः ॥
मोहाद्गृहीत्वाऽसद्ग्राहान्प्रवर्त्ततेऽशुचिव्रताः ॥ १० ॥

जो दुःखसे भी न पूरी होय ऐसी कामनाको आश्रितहोके दंभ मान और मदयुक्त भयेहुये मोहसे असद्ग्राहोंको ग्रहणकरके याने

मारण मोहन वशीकरणके उपाय करना ऐसे भ्रष्टआचारनको स्वीकार करके अपवित्रव्रत भूतादि सेवनेवाले भयेहुए उनही कामों में प्रवृत्त होतेहैं ॥ १० ॥

चिंतामपरिमेयां च प्रलयांतामुपाश्रिताः ॥
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥ ११ ॥

अपार और मरणांत चिंतोंको प्राप्तभये हुये कामोपभोगमें तत्पर इतनाँही सुखहै ऐसे निश्चयकियेभये ॥ ११ ॥

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ॥
ईहंते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान् ॥ १२ ॥

सैकडों आशाकी फाँसिनकरके बँधेभये काम और कोपके स्वाधीन भये कामभोगके वास्ते अन्यायकरके द्रव्यसंचयको उपायकरते रहतेहैं ॥ १२ ॥

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ॥
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥ १३ ॥

मैंने आज यह पाया इस मनोरथको पावूंगा मेरे यह धन है फिर यहभी होयगा ॥ १३ ॥

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ॥
ईश्वरोहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ॥ १४ ॥

मैंने यह वैरी मारा और औरनकोभी मारूंगा मैं ईश्वरहूं मैं भोगीहूं मैं सिद्धहूं मैं बलवानहूं मैं सुखीहूं ॥ १४ ॥

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ॥
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ॥ १५ ॥

मैं योग्यहूं उत्तम कुलमें जन्मोहूं मेरे समान और कौन है यज्ञ करूंगा दान देऊंगा आनंद करूंगा ऐसे अज्ञानमें मोहरहतेहैं॥१५॥

अनेकचित्तविभ्रांता मोहजालसमावृताः॥
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतंति नरकेऽशुचौ॥ १६॥

अनेकजगह चित्त लगनेसे भ्रमितहुए मोहके जालमें फँसेभये कामभोगमें आसक्त वे अपवित्र नरकमें पड़तेहैं॥ १६॥

आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः॥
यजंते नामयज्ञैस्ते दंभेनाऽविधिपूर्वकम्॥ १७॥

जो आपको आपही श्रेष्ठ मानिरहेहैं और अनम्र हैं धन मान मदयुक्त हैं वे दंभसे अविधिपूर्वक नाममात्र यज्ञोंकरके यजन करतेहैं॥१७॥

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः॥
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषंतोऽभ्यसूयकाः॥ १८॥

अहंकार बल हर्ष काम और क्रोधका आश्रयकर रहेहैं ऐसे वे आपके और औरोंके देहोंमें रहेभये मेरेसे द्वेष करतेभये मेरी निंदा करतेहैं॥ १८॥

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्॥
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥ १९॥

मैं उन द्वेषकरनेवाले क्रूर अशुभ नराधमोंको संसारमें आसुरीही योनिनमें वारंवार पटकताहूं॥ १९॥

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि॥
मामप्राप्यैव कौंतेय ततो यांत्यधमां गतिम्॥ २०॥

हे कुंतीपुत्र! वे मूर्ख जन्मजन्ममें आसुरी योनिको प्राप्तभयेहुये मेरेको न प्राप्तहोके फिर अधम गतिको प्राप्तहोतेहैं॥ २०॥

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः॥

कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥२१॥

कामना, क्रोध तथा लोभ यह तीन प्रकारका नरकका द्वार आपका नाशनेवालाहै याने संसारमें भ्रमानेवालाहै इससे इन तीनोंको त्यागना ॥ २१ ॥

एतैर्विमुक्तः कौंतेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ॥
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥ २२॥

हे कुंतीपुत्र ! इन तीनों नरकद्वारोंकरके छुटाभया मनुष्य आपके कल्याणका साधन करताहै उससे परम पदको प्राप्तहोताहै ॥ २२ ॥

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्त्तते कामकारतः ॥
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परांगतिम् ॥ २३ ॥

जो शास्त्रविधिको त्यागि के स्वइच्छाप्रमाण चलताहै सो न सिद्धिको पावताहै न सुखको न मोक्षको पावताहै ॥ २३ ॥

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ॥
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्त्तुमिहार्हसि ॥ २४ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे देवासुरसंपद्वि-
भागयोगो नामषोडशोऽध्यायः॥ १६॥

इससे तुमको कार्याकार्यव्यवस्थामें शास्त्रहीप्रमाणहै यह जानिके इस लोकमें शास्त्रविधानोक्त कर्म करनेको योग्यहो ॥ २४ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचि-
तायां श्रीमद्गीतामृततरंगिण्यां षोडशाध्यायप्रवाहः ॥१६॥

---

अर्जुन उवाच ।

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजंते श्रद्धयान्विताः ॥

तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ॥ १ ॥

सोरहवें अध्यायमें ईश्वरतत्त्वका ज्ञान और ईश्वरप्राप्तिका उपाय इनके कारण मूल वेदही हैं ऐसे कहा और अंतमें कहा कि, शास्त्रविधिहीन कर्म करनेवालेको सुखादिक नहीं सो सुनिके अर्जुन बोले कि, हे कृष्ण ! जो शास्त्रविधिको त्यागिके श्रद्धाकरके युक्त यजन करतेहैं उनकी क्या निष्ठाहै सत्त्वगुण है किंवा रजोगुण है या तमोगुण है ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

त्रिविधा भवंति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा ॥
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु ॥ २ ॥

अर्जुनका प्रश्न सुनिके श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि, सात्त्विकी और राजसी और तामसी ऐसे तीनप्रकारकी निश्चय श्रद्धा होतीहै सो देहधारिनकी स्वभावहीसे होतीहै उसको सुनो ॥ २ ॥

सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवंति भारत ॥
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ ३ ॥

हे भारत ! सबकी श्रद्धा अंतःकरणके अनुरूप होतीहै यह पुरुष श्रद्धामयहै जो जिसश्रद्धावाला होताहै सो वही होताहै जैसे सात्विकी श्रद्धावाला सात्विक इत्यादि ॥ ३ ॥

यजंते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः ॥
प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजंते तामसा जनाः ॥ ४ ॥

सात्त्विक पुरुष देवतानको पूजतेहैं राजसी यक्षराक्षसोंको और और तामसी जन प्रेत भूतगणोंको पूजतेहैं ॥ ४ ॥

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यंते ये तपो जनाः ॥

दंभाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥ ५ ॥
कर्शयंतः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ॥
मां चैवांतःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ॥ ६ ॥

दंभ और अहंकारसंयुक्त कामना और विषयानुराग इनहीकी सेनायुक्त जे मनुष्य वे अशास्त्रविहित याने जो शास्त्रप्रसिद्ध नहीं ऐसे घोर तपको तपतेहैं वे अज्ञानी जन शरीरमें रहेभये भूतसमूहको और अंदर शरीरमें स्थित मेरेको भी दुःख देतेहैं उनको आसुरनिश्चय याने असुरपनेमें निश्चय जिनका ऐसे उनको जानो ॥ ५ ॥ ६ ॥

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ॥
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ॥ ७ ॥

आहार भी सर्वका तीनप्रकारका प्रिय होताहै और यज्ञ तथा तप दान येभी तीनि प्रकारके हैं तिनका भेद यह सुनो ॥ ७ ॥

आयुःसत्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्द्धनाः ॥ रस्याः
स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्विकप्रियाः ॥ ८ ॥

जो आहार आयुष्य होशियारी बल आरोग्य सुख और प्रीतिके वढानेवाले होयँ मधुरादिरसयुक्त स्निग्ध स्थिर याने बहुतकाल रहनेवाले हृदयका वर्द्धक ऐसे आहार सात्विक जनोंको प्रिय होतेहैं ॥ ८ ॥

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ॥
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥ ९ ॥

अतिकटु जैसे बहुत मिर्चवाला पदार्थ अतिखट्टा अतिलोनवाला वडावगैरे अति गरमागरम अतितीक्ष्ण राईवगैरह मिश्रित अति रूखे और दाहकारक राजसिनेके प्रिय आहार दुःख शोक और रोगोंके देनेवाले होतेहैं ॥ ९ ॥

यातयाम गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ॥
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥ १० ॥

जिसे भातवगैरेको एक पहर बिता होय वह ठंढा पदार्थ रसविहीन दुर्गंधवाला और बासी और उच्छिष्ट भी ऐसा अपवित्र भोजन तामसिनंको प्रिय होताहै ॥ १० ॥

अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ॥
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्विकः ॥ ११ ॥

यज्ञकरनाही योग्यहै ऐसे मनको समाधानकरके फल-इच्छारहित मनुष्योंने विधिपूर्वक जो यज्ञ कियाहोय सो यज्ञ सात्विक ११

अभिसंधाय तु फलं दंभार्थमपि चैव यत् ॥
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥ १२ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! जो फलकी इच्छाकरके और दंभके वास्तेभी यज्ञ करे उस यज्ञको राजस जानो ॥ १२ ॥

विधिहीनमसृष्टान्नं मंत्रहीनमदक्षिणम् ॥
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥ १३ ॥

जो यज्ञ विधिहीन उचित अन्नहीन मंत्रहीन दक्षिणारहित और श्रद्धारहित यज्ञ तामस कहाहै ॥ १३ ॥

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ॥
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥ १४ ॥

देव ब्राह्मण गुरु और विद्वानोंका पूजन शुचिता सरलता ब्रह्मचर्य और परपीडावर्जन यह शरीरसंबंधी तप कहाहै ॥ १४ ॥

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ॥
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥ १५ ॥

जो वचन उद्वेगकारक न होय और सत्य प्रिय हितहोय और वेद-पाठ मंत्रजपादिकका अभ्यास यह वाणीमय तप कहाहै ॥ १५ ॥

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ॥
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥ १६ ॥

मनकी प्रसन्नता सदयपना याने क्रूर न होना मितभाषण मनको वश करना और अंतःकरणकी शुद्धता यह इतना तप मानस कहाताहै ॥ १६ ॥

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः ॥
अफलाकांक्षिभिर्युक्तैः सात्विकं परिचक्षते ॥ १७ ॥

फलकी इच्छा नकरनेवाले योग्य पुरुष तिनकरके परम श्रद्धा-करके तपाभया सो तीनों प्रकारका याने मानस, कायिक, वाचिक तप सात्विक कहाहै ॥ १७ ॥

सत्कारमानपूजार्थं तपो दंभेन चैव यत् ॥
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥ १८ ॥

जो तप सत्कार मान और पूजाके वास्ते और दंभकरके भी किया जाताहै सो यहां शास्त्रमें राजस चल और नाशमान् कहाहै १८

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ॥
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥ १९ ॥

जो तप दुराग्रह करके आपकी पीडाका निमित्त अथवा दूस-रेके बिगाडके वास्ते कियाहोय सो तामस कहाहै ॥ १९॥

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ॥
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम् २०॥

जो दान देनाही चाहिये ऐसी बुद्धिकरके कुरुक्षेत्रादि देशमें और ग्रहणादिककालमें जिससे फिर कुछ अपना उपकार न होय

ऐसेको तथा वह पात्र याने तपःस्वाध्यायंकरके रक्षक होय उसको दियाजाये सो दान सात्विक कहाहै ॥ २० ॥

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ॥
दीयते च परिक्लिष्टं तद्राजसमुदाहृतम् ॥ २१ ॥

जो प्रत्युपकारके वास्ते अथवा फलके निमित्तकरके फिर भी राहुवगैरह ग्रहनिमित्त उग्रदान दियाजाय सो राजस कहाहै ॥ २१ ॥

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ॥
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ २२ ॥

जो दान तिरस्कार अवज्ञापूर्वक देशकालविना और कुपात्रोंको दियाजाताहै सो दान तामस कहाहै ॥ २२ ॥

ओं तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ॥
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥ २३ ॥

ओं तत् सत् ऐसे तीन प्रकारका वेदका निश्चय जानागया है "याने ओंशब्दसे कर्मका स्वीकारकरना उचित है तत् शब्दसे तदर्थ याने परमेश्वरार्थ करना उचितहै सत्से श्रेष्ठकर्म साधुवृत्तिसे करना ऐसा वेदका निश्चय है" उसी निश्चयकरके युक्त ब्राह्मण याने वेदकर्म करनेवाले तीनों वर्ण कर्मस्वीकारार्थ और वेद जो ईश्वरार्थकर्मको प्रतिपादन करतेहैं और यज्ञ दान जो सत्कर्म ये मैं ने पूर्वकालमें स्थापितकिये हैं ॥ २३ ॥

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः ॥
प्रवर्त्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥ २४ ॥

जिससे कि, वेदवादी तीनोंवर्णकर्म स्वीकारार्थ हैं तिससे ओं ऐसे कहिके याने कर्मस्वीकार करके वेदवादी तीनोंवर्णोंकी विधिसे कहीभई यज्ञ दान तपकी क्रियायें निरंतर प्रवृत्त होतीहैं ॥ २४ ॥

तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपःक्रियाः ॥
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियंते मोक्षकांक्षिभिः ॥२५॥

तत् याने कर्म तदर्थहै याने परमेश्वरार्थहै ऐसी बुद्धिसे फलका अनुसंधान नहीं करके यज्ञ, दान, तप, क्रिया और अनेकप्रकारकी दानक्रिया मोक्षके चाहनेवालों करके कीजातीहै ॥ २५ ॥

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ॥
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥ २६ ॥

हे अर्जुन ! श्रेष्ठपनेमें और साधुभावमें सत् ऐसा यह शब्द युक्त करतेहैं तथा श्रेष्ठ कर्ममेंभी सत्शब्द युक्तकरते हैं ॥ २६ ॥

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ॥
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाऽभिधीयते ॥ २७ ॥

जो यज्ञमें, तपमें और दानमें स्थिति है सो सत् ऐसे कहातीहै और जो ईश्वरार्थ कर्महै सो सत् निश्चयहै ऐसे कहतेहैं इन चारों श्लोकोंमें ओंतत् सत् इनका खुलासा कियाहै ॥ २७ ॥

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ॥
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥२८॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागयोगोनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

हे पृथापुत्र ! जो श्रद्धाविना होमाभया हवन दिया भया दान तपाभया तप और कियाभया कर्महै सो असत् ऐसा कहाताहै और सो न पर लोकमें न इस लोकमें सुखदायक है ॥ २८ ॥

इति श्रीमत्सुकुलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीमद्भगवद्गीतामृततरंगिण्यां सप्तदशाध्यायप्रवाहः ॥ १७ ॥

अर्जुन उवाच ।

संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ॥
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ॥ १ ॥

अब इस अठारहवें अध्यायमें सर्वगीताका सारांश निरूपण होय. तहां अर्जुन प्रश्नकरतेहैं कि, हे महाबाहो ! हे हृषीकेश ! हे केशिनिषूदन ! संन्यासका और त्यागका तत्त्व न्यारा न्यारा जाननेको चाहताहूं ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ॥
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥ २ ॥

ऐसा अर्जुनका प्रश्न सुनिके श्रीकृष्ण भगवान् बोलते भये कि, कवि जो सारासारविवेकी वे कामनावाले कर्मोंके छोड़नेको संन्यास जानतेहैं और विचक्षण जो तत्त्वज्ञानीहैं वे सर्व कर्मोंके फलत्यागको त्याग कहतेहैं ॥ २ ॥

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ॥
यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यमिति चापरे ॥ ३ ॥

कोईएक ज्ञानिपुरुष दोषवाले कर्म त्यागनाचाहिये ऐसे कहतेहैं और कितनेक और आचार्य यज्ञ, दान, तप कर्म नहीं त्यागना चाहिये ऐसे कहतेहैं ॥ ३ ॥

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ॥
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः परिकीर्तितः ॥ ४ ॥
यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ॥
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥ ५ ॥

हे भरतसत्तम ! उस त्यागमें मेरा निश्चय सुनो हे पुरुषनमें श्रेष्ठ ! जिससे कि, त्याग तीनि प्रकारको कहा है तिसीसे यज्ञ, दान, तपरूप कर्म नहीं त्यागना, करनाही योग्य है यज्ञ, दान और तप ये ज्ञानिनको भी पवित्र करनेवाले हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

एतान्यपि तु कर्माणि संगं त्यक्त्वा फलानि च ॥
कर्त्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥ ६ ॥

हे पार्थ ! ये यज्ञादिकेभी कर्म ममता और फलोंको त्यागिके करनेयोग्य हैं ऐसा निश्चय कियाभया मेरो उत्तम मतहै ॥ ६ ॥

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ॥
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥ ७ ॥

कारण कि, जो नियमित संध्यादि पंचमहायज्ञादिकहैं उन कर्मका त्याग नहीं होसकताहै जो मोहसे उसका त्याग किया सो तामस कहाताहै ॥ ७ ॥

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् ॥
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ॥ ८ ॥

जो कर्म दुःख ऐसे शरीरक्लेशके भयसे ही त्यागे सो राजस त्यागको करके त्यागफलको नहीं पावताहै ॥ ८ ॥

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ॥
संगं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः ॥ ९ ॥

हे अर्जुन ! जो कर्म करनेयोग्य ऐसी बुद्धिसेही ममता और फलको त्यागिके नियमित याने उचित ऐसीही बुद्धिसे करै सो त्याग सात्त्विक मानाहै ॥ ९ ॥

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ॥

त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ॥ १० ॥

जो सत्त्वगुणयुक्त बुद्धिमान् संशयरहित कर्मफलत्यागी है सो अकुशलको याने संसारकारक कर्मको नं निंदताहै नं कुशल याने यज्ञादिकं तिनमें आसक्त होताहै ॥ १० ॥

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ॥
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥ ११ ॥

जिसवास्ते कि, देहधारीकरके सर्व कर्म त्यागनेको नहीं होसकताहै तिससे जो कर्मफलका त्यागीहै सो त्यागी ऐसा कहाताहै॥११॥

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् ॥
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित्॥१२॥

अप्रिय, प्रिय और मिश्रित ऐसे कर्मका तीन प्रकारका फल कर्मफलानुरागिनको मरेपर होताहै और कर्मफलत्यागिनको कहीं भी नहीं ॥ १२ ॥

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ॥
सांख्ये कृतांते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ॥१३ ॥

हे महाबाहो ! सर्वकर्मोंकी सिद्धिके वास्ते ये पांच कारण सांख्यसिद्धांतमें कहेभये मेरेसे सुनो ॥ १३ ॥

अधिष्ठानं तथा कर्त्ता करणं च पृथग्विधम् ॥
विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम् ॥१४॥

वे ये कि, अधिष्ठान याने आधार अर्थात् शरीर तथा कर्त्ता याने जीव इस जीवके कर्त्तापनमें "ज्ञातएवचकर्त्ताशास्त्रार्थत्वात्" यह ब्रह्मसूत्र प्रमाणहै और न्यारे न्यारे प्रकारके करण याने मनसहित पंच इंद्रियोंके व्यापार और अनेकप्रकारकी न्यारी न्यारी चेष्टा याने पांच

प्राणवायुनकी चेष्टा और यहां पांचवां देव याने अंतर्यामी अर्थात् मैं हूं इस विषयमें "परात्तुतच्छ्रुतेः" यह ब्रह्मसूत्रभी प्रमाणहै यहां शंकासमाधान वाक्यार्थबोधिनीमें कियाहै ॥ १४ ॥

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभतेऽर्जुन ॥
न्याय्यं वा विपरीतं वा पंचैते तस्य हेतवः ॥ १५ ॥

हे अर्जुन। शरीर वाणी और मन करके जो न्याय्य अथवा अन्याय्य जो कर्म प्रारंभ करा जाताहै तिसके ये पांचे कारण हैं ॥ १५ ॥

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः ॥
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ॥ १६ ॥

ऐसे सिद्धांत होनेपर भी तहां जो केवल आत्माको कर्ता जानताहै सो दुर्बुद्धिपुरुष अकृतबुद्धित्व से याने यथार्थ निश्चयकारक बुद्धिहीन है तिससे नहीं जानताहै ॥ १६ ॥

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ॥
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हंति न निबध्यते ॥ १७ ॥

जिसके आपके कर्त्तापनेका भाव नहीं है जिसकी बुद्धि कर्ममें नहीं लिप्तहोतीहै सो इन लोकनको मारके भी न मारताहै न पापसे बंधताहै तात्पर्य कि, तुम भीष्मादिके वधसे डरते हो तहां जो मनुष्य ममता अहंतारहित होके स्वधर्माचरण करताहै उसको उस कर्मजन्य पापपुण्यका भय नहीं ॥ १७ ॥

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ॥
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ॥ १८ ॥

ज्ञान जो कर्त्तव्यकर्मका जानना ज्ञेय जो वह कर्म परिज्ञाता उसके सम्यक् जाननेवाला ऐसे तीन प्रकारका शास्त्रविधान है तहां करणं

जो कर्मकरनेकी साधनरूपयों जैसे यज्ञमें स्रुवादिक युद्धमें शस्त्रादिक कर्म जो करना होय कर्त्ता करनेवाला ऐसे तीनि प्रकारका कर्मके वास्ते संग्रह है अर्थात् इनहीसे होसकेगा इन विना नहीं ॥ १८ ॥

ज्ञानं कर्म च कर्त्तेति त्रिधैव गुणभेदतः ॥
प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ॥१९॥

ज्ञान कर्म और कर्त्ता ऐसे ये गुणभेदकरके साँख्यशास्त्रमें तीन प्रकारहीके कहेहैं उनको भी यथावत् सुनो ॥ १९ ॥

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ॥
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ॥२०॥

जिस ज्ञानकरके ब्राह्मणक्षत्रियादि विभागयुक्त सर्वभूतोंमें विभाग-रहित याने आत्मा सर्वमें समान है ऐसा अविनाशी एक भावको देखताहो उसे ज्ञानको सात्त्विक जानना ॥ २० ॥

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान् पृथग्विधान् ॥
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥ २१ ॥

और जो सर्वभूतोंमें अनेक ब्राह्मणादिक छोटे बडे उत्तम मध्यम भेदयुक्त आत्मनकोभी उत्तम मध्यम न्यारे न्यारे जानताहै ऐसा जो न्यारेपनेकरके जो ज्ञानहै उस ज्ञानको राजस जानो ॥ २१ ॥

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम् ॥
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ॥ २२ ॥

जो कि एकेही कर्ममें सक्त याने आसक्त सर्वफलयुक्त जाने और वह निरर्थ होय कारण कि, जिसमें तत्त्वार्थ नहीं और तुच्छ याने भूतादि आराधनरूप ज्ञान सो तामस कहाहै ॥ २२ ॥

नियतं संगरहितमरागद्वेषतः कृतम् ॥

अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ॥ २३ ॥

जो कर्मफलकी इच्छा न करनेवालेने नियत याने कर्त्तव्य फला-
संगरहित और रागद्वेषविना किया होय सो सात्त्विक कहाहै ॥ २३ ॥

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः ॥
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥ २४ ॥

जो बहुत परिश्रमयुक्त कर्म कामनाकी प्राप्ति इच्छाकरके अथ-
वा फिर अहंकारसहित कियाहोय सो राजस कहाहै ॥ २४ ॥

अनुबंधं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम् ॥
मोहादारभते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥ २५ ॥

कर्मके परिणामको दुःख द्रव्यादिकका क्षय उस कर्ममें प्राणि-
पीडा और आपके पुरुषार्थको न देखिके मोहसे जो कर्म आरंभ
कियाजाताहै सो तामस कहाताहै ॥ २५ ॥

मुक्तसंगोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः ॥
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्त्ता सात्त्विक उच्यते २६

जो पुरुष कर्मफलासक्तिरहित मैं कर्त्ता हूं ऐसे न कहनेवाला
धीरज और उत्साहयुक्त सिद्धि और असिद्धिमें निर्विकारहोय सो
कर्त्ता सात्त्विक कहाताहै ॥ २६ ॥

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः ॥
हर्षशोकान्वितः कर्त्ता राजसः परिकीर्तितः ॥ २७ ॥

जो कर्ममें आसक्त कर्मफलके चाहनेवाला लोभी याने कर्ममें
यथार्थ खर्चका न करनेवाला प्राणिपीडा करनेवाला अपवित्र हर्षशो-
कयुक्त सो कर्त्ता राजस कहाहै ॥ २७ ॥

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः ॥
विषादी दीर्घसूत्री च कर्त्ता तामस उच्यते ॥ २८ ॥

जो शास्त्रोक्त कर्मके अयोग्य विद्याहीन अनम्र मारणादिकमंतत्पर ठग आलसी विषाद करनेवाला और घडीके काममें एक दिन बितानेवाला सो कर्त्ता तामस कहाताहै ॥ २८ ॥

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु ॥
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनंजय ॥ २९ ॥

हे धनंजय ! संपूर्णपनेकरके मेरा कहाभया न्यारा न्यारा गुणोंकरके तीनिप्रकारका बुद्धिका और धीरजका भेद सुनो ॥ २९ ॥

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ॥
बंधं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ३० ॥

हे पार्थ ! जो बुद्धि प्रवृत्तिको और निवृत्तिको कार्य अकार्यको और भय अभयको बंधको और मोक्षको जानतीहै सो सात्त्विकी ॥ ३० ॥

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ॥
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥ ३१ ॥

हे पृथापुत्र ! जिस बुद्धिकरके धर्मको और अधर्मको तैसे कार्यको और अकार्यको भी उलटा जाने सो बुद्धि राजसी ॥ ३१ ॥

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ॥
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥ ३२ ॥

हेपार्थ ! जो बुद्धि अज्ञानकरके ढकीभई अधर्मको धर्म ऐसा माने और सर्व अर्थोंको उलटे माने सो तामसी ॥ ३२ ॥

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेंद्रियक्रियाः ॥
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ३३

हे पार्थ ! जिसे अखंडमोक्षसाधनरूप धारणाकरके योगबलसे मन प्राण और इंद्रियनकी क्रियोंको धारणकरे सो धारणा सात्त्विकी ॥ ३३ ॥

यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयते नरः ॥

प्रसंगेन फलाकांक्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ॥ ३४ ॥

हे पार्थ ! फलकी इच्छा करनेवाला पुरुष फलइच्छाप्रसंगसे जिस धारणाकरके धर्म अर्थ कामोंको धारणकरै सो धारणा राजसी ॥ ३४ ॥

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च ॥
न विमुंचति दुर्मेधा धृतिः सा तामसी मता ॥ ३५ ॥

दुष्टबुद्धिपुरुष जिस धारणाकरके स्वप्न भय शोक विषाद और मद इनको नहीं त्यागताहै सो धारणा तामसी मानतेहैं ॥ ३५ ॥

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ ॥
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखांतं च निगच्छति ॥ ३६ ॥
यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ॥
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥ ३७ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! अब सुखभी तीनप्रकारका मेरेसे सुनो सो ऐसे कि, जिस सुखमें अभ्यासकरनेसे मन रमताहै और दुःखकोनाश होताहै जो उसके प्रथम विषतुल्य अंतमें अमृततुल्य सुख वह आत्मबुद्धिकी प्रसन्नतासे उत्पन्न सुख सात्त्विक कहाहै ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

विषयेंद्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ॥
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥ ३८ ॥

जो विषयेंद्रियके संयोगसे प्रारंभमें अमृततुल्य अंतमें विषतुल्य सो सुख राजस कहाहै ॥ ३८ ॥

यदग्रे चानुबंधे च सुखं मोहनमात्मनः ॥
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ ३९ ॥

जो प्रारंभमें और अंतमें भी आपका मोहक सो निद्रा आलस और प्रमादसे उत्पन्न सुख तामस कहाहै ॥ ३९ ॥

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ॥

सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥ ४० ॥

जो वस्तु प्रकृतिसे उत्पन्न इन सत्त्वादि तीन गुणोंकरके मुक्त होय सो पृथिवीमें अथवा स्वर्गमें अथवा फिर वहांही देवनमें नहीं है ॥ ४० ॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप ॥<br>
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥ ४१ ॥

हे परंतप ! ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंके और शूद्रोंके स्वभावसे उत्पन्न गुणोंकरके कर्म न्यारे न्यारे कियेहैं ॥ ४१ ॥

शमो दमस्तपः शौचं क्षांतिरार्जवमेव च ॥<br>
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥ ४२ ॥

शम जो बाह्यइंद्रियोंका संयम दम अंतःकरणका संयम तप शास्त्रोक्त व्रतादिक शौच बाह्य और आभ्यंतर क्षमा और सरलता ज्ञान स्वस्वरूप परस्वरूपका जानना विज्ञान जो स्वरूपज्ञानभये पर ईश्वरभक्तिकरना आस्तिक्य जो वेदशास्त्रवाक्योंमें विश्वास ये ब्राह्मणके कर्म स्वभावही से हैं ॥ ४२ ॥

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ॥<br>
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥ ४३ ॥

शूरपना तेज याने जिससे दूसरे डरैं धीरज चतुराई और युद्धमें भागना नहीं उदारता और प्रजाको स्वाधीन रखना यह क्षत्रियका कर्म स्वभावज है ॥ ४३ ॥

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ॥<br>
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥ ४४ ॥

खेती गौपालना वाणिज्य करना यह वैश्यकर्म स्वभावसे हैं तीनों वर्णकी सेवारूप कर्म शूद्रका स्वभावसे है ॥ ४४ ॥

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ॥
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विंदति तच्छृणु ॥ ४५ ॥

ऐसे आपआपके कर्ममें तत्परभयाहुआ मनुष्य सिद्धिको याने मोक्षको प्राप्तहोताहै स्वकर्मनिष्ठ पुरुष जैसें मुक्तिको पाताहै सो" सुनो ॥ ४५ ॥

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ॥
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विंदति मानवः ॥४६ ॥

जिस ईश्वरसे भूतप्राणिनकी उत्पत्ति रक्षण है जिसकरके यह सर्व व्याप्त है उस ईश्वरको आपके स्वभावज कर्मकरके पूंजिके मनुष्य मोक्षको प्राप्तहोताहै ॥ ४६ ॥

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ॥
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥ ४७ ॥

अतिउत्तम परधर्मसे आपकाधर्म गुणहीनभी कल्याणकारक है आपके जातिविहित कर्म करताभया पापको नहीं प्राप्तहोताहै तात्पर्य तुम्हारा हिंसात्मक भी धर्म है तो भी तुम्हारा कल्याण उसीसे है४७॥

सहजं कर्म कौंतेय सदोषमपि न त्यजेत् ॥
सर्वारंभा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ॥ ४८ ॥

हेकुंतीपुत्र। दोषयुक्तभी आपके वर्णोचित धर्मको न त्यागनां क्योंकि, सर्व ज्ञानकर्मादिक आरंभ दोषकरके धुंवाँकरके अग्नि ऐसे" युक्त हैं ॥ ४८ ॥

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ॥
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ॥ ४९ ॥

सर्वकर्मोंमें बुद्धिको आसक्त न करनां मनको वश किये भये

वांछारहित पुरुष परम नैष्कर्म्यसिद्धिको याने आत्मज्ञानको फल त्यागकरके प्राप्तहोताहै ॥ ४९ ॥

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाऽऽप्नोति निबोध मे ॥
समासेनैव कौंतेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ॥ ५० ॥

हे कुंतीपुत्र ! उस आत्मज्ञानको प्राप्तभयाहुआ जैसे ब्रह्मको प्राप्तहोताहै तैसे संक्षेपकरके मेरेसे सुनो जो ध्यानात्मज्ञानकी परम निष्ठा है याने उपायकी सीमा है ॥ ५० ॥

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च ॥
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ॥ ५१ ॥
विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः ॥
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥ ५२ ॥
अहंकारं बलं दर्पं काम क्रोधं परिग्रहम् ॥
विमुच्य निर्ममः शांतो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५३ ॥

सो जैसे कि, शुद्धबुद्धिकरके युक्त और धारणासे मनको वश करके शब्दादिक विषयोंको त्यागिके और रागद्वेषोंको त्यागिके एकांत बैठाभया अल्पाहारी शरीर वाणी और मनको वशकियेभये नित्य ध्यानयोगपरायण वैराग्यको धारणकियेभये अहंकार बल दर्प काम क्रोध ममता इन सबको त्यागिके निर्मम शांत ऐसा पुरुष आत्मज्ञानमय होताहै ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ॥
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥ ५४ ॥

ऐसे आत्मज्ञानमय भयाहुआ प्रसन्नमनयुक्त न कोई वस्तु मेरे सिवाय जोगई तो उसको शोचताहै न चाहताहै सर्व भूतोंमें समदृष्टिभयाहुआ अतिउत्तम मेरी भक्तिको प्राप्तहोताहै याने सर्व जगत्को

मेरे शरीरभूत मेरी परमविभूति जानिके पक्षपातरहित सर्वमें मेरे-हीको देखताभया मेराही स्मरण उनमें करताहै कि, ये सब मेरे स्वामीके हैं यही परमभक्ति है ॥ ५४ ॥

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः ॥
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनंतरम् ॥ ५५ ॥

मैं जितना और जो हौं तितना और तिस मेरेको भक्तिकरके निश्चयपूर्वक जानताहै फिर मेरेको निश्चयपूर्वक जानिके मेरेहीको उसपीछे प्राप्तहोताहै ॥ ५५ ॥

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ॥
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥ ५६ ॥

मेरा आश्रितजन सर्व लौकिक वैदिक कर्मनकोभी सदा करता-भया मेरे अनुग्रहसे सनातन नाशरहित पदको प्राप्तहोताहै ॥ ५६ ॥

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः ॥
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥ ५७ ॥

मेरे परायण भयेहुये चित्तकरके सर्वकर्मोंको मेरेमें स्थापितक-रके याने मेरे अर्पणकरके ज्ञानयोगका आश्रयकरके निरंतर मेरेमें चित्तको लगायेभये स्थितरहो ॥ ५७ ॥

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ॥
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनंक्ष्यसि ॥ ५८ ॥

मेरेमें चित्तलगायेभये मेरे अनुग्रहसे सर्वसंसारदुःखोंको तरोगे जो कदाचित् तुम अहंकारसे मेरा उपदेश न सुनोगे तो नष्टहोवोगे॥ ५८ ॥

यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे ॥
मिथ्यैवं व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ॥ ५९ ॥

जो अहंकारका आश्रयकरके न युद्धकरोंगा ऐसे मानोगे सो भी

तुम्हारा निश्चय वृथा होयगा क्योंकि, तुमको तुम्हारा जातिस्वभा-
वही युद्धमें लगायदेयगा ॥ ५९ ॥

स्वभावजेन कौंतेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ॥
कर्त्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोपि तत् ६०

हे कुंतीपुत्र! जो युद्ध मोहसे करनेको नहीं चाहते हो सो आपके क्षत्रि-
यस्वभावजन्य आपके कर्मकरके बंधेभये परवशभये भी करोगे॥६०॥

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ॥
भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया ॥ ६१ ॥

हे अर्जुन ! ईश्वर आपकी मायाकरके यंत्र जो शरीर तिनमें रहेभये
सर्वभूतोंको भ्रमाताभया सर्वभूतोंके हृदयस्थलमें स्थित है ॥ ६१ ॥

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ॥
तत्प्रसादात्परां शांतिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्६२

हेभारत ! सर्वभावनाकरके उसी परमात्माके शरण होउ उसीके
अनुग्रहसे परम शांति और सनातन स्थानको प्राप्तहोवोगे ॥ ६२ ॥

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ॥
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ६३ ॥

मैंने यह गोप्यसेभी गोप्य ज्ञान तुमको कहा इसको अच्छीत-
रहसे विचारके जैसा चाहो तैसा करो ॥ ६३ ॥

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ॥
इष्टोसि मे दृढमतिस्ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥६४॥

सर्वगोप्यनमें भी अतिगोप्य मेरा परम वाक्य फिर सुनो मेरे
अतिदृढ प्रियहो तिससे तुमको यह हित उपदेश करताहूं ॥ ६४ ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ॥
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ६५॥

मेरेमें मनको लगावो मेरे भक्त होउ मेरा पूजनकरनेवाले होउ मेरेको नमन करो और ऐसे करनेसे मेरेको ही प्राप्तहोउगे तुमसे सत्य प्रतिज्ञा करताहूं क्योंकि, मेरे प्रियहो ॥ ६५ ॥

**सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ॥**
**अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥६६ ॥**

हे अर्जुन ! तुम सर्वधर्मोंको परित्यागि के याने सर्वधर्मोंके फलको त्यागिके अर्थात् "यत्करोषि यदश्नासि इत्यारभ्य तत्कुरुष्व मदर्पणम्" इस रीतिसे मेरे अर्पणकरके मुख्य मेरे शरण प्राप्त होउ अर्थात् "स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विंदति मानवः" इस प्रमाणसे मेरेको पूज्य और मेरेको प्राप्य जानिके मेरी आज्ञा करो याने मेरा पूजन जानिके स्वधर्मरूप युद्धकरो मैं तुमको इन भीष्मादिकोंको युद्धमें मारने इत्यादिक सर्वपापोंसे मुक्तकरौंगा तुम मति शोचकरो यहां इस श्लोकमें कोई विद्वद्दूषण अर्थ करते हैं कि, चातुर्मास्ययाग श्राद्ध पितृतर्पण इत्यादिकर्मरूप धर्मोंको त्यागिके मेरे शरण होउ याने मेरेको और आपको एकही जानो इस एकताज्ञानरूप भक्ति करो तब विचारना चाहिये कि, प्रथम तो "उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः" इत्यादिप्रमाणसे जीवब्रह्मकी स्वरूपएकता नहीं होसकतीहै मुक्तभयेपरभी "मम साधर्म्यमागताः" और "भोगमात्रसाम्यलिंगाच्च" तथा "निरंजनः परमं साम्यमुपैति" इत्यादिक गीताब्रह्मसूत्र और श्रुतिप्रमाणसे भी भोगादिकमें समता होती है एकता नहीं जहां एकता भी कहीहै तहां अंतर्यामिभावसे अथवा "द्वासुपर्णा" इत्यादिश्रुतिप्रमाण सलापनसे कहीहै दूसरे 'भज सेवायां' धातुका भक्ति शब्द होताहै भक्ति याने सेवा सो भी एकतामें बननेकी नहीं इससे जीव परमात्मासे न्यारे परमात्माके स्वाधीन हैं यह सिद्ध भया तब जो अर्थ किया कि, मेरी और आपकी एकतारूप भक्तिकरो सो यह अर्थ तो सिद्धभया नहीं अब जो धर्मको त्यागनेका अर्थ किया तहां "धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगेयुगे। श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः। स्वधर्मे निधनं श्रेयः"

इत्यादि वाक्योंमें विरोध आताहै इसवास्ते सर्वधर्मोंका फलत्यागिके निष्काम और ईश्वरपूजनरूप जानिके करना यही सिद्धहोताहै यहां इसी अध्यायमें प्रमाणहै "निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ॥ त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः परिकीर्तितः" यहांसे लेके "संगं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः ॥ यस्तु कर्मफलत्यागी सत्यागीत्यभिधीयते" इत्यादि और भी कहेहैं ग्रंथबढनेके भयसे नहीं लिखतेहैं बुद्धजन इतनेहीमें समुझिके धर्माचरण करेंगे ॥ ६६ ॥

इदं ते नातपस्काय नाऽभक्ताय कदाचन ॥
नचाऽशुश्रूषवे वाच्यं नचमां योऽभ्यसूयति ॥ ६७ ॥

हे अर्जुन ! यह मेरा गोप्य उपदेश तुम जिसने तप नकियाहोय उसको न कहना तथा कभी भी मेरा और मेरे जनोंका भक्त न होय उसको न कहना और जो गीताउपदेष्टाकी सेवा नकरै उसको भी न कहना और जो मेरी निंदाकरै उसको तुम न कहना ॥ ६७ ॥

य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ॥
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥ ६८ ॥

जो इस परम गोप्य गीताशास्त्रको मेरे भक्तोंमें प्रसिद्ध करैगा वह मेरेमें सर्वोत्तम भक्ति करके मेरेहीको प्राप्तहोगा इसमें संशयनहीं ६८

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ॥
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥६९ ॥

उस गीताको भक्तोंमें प्रसिद्धकरनेवालेसे अधिक मेरा प्रियकारक पृथिवीमें दूसरा मनुष्योंमें कोईभी नहीं है और न उसकी बराबर और मेरेको प्रिय होगा ॥ ६९ ॥

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ॥
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥ ७० ॥

जो मेरे तुम्हारे इस धर्मवर्द्धक संवादरूप गीताका अध्ययन करेगा उस करके मैं ज्ञानयज्ञसे पूजित होऊंगा ऐसा मैं मानताहूं ॥ ७० ॥

श्रद्धावाननसूयुश्च शृणुयादपि यो नरः ॥
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ७१

जो निंदारहित और श्रद्धायुक्त श्रवणभी करेगा सोभी संसारसे मुक्त होके पुण्यकर्म करनेवालोंके सुखद लोकों को प्राप्त होयगा ॥ ७१ ॥

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ॥
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रणष्टस्ते धनंजय ॥ ७२ ॥

भगवान् पूंछतेहैं कि, हे पृथापुत्र ! इस ज्ञानको तुमने एकाग्र चित्तसे सुना कि नहीं, और हे धनंजय ! जो सुना होय तो अज्ञानजन्य मोह तुम्हारा नष्ट भया कि नहीं सो कहो ॥ ७२ ॥

अर्जुन उवाच ।

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ॥
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव ॥ ७३ ॥

श्रीकृष्णके वचन सुनिके अर्जुन कहतेहैं कि, हे अच्युत ! तुम्हारे अनुग्रहसे मोह नष्टभया और मैंने ज्ञान प्राप्तकिया अब संदेहरहित स्थित हूं आपका वचन जो स्वधर्मरूप युद्धकरनेकी आज्ञा सो करौंगा ॥ ७३ ॥

संजय उवाच ।

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ॥
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥ ७४ ॥

संजय धृतराष्ट्रसे कहतेहैं कि, हेराजन् ! ऐसा यह श्रीकृष्ण और महात्मा अर्जुनका अतिअद्भुत रोमांचकारक संवाद मैं सुनताभया ७४

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम् ॥
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ७५

मैं यह अत्यन्त गोप्य प्रत्यक्ष स्वयंही योग कहतेभये योगेश्वर श्रीकृष्णके मुखसे वेदव्यासजीके अनुग्रहसे सुनताभया ॥ ७५ ॥

राजन् संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् ॥
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥ ७६ ॥

हेराजन्! इस श्रीकृष्ण और अर्जुनके अद्भुत पुण्यदायक संवादको सुमिरि सुमिरिके वारंवार हर्षितहोताहौं ॥ ७६ ॥

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ॥
विस्मयो मे महान् राजन् हृष्यामि च पुनःपुनः ॥ ७७ ॥

हेराजन्! उस अद्भुत भगवान्के रूपकोभी सुमिरिसुमिरिके मेरे बडा विस्मय होताहै और वारंवार हर्षित होताहौं ॥ ७७ ॥

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ॥
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥ ७८ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षसंन्यासयोगो नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

हेराजन्! जहां योगेश्वर श्रीकृष्ण हैं और जहां अर्जुन धनुधारी हैं तहांही अचल संपदा अचलविजय अचलवैभव और अचल नीति है यह मेरा नि॰ाय मत है ॥ ७८ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीमद्भगवद्गीताऽमृततरंगिण्यामष्टादशोध्यायप्रवाहः ॥१८॥

---

अंबराब्ध्यंकभूसंख्येविक्रमार्कस्यसंवदि ॥ माघमासेदलेशुभ्रेद्वितीयायांतिथौबुधे ॥ १ ॥ इयंसंपूर्णतांयातागीताऽमृततरंगिणी ॥ श्रीमद्भागवताचार्यानुग्रहात्सद्गुरुर्मम ॥ २ ॥

समाप्तोऽयं ग्रंथः।

पुस्तकमिलनेका पता—खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" ( स्टीम् ) यन्त्रालयके मालिक—मुंबई.

॥ श्रीः ॥

श्रीमन्महाभारतानुशासनिकपर्वान्तर्गत-

# विष्णुसहस्रनामस्तोत्र ।

भाषाटीकासहित ।

वैश्यमाहेश्वरी नानालाल सोमाणीने औदीच्यज्ञाति

पंडित-रामचन्द्रजीसे विरचित.



यह

खेमराज श्रीकृष्णदासने

बम्बई

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् यन्त्रालयमें

मुद्रितकर प्रकाशित किया.

संवत् १९८०, शक १८४५.

श्रीविष्णवे नमः ।



# सूचना।

श्रीपरब्रह्म परमेश्वर सगुणनिर्गुणरूप सच्चिदानन्दके चरणारविंदमें मनवाणीकायासे अनन्तकोटि नमस्कार करके यह सत्पुरुषोंका दासानुदास वैश्यमाहेश्वरी नानालाल सोमाणीने यथार्थनामसहस्र औदीच्यज्ञाति पंडितरामचन्द्रजी रईसडीडवानासे श्रीविष्णुसहस्रनामका अर्थ शांकरभाष्यानुकूल देशभाषामें शुद्धलिखवायके सब सुज्ञजनोंसे हाथ जोड़के विनती करता है जहाँ अर्थमें वा लिपिमें भूलचूक होय सो इस तुच्छबुद्धि अत्यंत अबोध दासपर कृपा करके सुधारदें । अर्थ जिस नामके दो तीन हैं उसपर अंक लिखा है जहां श्लोक पूरा है उसका भी अंक है। नामोंकी संख्याका भी अंक प्रतिपत्रमें लिखाहै ॥ श्लोकः ॥ शराब्धिगोभूमितविक्रमाब्दे चैत्राभिधे मासि वलक्षपक्षे ॥ सेनानिवेशाख्यपुरे व्यलेखि श्रीरामचन्द्राभिधपंडितेन ॥ १ ॥ श्रीरस्तु ॥



श्रीः ।

# अथ श्रीविष्णुनामसहस्रम् ।

## भाषाटीकासमेतम् ।

### वैशंपायन उवाच ।

श्रुत्वा धर्मानशेषेण पावनानि च सर्वशः ॥
युधिष्ठिरः शांतनवं पुनरेवाभ्यभाषत ॥ १ ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ वैशंपायनजी बोले कि, युधिष्ठिर नाम युद्धमें न भागने वाले ऐसे धर्मराजाने सब पवित्र करनेवाले धर्मोंको शंतनुके पुत्र भीष्मपितामहसे अशेष नाम सम्पूर्ण सर्वधर्म जैसे-- आपद्धर्म, राजधर्म, मोक्षधर्म, दानधर्मादिक; वो धर्म कैसे हैं कि पावन नाम पवित्रकरनेवाले सर्वशः नाम सब तरहसे पावन हैं श्रवणमननिदिध्यासनादिक वा सब प्रकारके धर्म व्रत उपासना उपवास प्रायश्चित्तादिकको भीष्मजीसे सुनकर फेर पूछा ॥ १ ॥

### युधिष्ठिर उवाच ।

किमेकं दैवतं लोके किं वाप्येकं परायणम् ॥
स्तुवन्तः कं कमर्चन्तः प्राप्नुयुर्मानवाः शुभम् ॥२॥

युधिष्ठिरने कहा इस लोकमें एक बड़ा देवता कौन है अथवा एक प्राप्त होनेके लायक कौन है और किसके जप करनेसे किसकी पूजा और किसकी स्तुति करनेसे मनुष्यका कल्याण होता है॥२॥

को धर्मः सर्वधर्माणां भवतः परमो मतः ॥
किं जपन्मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् ॥ ३ ॥

सब धर्मोंमें कौन धर्म आपको परममत (बड़ा)है और किस नाम के जप करनेसे प्राणी जन्ममरणरूपी संसारके बंधनसे छूट जाता है

( परममत नाम उत्तम मत जब तीन तरहका है १ ऊंचेशब्दसे २ मध्यमस्वरमें ३ मनसे जो जन्मलेते रहै उसका नाम जंतु है ) युधिष्ठिरने यही पांचप्रश्न किये १ कौन एक बड़ा देवता है २ कौन प्राप्तहोने लायक है ३ किसकी पूजा और स्तुतिकरनेसे आदमीका भला होता है ४ सब धर्मोंमें आपकी परममतसे कौन धर्म बड़ा है ५ किस नामके जपसे फेर जन्म नहीं होता ॥ ३ ॥

भीष्म उवाच ।

जगत्प्रभुं देवदेवमनंतं पुरुषोत्तमम् ॥
स्तुवन्नामसहस्रेण पुरुषः सततोत्थितः ॥ ४ ॥

भीष्मने उत्तर दिया। ( जिससे सब शत्रु डरैं सो भीष्म )आदमी सदा उठकर जगत्‌के प्रभु नाम स्वामी और देवतोंके देवता अनन्त पुरुषोत्तमके सहस्रनामसे स्तुति करनेसे संसारसे छूट जाता है सब स्थावर जङ्गमका नाम जगत् है, उसके प्रभु अनंत जिसका अंत नहीं और किसी देश किसी काल किसी वस्तुमें जिसको नियत न करसकैं, पुरुषोत्तम नाश होनेवाले और चिरजीवी रहनेवालोंसे परे ॥ ४ ॥

तमेव चार्चयन्नित्यं भक्त्या पुरुषमव्ययम् ॥
ध्यायन्स्तुवन्नमस्यंश्च यजमानस्तमेव च ॥ ५ ॥

सहस्रनामसे उसकी स्तुति सदा निरंतर जो पुरुष करता है वह जन्ममरणसे छूट जाता है उसी अव्यय नाम अविनाशी पुरुषकी भक्ति सहित नित्य पूजा और ध्यानपूर्वक स्तुति नमस्कार करनेसे यजन करनेसे पुरुष सब दुःखसे छूट जाता है ॥ ५ ॥

अनादिनिधनं विष्णुं सर्वलोकमहेश्वरम् ॥
लोकाध्यक्षं स्तुवन्नित्यं सर्वदुःखातिगो भवेत् ॥ ६ ॥

आदि अंतसे रहित विष्णु सब लोकके महाईश्वर नाम ब्रह्मादिक ईश्वरोंके ईश्वर लोकाध्यक्ष नाम सबलोकके साक्षी अर्थात् द्रष्टा सब लोकके स्वामीकी स्तुति करनेसे सर्व दुःख नाम तापत्रयसे छूट जाता है ॥ ६ ॥

**ब्रह्मण्यं सर्वधर्मज्ञं लोकानां कीर्तिवर्धनम् ॥**
**लोकनाथं महद्भूतं सर्वभूतभवोद्भवम् ॥ ७ ॥**

ब्रह्मण्य सब धर्मोंके जानने वाले प्राणियोंकी कीर्ति बढ़ाने वाले लोकके नाथ अर्थात् जिससे लोग मांगते हैं वा लोकके शिक्षा देनेवाले महद्भूत महत नाम ब्रह्मविद्यापूर्ण भूत नाम परमार्थ अथवा महत् नाम पूज्य भूत नाम सत्ता अथवा पिशाचादिकरूपसे पूज्य सर्वभूतभव नाम संसार और जिससे उत्पत्ति संसारकी है उसको सर्वभूतभवोद्भव कहते हैं ॥ ७ ॥

**एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः ॥**
**यद्भक्त्या पुंडरीकाक्षं स्तवैरर्चेन्नरः सदा ॥ ८ ॥**

सब वेदके कहेहुये बडे बडे धर्मोंमेंसे बहुत बड़ा धर्म यही है जो पुंडरीकाक्षकी स्तुतिसे भक्तिपूर्वक पूजा सदा करता रहै यही हमारा मत है॥ पुंडरीक हृदयकमलमें प्रकाशवानका नाम है अक्ष. नाम मंदिर॥ और स्तुति करना सर्व धर्मोंमें अधिक है इसमें प्रमाण देते हैं–विष्णुपुराणका वचन ॥ ध्यायन्कृते यजन्यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् ॥ यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ॥ १ ॥ मनुका वचन ॥ जप्येनैव तु संसिध्येद्ब्राह्मणो नात्र संशयः॥ कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥ १ ॥ जपस्तु सर्वधर्मेभ्यः परमो धर्म उच्यते ॥ अहिंसया च भूतानां जप यज्ञः प्रवर्त्तते ॥ इति महाभारते ॥ यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मीति भगवद्वचनम् ॥ ८ ॥

**परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः ॥**
**परमं यो महद्ब्रह्म परमं यः परायणम् ॥ ९ ॥**

जो परमतेज है कि सूर्य उसी तेजसे सब जगत्को प्रकाशकरते हैं और जिस तेजसे चांद और अग्नि प्रकाशित हैं और बड़ा तप नाम आज्ञा देनेवाला अंतर्यामीरूप है ॥ यद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति यद्भयात् ॥ वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्मृत्युश्चरतियद्भयात् ॥ जो परब्रह्म सत्य है ज्ञानरूप है अनन्त है महत् नाम पूज्य जो परायण नाम जहाँ जायके फेर नहीं आवते ॥ ९ ॥

**पवित्राणां पवित्रं यो मंगलानां च मंगलम् ॥**
**दैवतं देवतानां च भूतानां योऽव्ययः पिता ॥ १० ॥**

सब तीर्थोंको जो पवित्र करै ध्यानसे दर्शनसे कीर्तनसे स्तुतिकरनेसे पूजन स्मरण प्रणाम करनेसे सब पापोंकी जड़ खोद डालते हैं सो परम पवित्र पुण्य पाप जो संसारके हेतु हैं उनका कारण अज्ञान है उसका नाश आत्मज्ञानसे जो करै सो सब पवित्रोंसे पवित्र है प्रमाण"कलावपि च दोषाढ्ये विषयासक्तमानसः ॥ कृत्वापिसकलं पापं गोविंदं संस्मरञ्छुचिः ॥ १ ॥शाठ्येनापि नमस्कारः प्रयुक्तश्चक्रपाणये ॥ संसारस्थूलबंधानामुद्वेजनकरो हि सः" ॥ २ ॥ मंगल नाम कल्याण सबमंगलोंके मंगल किंतु परमकल्याण रूप वा उसके साधन देवतोंके देवता भूत कहैं प्राणियोंके एक पिता नाम पालनहार कैसे पिता कि,अव्यय जिसका नाश नहीं वहीइस लोकमें एक देवता हैं यह उस प्रश्नका उत्तर है ॥ किमेकं दैवतं लोकइत्यादि ॥ प्रमाण-ज्ञानह्रदे ध्यानजले रागद्वेषमलापहे ॥ यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम् ॥ १ ॥ आत्मा नदी संयमतोयपूर्णा सत्यावहा शीलतटा दयोर्मिः ॥ तत्राभिषेकं कुरु पांडुपुत्र न वारिणा शुध्यति चांतरात्मा ॥ २ ॥ इति महाभारते ॥ १० ॥

यतः सर्वाणि भूतानि भवंत्यादियुगागमे ॥
यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये ॥ ११ ॥

जिससे सत्ययुगके प्रारंभमें सब प्राणी उत्पन्न होते हैं और युगके क्षय नाम महाप्रलयमें और प्रलयके पहिले भी फेर सब जीव जिसमें लय होते हैं ॥ ११ ॥

तस्य लोकप्रधानस्य जगन्नाथस्य भूपते ॥
विष्णोर्नामसहस्रं मे शृणु पापभयापहम् ॥ १२ ॥

हे भूपति ! उसी लोकके मालिक जगत्के नाथ जो विष्णु तिनका सहस्रनाम जो पाप और भयको नाशकरनेवाला है उसको मन चित्तलगायके हमसे सुनो ॥ १२ ॥

यानि नामानि गौणानि विख्यातानि महात्मनः ॥
ऋषिभिः परिगीतानि तानि वक्ष्यामि भूतये ॥ १३ ॥

जिन गुणसहितनामोंको महात्मा लोगोंने प्रसिद्ध किया है और सब ऋषिलोगोंने गाया है उसको मैं भूतये नाम धर्म अर्थ काम मोक्ष मिलनेके वास्ते कहता हूँ ॥ १३ ॥

हरिः ॐ ॥ विश्वं विष्णुर्वषट्कारो भूतभव्यभवत्प्रभुः ॥
भूतकृद्भूतभृद्भावो भूतात्मा भूतभावनः ॥ १४ ॥

सहस्रनामप्रारंभः ॥ विश्वम् ॥ जगत्का कारणरूप परब्रह्म १ अथवा सब जगत्रूप है २ जो संसारको बनायके आप उसमें प्रवेश करे ३ प्रलयमें सबजगत् जिसमें समायजाय ४ प्रणवरूप ५ ॥ एवं सर्वेषु भूतेषु भक्तिरव्यभिचारिणी ॥ कर्तव्या पंडितैर्ज्ञात्वा सर्वभूतमयं हरिम् ॥१॥ विष्णुः ॥ जो सबमें व्यापक है १ किसी देश किसी काल किसी पदार्थमें जिसको नियत न करसकै किंतु सबदेश सबकाल सबवस्तुमें निरंतर एकाकार व्याप्त है २ जिसकी शक्ति

सबमें भरी है ॥ ३ ॥ वषट्कारः ॥ वषट्कार यज्ञको कहते हैं और ब्रह्मा और देवतोंको भी कहते हैं १ जिसके निमित्त होम यज्ञादिक हों २ ॥ भूतभव्यभवत्प्रभुः ॥ भूत भविष्य वर्त्तमान तीनों कालके स्वामी १ ॥ भूतकृत् ॥ रजोगुणके आश्रयसे ब्रह्मारूप होके प्राणियोंके पैदा करनहार १ तमोगुणको धारण करके रुद्ररूपसे जगत् काटते हैं वा नाश करते हैं २ ॥ भूतभृत् ॥ सत्त्वगुणसे विष्णुरूप होके सबभूतोंके पालनहार और रक्षक १ शेषरूपसे जगत्को धारणकरने वाले २ अनंतरूपसे जगत्को पोषणकरनेवाले ३ ॥ भावः ॥ सत्तारूप जिसको नित्य कहते हैं १ ॥ भूतात्मा ॥प्राणियोंके अन्तर्यामी ॥ भूतभावनः ॥प्राणियोंके उत्पन्नकरनेवाले ॥ १४ ॥

**पूतात्मा परमात्मा च मुक्तानां परमा गतिः ॥**
**अव्ययः पुरुषः साक्षी क्षेत्रज्ञोऽक्षर एव च ॥ १५ ॥**

पूतात्मा ॥ त्रिगुण और जन्मकर्मके दोष जिसमें नहीं १० नाम परमात्मा बहुत बड़ी है मायाशक्ति जिसकी और सबमें निरंतर व्याप्त हैं १ नित्य शुद्धबुद्ध मुक्त स्वभाव२नित्य जो तीनों कालमें शुद्ध रहे रागादिकसे रहित बुद्ध आपही प्रकाशवान् और सदा आनंदरूप मुक्त मायाके बंधनसे छूटाहुआ ॥ मुक्तानां परमागतिः ॥ मुक्त लोग जो रागद्वेषभयसे छूटे हैं उनकी परमा नाम उत्तम गतिरूप जहां जायके फेर न आवै १ ॥ अव्ययः जिसमें विकार वा नाश नहीं पुरुषः ॥ पुर नाम शरीर वा ब्रह्म जो शरीरमें अथवा ब्रह्ममें वास करै सो पुरुष १ ॥ नवद्वारं पुरं पुण्यमेतैर्भावैः समन्वितम् ॥ व्याप्य शेते महात्मा यस्तस्मात्पुरुष उच्यते ॥ १ ॥ इति महाभारते ॥ जो सबके पहिले था वो पुरुष २ सत्त्व गुण जहाँ अधिक होय वहाँ रहनेवाले ३ अनेक मनोरथोंके देनेवाले ४ पुर

नाम संसारको जो प्रबलकालमें नाशकरै सो पुरुष ५ जिसको सब जगत् भरा है और सब जगत्में घूमता फिरता है ६ ॥ साक्षी ॥ साक्षाच्चैतन्यरूप सबको देखने वाले १॥क्षेत्रज्ञः ॥क्षेत्र नाम शरीरको जो जानै सो क्षेत्रज्ञ १ ॥क्षेत्राख्यानि शरीराणि तेषां चैव यथासुखम्॥ तानि वेत्ति स योगात्मा ततः क्षेत्रज्ञ उच्यते ॥ १ ॥ अक्षरः ॥ जो कभी न टलै सदा एकसा थिर रहै एव नाम वही क्षेत्रज्ञ है ॥ १५ ॥

**योगो योगविदां नेता प्रधानपुरुषेश्वरः ॥**
**नारसिंहवपुः श्रीमान् केशवः पुरुषोत्तमः ॥ १६ ॥**

योगः ॥ ज्ञानेंद्रिय और मनको जीतकर जीवात्मा परमात्मा दोनोंको एक जाननेको योग कहते हैं १ इसके अभ्याससे जो मिलै सो योग ॥ योगविदां नेता ॥ योगकेजाननेवाले योगविद् उनके नेता नाम योगक्षेम करनेवाले १ ॥ योग अनमिली वस्तुकी प्राप्ति,क्षेम प्राप्तिकी रक्षा ॥ प्रधानपुरुषेश्वरः॥ ॥ प्रधान नाम प्रकृति जिसको माया कहते हैं।पुरुष नाम जीव दोनोंके ईश्वर॥२०॥ नाम नारसिंहवपुः ॥ जिसके शरीरमें आदमी और सिंहका स्वरूप होय १ ॥ श्रीमान् ॥ जिसकी छातीमें सदा लक्ष्मीका चिह्न है १॥ केशवः॥जिसके बाल बहुत सुन्दर हों १क नाम ब्रह्मा अ नाम विष्णु ईश नाम रुद्र तीनों जिसके वशमें हैं सो केशव२ केशीदैत्यके मारनेवाले ३ ॥ पुरुषोत्तमः ॥ जो पुरुषोंमें उत्तम नाम जीव और ईश्वर दोनोंसे परे शुद्ध ब्रह्म ॥ भगवद्गीता प्रमाण ॥ यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ॥ अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ १६ ॥

**सर्वः शर्वः शिवः स्थाणुर्भूतादिर्निधिरव्ययः ॥**
**सम्भवो भावनो भर्त्ता प्रभवः प्रभुरीश्वरः ॥ १७ ॥**

सर्वः ॥ सत् और असत्के उत्पत्ति स्थिति विनाशका स्थान १ ॥ शर्वः ॥ सबोंका संहार करावनेवाला आपही सबका संहार करै १ ॥ शिवः ॥ तीनोंगुणोंसे हितसिद्धिवाले १॥वही ब्रह्मा वही विष्णु वही रुद्र है यह श्रुति है शिवके नामसे विष्णुकी स्तुति है ॥ स्थाणुः ॥ स्थिरभाव ॥ भूतादिः॥ सबभूतोंका आदिभूत १ ॥ निधिरव्ययः ॥ प्रलयके समयमें जिसमें सबलय होय सो निधि और जो सदार है कभी नष्ट न होय सो अव्यय यह दो मिलके एक नाम है ॥ ३० नाम ॥ संभवः ॥ अपनी इच्छासे भली तरह आपही १ ॥ चौथे अध्यायमें गीताजीमें कहा है धर्मके स्थापनके वास्ते युगयुगमें मैं होता हूँ स्वेच्छासे गर्भादिकदुःखोंसे रहित ॥ भावनः॥ सबभोक्ता जीवोंको फल देनेवाला ॥ भर्ता ॥ प्रपंचको अधिष्ठानहोके धारण करै १ ॥ प्रभवः ॥ जिससे पंचमहाभूत अपने विस्तारसमेत पैदा होयँ अवतारादिक जिसके उत्तम जन्म हैं १॥ प्रभुः ॥ सब तरहकी कृपामें अत्यंत सामर्थी १ ॥ ईश्वरः ॥ उपाधि रहित जिसका ऐश्वर्य है यही सबका ईश्वर है ॥ १७ ॥

स्वयंभूः शंभुरादित्यः पुष्कराक्षो महास्वनः ॥
अनादिनिधनो धाता विधाता धातुरुत्तमः ॥ १८॥

स्वयंभूः ॥ जो आप ही विना किसीकी सहायताके प्रगट होय १ जो आप स्वतंत्र होय २ ॥शंभुः ॥ जो भक्तोंको सुख देते १॥ आदित्यः ॥ सूर्यमंडलमें जो सुवर्णमय पुरुष बैठा है १ बारहो सूर्यमें विष्णु नाम सूर्यहों सूर्यकेनाम विष्णु १ शक्र २ अर्यमा ३ धाता ४ त्वष्टा ५ पूषा ६ विवस्वान् ७ सविता ८ मित्र ९ वरुण १० अंशुमान् ११ भग १२ आदित्यानामहं विष्णुः ॥ गीताजीमें कहा है २ अखंडितपृथ्वीके पति जैसे एक सूर्य अनेक जल पात्रमें अनेक

दिखाई देते हैं वैसे एक आत्मा अनेकरूप होके अनेक शरीरमें देखाई देते हैं ॥ पुष्कराक्षः ॥ कमलके पत्र से हैं नेत्र जिसके ॥४० नाम ॥ महास्वनः ॥ जिसका शब्द बड़ा है १ ॥ जिसका शब्द वेद है २ ॥ अनादिनिधनः ॥ जिसके जन्म और नाश नहीं १ ॥ धाता॥ शेष नाग और कच्छप और सूर्यचंद्ररूप होकर जगत्को धारण पोषण करनेवाले १ ॥ विधाता ॥ कर्म और कर्मके फलोंका रचनेवाला ॥ कर्म दर्शपौर्णमासादिक यज्ञ और उनके फल स्वर्गादिकके बनावनेवाले १ शेषनागादिकके धारण करनेवाले २ ॥ धातुरुत्तमः ॥ पृथिव्यादिक सब धातुओंसे उत्तम चैतन्यरूपधातु १ ब्रह्मासे ही उत्तम यह दो नाम हैं एक धातु दूसरा उत्तम कार्यकारणरूपसे जगत्के धारणकरनेवाले चैतन्य उत्तम सब ऊपर जानेवाले हिरण्यगर्भादिकोंसे भी उत्तम नाम बहुत ऊपर जानेवाले भाष्यकार एक ही नाम गिनते हैं ॥ १८ ॥

**अप्रमेयो हृषीकेशः पद्मनाभोऽमरप्रभुः ॥**
**विश्वकर्मा मनुस्त्वष्टा स्थविष्ठः स्थविरो ध्रुवः॥ १९ ॥**

अप्रमेयः ॥ जिसकी प्रमा नाम यथार्थ ज्ञान प्रत्यक्ष अनुमान उपमान शब्दादिकोंसे न हो सके १ ॥ हृषीकेशः ॥ इंद्रियोंके स्वामी १ सूर्यचन्द्ररूप होके अपने केश नाम किरणसे जगत्का भला करते हैं २ महाभारतके दानधर्ममें प्रमाण है ॥सूर्याचंद्रमसोः शश्वदंशुभिः केशसंज्ञितैः । बोधयन्स्वापयंश्चैव जगदुत्तिष्ठते पृथक् ॥ बोधनात्स्वापनाच्चैव जगतो हर्षणं भवेत् । हृषीकेशोऽहमीशानो वरदो लोकभावनः ॥ पद्मनाभः ॥ जिनकी नाभिमें सब जगत्का कारणरूप कमल है १ ॥ अमरप्रभुः ॥ देवतोंके स्वामी १ ॥ विश्व-

कर्मा ॥ जिसकी क्रिया जगत् है १ ॥ जिसकी शक्तिसे सब जगत् क्रिया करते हैं २ जैसे विश्वकर्मा अपनी शक्तिसे सब विचित्र काम करते हैं वैसे ईश्वर भी अपनी मायासे चित्र विचित्र रचना करते हैं इसवास्ते विश्वकर्मा नाम है ३ ॥ ५० नाम ॥ मनुः ॥ जो मनन करै सो मनुः १ मंत्ररूप २ प्रजापतिमनु ३ ॥ त्वष्टा ॥ जो संहारकालमें सव संसारको सूक्ष्मरूपकरके अपनेमें मिलाय ले ॥ स्थविष्ठः ॥ स्थूलोंसे वहुत स्थूल १ ॥ स्थविरः पुराने ॥ ध्रुवः ॥ जो सदा अचल रहै यह दोनों पदोंसे एक नाम ठहरा ॥ पुराने कैसे कि अचल ॥ १९ ॥

**अग्राह्यः शाश्वतः कृष्णो लोहिताक्षः प्रतर्दनः ॥**
**प्रभूतस्त्रिककुब्धाम पवित्रं मंगलं परम् ॥ २० ॥**

अग्राह्यः ॥ जिसका ग्रहण इंद्रियोंसे न हो सकै ॥ शाश्वतः सबकालमें रहनेवाले ॥ कृष्णः ॥ कृषि नाम सत्ता ण नाम सुख ॥ प्रमाण-कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः । विष्णुस्तद्भावयोगाच्च कृष्णो भवति शाश्वतः ॥ १ अर्थात् सत्तारूप और सुखरूप है १ जिसका वर्ण श्याम है २ लोहिताक्षः ॥ लालडोरे हैं जिसकी आंखमें १ ॥ प्रतर्दनः ॥प्रलयमें जगत्के नाशकर्त्ता १॥ प्रभूतः ॥ सब ऐश्वर्यसे पूर्ण ॥ ६० नाम ॥ त्रिककुब्धाम ॥ ऊपर-नीचेबीच तीनों दिशाके आधार वा उनके प्रकाश करनेवाले १ ॥ ॥ पवित्रम् ॥ पवित्र करनेवाले ऋषिरूप देवतारूप मंत्ररूपहोके १ ॥मंगलं परम् ॥ सव मंगलोंसे उत्तम १ ॥ विष्णुपुराणका प्रमाण॥ अशुभानि निराचष्टे तनोति शुभसंततिम् ॥ स्मृतिमात्रेण यत्पुंसां ब्रह्म तन्मंगलं विदुः ॥ २० ॥

**ईशानः प्राणदः प्राणो ज्येष्ठः श्रेष्ठः प्रजापतिः ॥**
**हिरण्यगर्भो भूगर्भो माधवो मधुसूदनः ॥ २१ ॥**

ईशानः ॥ जीवमात्रके प्रेरक १ ॥ प्राणदः ॥ प्राणके दाता १ कालरूप होके प्राणके हर्ता २ प्राण नाम इंद्रियोंको दर्शन श्रवण मननकरनेसे शुद्धकरनेवाले ३ इंद्रियोंको छेदन करनेवाले नाम अंधा गूँगा बहिरा करनेवाले ४ ॥ प्राण ॥ श्वास लेनेवाले १ जीवरूप वा परमात्मारूपसे २ प्राणस्वरूप ३ ॥ ज्येष्ठः ॥ सबके बड़े बूढ़े ॥ श्रेष्ठः ॥ अतिप्रशंसायोग्य १ ॥ प्रजापतिः ॥ ईश्वररूप होके ब्रह्मासे लेकर तिनुकेतक सब प्रजाके पति नाम पालनहार १ ॥ हिरण्यगर्भः सुवर्णरूप अंडेके भीतर रहनेवाले १ ब्रह्मारूप २ भूगर्भः ॥ सबकी आधारभूत पृथ्वी जिसके गर्भमें है ॥ माधवः ॥ लक्ष्मीके पति १ मधुविद्या जो छांदोग्य उपनिषद्में कही है उस विद्यासे जो जाननेवाले वा विद्यासे जो जाना जाय २ मधुसूदनः ॥ मधु नाम दानवके हंता ॥ २१ ॥

**ईश्वरो विक्रमी धन्वी मेधावी विक्रमः क्रमः ॥**
**अनुत्तमो दुराधर्षः कृतज्ञः कृतिरात्मवान् ॥ २२ ॥**

ईश्वरः ॥ सर्वशक्तिमान् १॥ विक्रमी शूर १॥ धन्वी॥ धनुषधारी १॥ भगवतवचनसेप्रमाण ॥ रामःशस्त्रभृतामहम्॥ मेधावी ॥सब शास्त्रोंके धारणकरनेकी बुद्धि रखनेवाले १ ॥ विक्रमः ॥ तीनोंलोकमें पांव फैलावनेवाले विराट्रूप १ विनाम पक्षी गरुड़पर सवार होके चलनेवाले ॥ क्रमः ॥ जो सबमें आपही चलै १ प्राणियोंके चलावनेवाले २ ॥ अनुत्तमः ॥ जिससे कोई दूसरा उत्तम नहीं ॥१॥ ८० नाम ॥ दुराधर्षः ॥ जिसको दैत्यलोग अपना प्रताप न दिखाय सकैं १ ॥ कृतज्ञः ॥ जीवोंके कर्मोंके जाननेवाले १ थोडी पूजनको बहुत करके माननेवाले फल फूल पत्र चढ़ावनेसे मुक्तिफल देनेवाले २ ॥ कृतिः ॥ सबको पुरुषार्थरूप १ पुरुषोंके क्रियारूप २ पुरुषकी कृपामें जो प्रेरक समझा जाय क्योंकि सबके आधार

रूप हैं ॥ ३ ॥ आत्मवान् ॥ अपनी महिमामें जो सदा स्थित रहै ॥ २२ ॥

**सुरेशः शरणं शर्म विश्वरेताः प्रजाभवः ॥**
**अहः संवत्सरो व्यालः प्रत्ययः सर्वदर्शनः ॥ २३ ॥**

सुरेशः ॥ देवतोंके स्वामी १ ॥ शरणम् ॥ दुःखीजनोंके दुःखहर्ता १ ॥ शर्म ॥ परमानंदरूप १ ॥ विश्वरेताः ॥ जगत्के कारण १ ॥ प्रजाभवः ॥ सबप्रजाके उत्पन्न करनेवाले १ ॥ अहः ॥ प्रकाशरूप दिनकी तरह १ ॥ संवत्सरः ॥ कालरूप विष्णु ॥ ९० नाम ॥ व्यालः ॥ सांपकी तरह जो पकड़नेमें न आवै जैसे मस्तहाथी नहीं पकड़ा जाय वैसे दैत्यादिक उनको नहीं बसकर सकते १ ॥ प्रत्ययः ॥ प्रतीतिरूप १ ॥ सर्वदर्शनः॥ सबकी आँखोंसे आत्मारूप होकर आप देखनेवाले ॥ २३ ॥

**अजः सर्वेश्वरः सिद्धः सिद्धिः सर्वादिरच्युतः ॥**
**वृषाकपिरमेयात्मा सर्वयोगविनिःसृतः ॥ २४ ॥**

अजः॥जिसका जन्म नहीं १॥ सर्वेश्वरः ॥सब ईश्वरोंकेईश्वर १॥ सिद्धः ॥ सदा बने बनाये जैसे उचित हैं वैसे तैयार १ ॥ सिद्धिः ॥ सबजगत्में चैतन्यरूप १ सबसे उत्तम फलरूप क्योंकि स्वर्गादिक नाशवान् हैं और परमेश्वरकी प्राप्ति अविनाशी है २ ॥ सर्वादिः ॥ सबजातके आदि ॥ अच्युतः ॥ जिसकी सामर्थ्य तीनों कालमें न घटै ॥ १०० नाम ॥ वृषाकपिः ॥ वृष नाम धर्म जो सबकामनाको बरसावै १ क नाम जल जो पृथ्वीकी रक्षा जलसे करै सो कपि अर्थात् वराह भगवान् दोनों पदसे एक नाम वृषाकपि भया तिसका अर्थ धर्मरूप ॥ इसमें व्यासका प्रमाण है ॥ कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च धर्मश्च वृष उच्यते ॥ तस्माद् वृषाकपिं प्राह

कश्यपो मां प्रजापतिः ॥ १ ॥ अमेयात्मा ॥ जिसके स्वरूपका कोई प्रमाण न करसकै कि इतना है ॥ सर्वयोगविनिःसृतः ॥ सब संबंधसे रहित १ सबशास्त्रमें कहे हुए जो योग हैं उनसे जानेगये २ ॥ २४ ॥

**वसुर्वसुमनाः सत्यः समात्मा संमितः समः ॥**
**अमोघः पुंडरीकाक्षो वृषकर्मा वृषाकृतिः ॥ २५ ॥**

वसुः ॥ प्राणियोंमें वसनेवाले १ जिसमें सबप्राणी वसैं २ आठौं वसुमें पावक नाम वसु ३ ॥ वसुमनाः ॥ उत्तम है मन जिसका १ प्रशस्त रागद्वेषादिक क्लेशसे और मानमदमोहादिक उपक्लेशादिसे रहित ऐसा मन जिसका होय सो वसुमनाः ॥ सत्यः ॥ सत्यरूप जो तीनों कालमें अबाधित है १ मूर्तिमान् अमूर्तिमान् २ स नाम प्राण त नाम अन्न य नाम सूर्य प्राणरूप सूर्यरूप अन्नरूप है ३ भक्तों में जो क्षमाशील है ४ ॥ समात्मा ॥ सम नाम रागद्वेषादिकसे रहित है आत्मा जिसकी १ सब भूतोंमें एक है आत्मा जिसकी२॥ संमितः॥ सब पदार्थोंसे मित नाम प्रमाण किये गये १ असंमितनाम किसी पदार्थसे जिसका प्रमाण नहीं हो सकता२॥समः॥सबकालमें सब विकारसे रहित १ मा नाम लक्ष्मीके सहित२॥ अमोघः॥जिसके पूजा स्तुति स्मरण निष्फल नहीं १ जिसका संकल्प व्यर्थ नहीं होता २ ॥ ११० नाम ॥ पुंडरीकाक्षः॥ हृदयकमलमें अक्ष नाम घर है जिसका १ ॥ कमलके पत्रसे नेत्र हैं जिसके २ ॥ वृषकर्मा ॥ धर्मयुक्त हैं कर्म जिसके ॥ वृषाकृतिः ॥ धर्मके वास्ते जो आकृति नाम अवतार धारण करते हैं ॥ २५ ॥

**रुद्रो बहुशिरा बभ्रुर्विश्वयोनिः शुचिश्रवाः ॥**
**अमृतः शाश्वतः स्थाणुर्वरारोहो महातपाः ॥ २६ ॥**

रुद्रः ॥ संहारकालमें प्रजाको रुदन करावनेवाले १ रुदन नाम दुःख जो दुष्टोंको दुःख दे सो रुद्र २ रु नाम दुःख वा दुःखका कारण उसको जो द्रवावै नाम नाश करै सो रुद्र ३ ॥ लिंगपुराणका वचनप्रमाण ॥ रुदुःखं दुःखहेतुं वा विद्रावयति यः प्रभुः । रुद्र इत्युच्यते तस्माच्छिवः परमकारणम् ॥ १ ॥ बहुशिराः ॥ अनंतशिरवाले ॥ बभ्रुः ॥ लोकके धारणकरनेवाले वा पालन करनेवाले ॥ विश्वयोनिः ॥ जगत्के कारण ॥ शुचिश्रवाः ॥ पवित्रकारक हैं जिनके नाम वा यश ॥ अमृतः ॥ जो न मरै ॥ शाश्वतः स्थाणुः ॥ जो निरंतर स्थिर ॥ १२० नाम ॥ वरारोहः ॥ उत्तम है आरोह नाम अंक जिसका १ श्रेष्ठ है शेषशय्या जिसके वास्ते २ श्रेष्ठ है जीवोंका आरोह नाम चढ़ना जिस पदमें अर्थात् जिस पदको पहुँचके फेर न आवै ॥ महातपाः ॥ समग्रसृष्टिका पूर्णज्ञान है जिसको १ ॥ बडा है जिसका ऐश्वर्य प्रताप २ ॥ २६ ॥

**सर्वगः सर्वविद्भानुर्विष्वक्सेनो जनार्दनः ॥**
**वेदो वेदविदव्यंगो वेदांगो वेदवित्कविः ॥ २७ ॥**

सर्वगः ॥ जो सब जगह कारणरूप होके व्याप्त है ॥ सर्ववित् ॥ सब जाननेवाला १ सत्यसंकल्प है इसवास्ते जो संकल्प करते हैं सोई होता है २ ॥ भानुः ॥ जो प्रकाशमान है जो सर्ववित् और प्रकाशमान है सोई ॥ सर्वविद्भानुः ॥ दोनों पद मिलके एक नाम भया ॥ विष्वक्सेनः ॥ जिसकी थोड़ी ही क्रियासे दैत्योंकी सेना विष्वक् नाम चारों तरफ भागजाय ॥ जनार्दनः ॥ दुष्ट जनोंको जो मारै १ अथवा नरकादिमें डालै २ भक्त लोग जिससे मांगै ३ ॥ वेदः ॥ जो अपने मार्गको जतावै ॥ वेदवित् ॥ वेदके अर्थको यथार्थ जाननेवाले १ वेदके अर्थको धारण करनेवाले २ ॥ अव्यंगः ॥

व्यक्तिरहित ॥ वेदांगः ॥ जिसके अंगसे वेद उत्पन्न भये हैं १ वेदरूप २ ॥ १३० नाम ॥ वेदवित् वेदको विचारनेवाले १ ॥ कविः ॥ जो पदार्थ इंद्रियोंसे न देखा जाय उसके देखनेवाले ॥ २७ ॥

**लोकाध्यक्षः सुराध्यक्षो धर्माध्यक्षः कृताकृतः॥**
**चतुरात्मा चतुर्व्यूहश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्भुजः ॥ २८ ॥**

लोकाध्यक्षः ॥ सब लोकके प्रधान नाम द्रष्टा १ सब लोकके योगक्षेम करनेवाले २ ॥ सुराध्यक्षः ॥ देवतोंके स्वामी १ उनके शत्रुओंके हंता और मनोरथोंके देनेवाले२ ॥ धर्माध्यक्षः ॥ धर्म और अधर्मको साक्षात् देखनेवाले और उसका फलदेनेवाले ॥ कृताकृतः ॥ कृत कार्यरूप अकृत कारणरूप ॥ चतुरात्मा ॥ स्वर्गादिकमें पृथक् चार चार मूर्ति जिसकी हैं जैसे; सृष्टिकालमें ब्रह्मा १ दक्षादिप्रजापति २ काल ३ सब जीव ४ और पालनकालमें विष्णु१ मन्वादिक २ काल३ सब भूत ४ संहार कालमें रुद्र १मृत्यु२ काल ३ सब भूत४ यह तीनों कालमें भगवान्की विभूति हैविष्णुपुराणमें लिखा है ॥ चतुर्व्यूहः॥ चार हैं व्यूह नाम विभाग जिसके वासुदेव १ संकर्षण २ प्रद्युम्न३ अनिरुद्ध४ चार रूप हैं जिसके ॥ चतुर्दंष्ट्रः ॥ चार डाढवाले श्रीनृसिंह १ चार डाढवाले वराह भगवान् २ ॥ चतुर्भुजः ॥ चारभुजावाले ॥ १४० नाम ॥ २८ ॥

**भ्राजिष्णुर्भोजनं भोक्ता सहिष्णुर्जगदादिजः॥**
**अनघो विजयो जेता विश्वयोनिः पुनर्वसुः ॥ २९॥**

भ्राजिष्णुः॥सदा प्रकाशरूप॥भोजनम्॥ भोज्यरूप जो माया है सो है भोजन ॥ भोक्ता ॥ पुरुषरूप होकर मायाके भोगनेवाले ॥ सहिष्णुः ॥ दैत्योंको हरावनेवाले ॥ जगदादिजः ॥

हिरण्यगर्भरूप होके जगत्के आदिमें प्रगट होनेवाले ॥ अनघः ॥ पापदुःखव्यसनसे रहित ॥ विजयः ॥ ज्ञानवैराग्यऐश्वर्यादिगुणोंसे जगत्को जीतनेवाले ॥ जेता ॥ स्वभावकरके सब भूतोंको अच्छी तरह जीतनेवाले ॥ विश्वयोनिः ॥ विश्व है योनि जिसकी १ ॥ विश्वरूपसे कार्यरूप और योनिरूपसे कारणरूप है २ ॥ पुनर्वसुः ॥ वारंवार जीवरूप होके शरीरमें वसनेवाले ॥ १५० नाम ॥ २९ ॥

उपेंद्रो वामनः प्रांशुरमोघः शुचिरूर्जितः ॥
अतींद्रः संग्रहः सर्गो धृतात्मा नियमो यमः॥३०॥

उपेंद्रः ॥ इंद्रके समीप छोटे भाई बनके रहनेवाले १ उपारि नाम गोलोकके इंद्र २॥ वामनः ॥ वामन अवतार १ जिसका भजन देवता करैं२॥प्रांशुः॥ बहुत लंबे चौडे बलिके दानसमयमें जो रूप धराथा१ ॥ अमोघः ॥ जिसका व्यापार व्यर्थ नहीं १ ॥ शुचिः ॥ स्मरण पूजा स्तुति करनेवालोंको जो पवित्र करै १ ॥ ऊर्जितः ॥ परमबलवान् ॥ अतींद्रः ॥ स्वाभाविक ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्यादिकसे इंद्रको जीतनेवाले ॥ संग्रहः ॥ संहारकालमें सबको बटोरलेनेवाले ॥ सर्गः॥ सृष्टिरूप १ सृष्टिके कारणरूप २ ॥ धृतात्मा ॥ एकरूपसे स्थिर है आत्मा नाम स्वरूप जिसका॥१६० नाम ॥ नियमः॥ अपने अपने अधिकारमें प्रजाको लगानेवाले ॥ ॥ यमः ॥ ॥ सबके हृदयमें बैठके सबको अपने अपने कामोंमें लगावनेवाले ॥ ३० ॥

वेद्यो वैद्यः सदायोगी वीरहा माधवो मधुः ॥
अतींद्रियो महामायो महोत्साहो महाबलः॥३१॥

वेद्यः॥ मोक्षार्थियोंके जानने योग्य ॥वैद्यः ॥वेदादि सब विद्या

ओंसे जानने योग्य ॥ सदायोगी ॥ सदा आत्मज्ञानका योग है जिसको ॥ वीरहा ॥ धर्मसेतुके नाशक जो असुर वीर हैं उनके हंता ॥ माधवः ॥ मा नाम ब्रह्मविद्या उसके पति ॥ हरिवंशका प्रमाण ॥ मा विद्या च हरेः प्रोक्ता तस्या ईशो यतो भवान्॥तस्मान्माधवनामासि धवः स्वामीति शब्दितः ॥ १ ॥ मधुः॥ मधुनाम अमृत उसकी तरह अत्यंत आनंद देनेवाले ॥ अतींद्रियः ॥ इन्द्रियोंकी जहाँ पहुँच नहीं ॥ महामायः ॥ सब मायावियोंसे बड़े मायावी ॥ १७० नाम ॥ महोत्साहः ॥ जगत्के उत्पत्ति स्थिति प्रलय करनेमें बड़ा उत्साह जिसको ॥ महाबलः ॥ सब बलवानोंसे बली ॥ ३१ ॥

**महाबुद्धिर्महावीर्यो महाशक्तिर्महाद्युतिः ॥**
**अनिर्देश्यवपुः श्रीमानमेयात्मा महाद्रिधृक् ॥ ३२ ॥**

महाबुद्धिः ॥ सब बुद्धिमानोंसे बड़े बुद्धिमान् ॥ महावीर्यः ॥ जिसका अविद्यारूप बड़ापराक्रम जो गतिका कारण है ॥ महाशक्तिः ॥ बडी सामर्थ्यवाले ॥ महाद्युतिः ॥ भीतर बाहर महाप्रकाशरूप ॥ अनिर्देश्यवपुः ॥ जिसका शरीर ऐसा कहनेके योग्य नहींहै कि यही है ॥ श्रीमान् ॥ ऐश्वर्यरूपलक्ष्मीवाले ॥ अमेयात्मा ॥ जिनका आत्मा नाम बुद्धि प्रमाणसे बाहर है ॥ महाद्रिधृक् ॥ बड़े पर्वतके उठावनेवाले, समुद्रमथनमें कच्छपरूपसे मंदराचलको, वा ब्रजरक्षामें कृष्णरूपसे गोवर्द्धनको धारणकरनेवाले ॥ १८० नाम ॥ ३२ ॥

**महेष्वासो महीभर्ता श्रीनिवासः सतांगतिः ॥**
**अनिरुद्धः सुरानंदो गोविंदो गोविदांपतिः ॥ ३३ ॥**

महेष्वासः ॥ बड़ाहै धनुष जिसका ॥ महीभर्ता ॥ वराहरूपसे पृथ्वीको धारण करनेवाले ॥ श्रीनिवासः ॥ जिसकी छातीमें स्वर्णरेखारूप लक्ष्मी वसे ॥ सतांगतीः ॥ सत् नाम वैदिकसाधुओंके गति नाम मोक्षदाता १ ॥ अनिरुद्धः ॥ जिसको कोई शत्रु रोक न सकै ॥ ॥सुरानंदः ॥ ॥ देवतोंके आनंद देनेवाले ॥ गोविंदः ॥ वराहरूपसे पृथ्वीके धारण करनेवाले १ गायोंके इंद्र २ गो नाम वेदरूपवाणीसे पावनेवाले ३ ॥ गोविदांपतिः ॥ वेदवाणी जाननेवालोंके पति ॥ ३३ ॥

**मरीचिर्दमनो हंसः सुपर्णो भुजगोत्तमः ॥**
**हिरण्यनाभः सुतपाः पद्मनाभः प्रजापतिः ॥ ३४ ॥**

मरीचिः ॥ तेजस्वियोंमें बडे तेजस्वी ॥ दमनः ॥ यमादिकरूपसे जो प्रजा अधिकार पायके प्रमत्तहोय उनके दंड देनेवाले ॥ १९० नाम ॥ हंसः ॥ मैं वही हूं ऐसी भावनाकरनेवालोंको संसारबंधनसे छोडावनेवाले १ सब शरीरोंमें बिंबरूप और प्रतिबिंबरूपसे रहनेवाले २ ॥ सुपर्णः ॥ सबके हृदयमें जो भलीभाँति गमन करे १ सुंदर पंखवाले गरुड़जी २ ॥ भुजगोत्तमः ॥ शेषवासुकीरूपसे भुजंग नाम टेढ़ेचलनेवालोंमें उत्तम ॥ हिरण्यनाभः ॥ सुवर्णकी तरह सुंदर है नाभि जिसकी १ ॥ हि नाम हितकारक रण्य नाम रतिकारक है नाभि जिसकी ध्यानकरनेवालोंको २ ॥ सुतपाः ॥ बदरिकाश्रममें नरनारायणरूपसे उत्तम ज्ञानरूप तप करनेवाले १ ॥ मन और इंद्रियोंका एकाग्र होना परम तप है यह स्मृतिमें लिखा है ॥ पद्मनाभः ॥ कमलकी तरह सुंदर गोल है नाभि जिसकी १ हृदयकमलमें प्रकाशमान २ ॥ प्रजापतिः ॥ प्रजाओंके पति ॥ ३४ ॥

अमृत्युः सर्वदृक् सिंहः संधाता संधिमान् स्थिरः ॥
अजो दुर्मर्षणः शास्ता विश्रुतात्मा सुरारिहा ॥ ३५ ॥

अमृत्युः ॥ मृत्यु नाम विनाश उसका कारण तिससे रहित ॥ सर्वदृक् ॥ सब जगत्के शुभाशुभ कर्म देखनेवाले अपने स्वाभाविक ज्ञान शक्तिसे ॥ सिंहः ॥ दैत्यरूपमृगोंके हंता ॥ २०० नाम ॥ संधाता ॥ जीवोंके कर्मके पूरे फल देनेवाले ॥ संधिमान् ॥ जीवरूप होके संधि नाम कर्मोंके फल भोगनेवाले स्थिरः ॥ सदा एकरूप ॥ अजः ॥ भक्तोंके हृदयमें रहनेवाले १ दैत्योंपर बाण चलानेवाले २ ॥ दुर्मर्षणः ॥ जिसके प्रतापको दानवादि सह न सकैं ॥ शास्ता ॥ श्रुति स्मृतिशास्त्रोंकरके सबके शिक्षा देनेवाले ॥ विश्रुतात्मा ॥ बहुत प्रसिद्ध सत्यज्ञानादिकरूप आत्मा ॥ सुरारिहा ॥ ॥ देवतोंके शत्रुनाशक ॥ ३५ ॥

गुरुर्गुरुतमो धाम सत्यः सत्यपराक्रमः ॥
निमिषोऽनिमिषः स्रग्वी वाचस्पतिरुदारधीः ॥ ३६ ॥

गुरुः ॥ सब विद्याके उपदेश करनेवाले १ सबके पिता २ ॥ गुरुतमः ॥ ब्रह्मादिकोंको ब्रह्मविद्या सिखावनेवाले ॥ २१० नाम ॥ धाम ॥ ज्योतिरूप १ सब कामनाके रहनेकी जगह २ ॥ सत्य ॥ सत्यवचनरूप १ जगत् जो दिखाई देताहै उसमें परमसत्यरूप आप है ॥ सत्यपराक्रमः ॥ सत्यहै पराक्रम जिसका ॥ पर नाम शत्रु उसको जो दबावै सो पराक्रम कहावै ॥ निमिषः ॥ योगनिद्रासे आँख मूँदनेवाले ॥ ॥अनिमिषः ॥ नित्य प्रबुद्धस्वरूप १ मत्स्यअवतारमें पलकरहित २ ॥ स्रग्वी ॥ पञ्चतन्मात्रारूपी वैजयंतीमालावाले॥ ॥ वाचस्पतिः ॥ उदा-

रधीः ॥ वाणीके पति, उदार नाम सब पदार्थके ज्ञाताहै बुद्धि जिसकी ॥ यह दोनों पदसे एक नाम है ॥ ३६ ॥

**अग्रणीर्ग्रामणीः श्रीमान्न्यायो नेता समीरणः ॥**
**सहस्रमूर्द्धा विश्वात्मा सहस्राक्षः सहस्रपात्॥ ३७ ॥**

अग्रणीः ॥ मुमुक्षु लोगोंको अग्रनाम उत्तम पद देनेवाले ॥ ग्रामणीः ॥ चतुर्विधभूतग्रामके नायक ॥ चार प्रकारके भूत हैं अंडज अंडेसे जो उत्पन्न होय पक्षी सर्पादिक १ पिंडज मनुष्य पश्वादिक २ स्वेदज जुआं मच्छर कीडे ३ उद्भिज्ज वृक्षलतादिक ४ ॥ श्रीमान् ॥ सबसे अधिक शोभावाले ॥ २२० नाम ॥ न्यायः ॥तर्कशास्त्रसे प्रमाणपूर्वक जिसका ज्ञान होय ॥नेता ॥ जगत्को निबाहनेवाले ॥ समीरणः ॥ प्राणवायुरूपसे सब जीवोंके प्रेरक ॥सहस्रमूर्द्धा ॥ अनंत हैं शिर जिसके ॥ विश्वात्मा ॥ सब जगत्के आत्मा अंतर्यामीरूप ॥ सहस्राक्षः ॥ अनंतनेत्रवाले १ अनंत इंद्रियवाले २ ॥ सहस्रपात् ॥ अनंतपैरवाले ॥ ३७ ॥

**आवर्त्तनो निवृत्तात्मा संवृतः संप्रतर्दनः ॥**
**अहःसंवर्त्तको वह्निरनिलो धरणीधरः ॥ ३८ ॥**

आवर्तनः ॥ संसारचक्रके घुमावनेवाले ॥ ॥ निवृत्तात्मा ॥ जिसका आत्मा नाम स्वरूप संसारबंधनसे निवृत्त है ॥ संवृतः ॥ मायासे ढकेहुए ॥ २३०नाम ॥ संप्रतर्दनः ॥ रुद्रकालादिकरूपसे जगत्के संहार करावनेवाले ॥ अहःसंवर्तकः ॥ दिनके करनेवाले सूर्य ॥ वह्निः ॥ अग्निरूप होके देवतोंको आहुति पहुँचावनेवाले ॥ अनिलः ॥ जो नाश न होय १ वायुरूप २ जैसे वायु सुगंध दुर्गंधको ग्रहण करके आप शुद्ध रहता है वैसे पुण्यपापसे पृथक् रहनेवाले ॥ धरणीधरः ॥ शेषरूपसे अथवा वराहरूपसे पृथ्वीके धारणकरनेवाले ॥ ३८ ॥

**सुप्रसादः प्रसन्नात्मा विश्वधृग्विश्वभुग्विभुः ॥**
**सत्कर्त्ता सत्कृतः साधुर्जह्नुर्नारायणो नरः ॥ ३९ ॥**

सुप्रसादः ॥ सुंदर है प्रसाद नाम रीझ जिसकी जैसे शिशुपालादि शत्रुओंको भी मुक्ति दयी ॥ ॥ प्रसन्नात्मा ॥ ॥ रजोगुण तमोगुणसे रहित आत्मा नाम अंतःकरण जिसका १ दयालुस्वभाववाले २ पूर्णकाम होनेसे प्रसन्नःहै आत्मा जिसकी ॥ ३ ॥ विश्वधृक् ॥ ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्यादिकसे जगत्को तुच्छ जाननेवाले १ ॥ विश्वभुक् ॥ प्रलयकालमें महाकालरूपसे जगत्को भोजनकरनेवाले १ विष्णुरूपसे जगत्के पालक २ ॥ विभुः ॥ अनेकरूपहोनेवाले ॥ २४० नाम ॥ सत्कर्ता ॥ सत्कार करनेवाले १ ॥ सत्कृतः ॥ पूजितोंके पूजित ॥ १ ॥ साधुः ॥ लोक वेदके अनुकूल आचरण करनेवाले १ सब चहोतीवस्तुके सिद्धकरनेवाले २ ॥ जह्नः ॥ संसारकालमें जनोंके हंता १ विमुखजनोंको त्यागनेवाले२भक्तोंको परमपदके दाता ३ ॥ नारायणः ॥ नर नाम आत्मा तिससे उत्पन्न भये पंचभूतादिको नार कहते हैं अयन नाम घर पंचभूतमें कारणरूप होके जो रहै उसको नारायण कहै १ महाभारतका प्रमाण "नराज्जातानि तत्त्वानि नाराणीति विदुर्बुधाः ॥ तान्येव चायनं तस्य तेन नारायणः स्मृतः" ॥ १ ॥ प्रलयकामें नर नाम जीवोंके अयन नाम निवासस्थान २ नार नाम जलमें अयन नाम घर है जिसके अर्थात् हिरण्यगर्भरूप ३ जीवसमूह नार तिसमें वसे सो नारायण ४ जीवसमूहका अयन नाम ज्ञान है जिसको सर्वज्ञरूप ॥ नरः ॥ जीवोंको कर्ममें लगावनेवाले १ कर्मका फल देनेवाले २ ॥ ३९ ॥

**असंख्येयोऽप्रमेयात्मा विशिष्टः शिष्टकृच्छुचिः ॥**
**सिद्धार्थः सिद्धसंकल्पः सिद्धिदः सिद्धिसाधनः॥४०॥**

असंख्येयः ॥ जिसके नामरूप कर्म गिनतीमें न आवें १ ॥ अप्रमेयात्मा ॥ जिसके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान न हो सकै १ ॥ विशिष्टः ॥ सबसे उत्तम बड़े शिष्ट १ ॥ शिष्टकृत् ॥ शिक्षाकरने वाले १ शिष्टजनोंके पालक २५० नाम ॥ शुचिः ॥ मायासे रहित ॥ १ ॥ सिद्धार्थः ॥ सिद्ध है मनोरथ जिसका ॥ १ ॥ सिद्ध संकल्पः ॥ सत्य है संकल्प जिसका १ ॥ सिद्धिदः ॥ कर्मके फल तथा योग देनेवाले ॥ १ ॥ सिद्धिसाधनः ९ ॥ भक्तोंको अणिमादिक सिद्धि और मुक्तिके दाता ॥ ४० ॥

वृषाही वृषभो विष्णुर्वृषपर्वा वृषोदरः ॥
वर्धनो वर्द्धमानश्च विविक्तः श्रुतिसागरः ॥ ४१ ॥

वृषाही ॥ वृष नाम धर्म द्वादशाहादिक यज्ञके अह नाम प्रकाश अर्थात् आपही उसके कर्ता हैं और भक्ता भी हैं १ ॥ वृषभः ॥ भक्तोंकी कामनाके वर्सनेवाले ॥ १॥ विष्णुः ॥ लोकके आक्रमण करनेवाले ॥ १ ॥ वृषपर्वा ॥ जिसकी प्राप्ति ही धर्मसे होय ॥१॥ वृषोदरः ब्रह्मादि सब प्रजा जिसके उदरसे उत्पन्न होय ॥ २६० नाम ॥ वर्द्धनः ॥ भक्तोंकी पूजाके फलको बढ़ावनेवाले १ जैसे सुदामके तंडुलका फल बढाया ॥ वर्द्धमानः ॥ जगत्रूप होके बढनेवाले ॥ १ ॥ विविक्तः ॥ वर्तमानः होकर भी जगत्से न्यारे श्रुतिसागरः ॥ वेदके समुद्र १ जिसमें वेदशास्त्ररूपी समुद्र वास करै ॥ ४१ ॥

सुभुजो दुर्धरो वाग्मी महेंद्रो वसुदो वसुः ॥
नैकरूपो बृहद्रूपः शिपिविष्टः प्रकाशनः ॥ ४२ ॥

सुभुजः ॥ जिसकी भुजा जगत्की रक्षाकरनेवाली बहुत सुंदर हैं॥१॥दुर्धरः ॥ जिसको कोई धारण न कर सके १ योगी लोग

जिसको ध्यानमें बहुतदुःखसे धारण नाम ठहराय सकैं १॥वाग्मी॥ उत्तम वेदरूप वाणीके धारण करनेवाले १ ॥ महेंद्रः ॥ ईश्वरोंके ईश्वर ॥ १ ॥ वसुदः ॥ धनक देनेवाले १ ॥ वसुः ॥ धनस्वरूप १ मायाकरके अपने रूपको छिपावनेवाले ॥ अधरमें वास करनेवाले ॥ २७० नाम॥ नैकरूपः ॥ जिसका एकरूप नहीं १ ॥ बृहद्रूपः ॥ बहुतबड़ा रूप वराहादिक १ ॥ शिपिविष्टः ॥ शिपि नाम पशु विष्टः नाम प्रवेश करनेवाले यज्ञपशुरूप १ शि नाम जल पि नाम पान करनेवाले अर्थात् जलकी शोषनेवाली किरनवाले सूर्यरूप २ अंतर्यामी ३॥ ॥ प्रकाशनः ॥ सबके प्रकाशक ॥ ४२ ॥

ओजस्तेजोद्युतिधरः प्रकाशात्मा प्रतापनः ॥
ऋद्धः स्पष्टाक्षरो मंत्रश्चंद्रांशुर्भास्करद्युतिः ॥ ४३ ॥

ओजस्तेजोद्युतिधरः॥ ॥ओज नाम बल तेज नाम शूरतादिगुण द्युति नाम प्रकाशबलशौर्यादिगुण और प्रकाशके धारण करनेवाले १ बलरूप तेजरूप द्युतिनाम ज्ञानके धारणकरनेवाले २ पहिले अर्थमें तीनों विशेषणका एक नाम है दूसरे अर्थमें तीन नाम हैं ॥ प्रकाशात्मा ॥ प्रकाशरूप है मूर्ति जिसकी॥ १॥प्रतापनः॥सूर्यरूपसे जगतके प्रकाशक १ सूर्यसंकर्षणादिरूपसे जगत्को भस्म करनेवाले २ ॥ ऋद्धः ॥ धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्यादिकसे पूर्ण १ ॥ स्पष्टाक्षरः ॥स्पष्ट है अक्षर जिसका अर्थात् प्रणवरूप ॥ ॥ मंत्रः ॥ तीनोंवेदके मंत्ररूपी मंत्रसे जिसका ज्ञान होय २८० नाम ॥ चंद्रांशुः ॥ संसारके तापको चांदकी किरणवत् हरनेवाले ॥ १ ॥ भास्करद्युतिः ॥ सूर्यकी तरह जगत्के प्रकाशक ॥ ४३ ॥

**अमृतांशूद्भवो भानुः शशबिंदुः सुरेश्वरः ॥**
**औषधं जगतः सेतुः सत्यधर्मपराक्रमः ॥ ४४ ॥**

अमृतांशूद्भवः ॥ ॥ समुद्र मथनकरके चंद्रमाको निकासनेवाले॥ १ ॥ भानुः॥ ॥ सदाप्रकाशमान ॥ १॥शशबिंदुः॥शश नाम मृग बिंदु नाम चिह्न है जिसके सो चंद्रमाकी तरह प्रजाको पोषणकरनेवाले १ ॥ सुरेश्वरः ॥ सु नाम सुंदरफल र नाम दाता ऐसे जो देवता उनके ईश्वर ॥ औषधम् ॥ संसाररूप रोगके औषध ॥ १ ॥ जगतःसेतुः ॥ जगत्के पार उतरनेकेवास्ते सेतु १ जगत्के वर्णाश्रमधर्मके सेतु नाम मर्यादापालक २ ॥ सत्यधर्मपराक्रमः ॥ जिसके धर्म नाम ज्ञानवैराग्यादिक और पराक्रम सामर्थ्य सत्य है ॥ ४४ ॥

**भूतभव्यभवन्नाथः पवनः पावनोऽनलः ॥**
**कामहा कामकृत्कांतः कामः कामप्रदः प्रभुः ॥ ४५ ॥**

भूतभव्यभवन्नाथः ॥ भूत भविष्य वर्तमान तीनोंकालके प्राणियोंके स्वामी १ उन प्राणियों करके जो प्रार्थित होय २ प्रलयकालमें प्राणियोंके नाथ नाम नाश करनेवाले प्रजाके सृष्टिकालमें आशिषदेनेवाले ४ स्थितिकालमें प्रजाको सत्कर्ममें लगानेवाले ५ ॥ २९० नाम ॥ पवनः ॥ पवित्र करनेवाले १ वायुरूप ॥ पावनः पवित्र करानेवाले जिसके भयसे वायु चलता है ॥ १ ॥ अनलः ॥ अन नाम प्राण ल नाम ग्रहण करनेवाला जीवरूप १ नल नाम गंध उसकरके रहित २ जिसका प्राण नहीं क्योंकि अनंत है ॥ १ ॥ कामहा ॥'मुमुक्षुभक्तोंके' विषयकामनाके हंता १ हिंसकोंके साधुपीडादि कामनाके नाशक ॥ २ ॥ कामकृत् ॥ सात्त्विक भक्तोंकी कामना पूरी करनेवाले १ काम नाम प्रद्युम्नके

जनक २ ॥ कांतः ॥ मनोहररूप १ क नाम ब्रह्माको दूसरे परार्द्धके अंतमें नाशकरनेवाले ॥ १ ॥ कामः ॥ मुमुक्षु लोग जिसकी कामना करैं १ ॥ कामदः ॥ भक्तोंकी कामनासे अधिक देनेवाले १ ॥ प्रभुः बहुत होनेवाले ॥ ४५ ॥

युगादिकृद्युगावर्तो नैकमायो महाशनः ॥
अदृश्यो व्यक्तरूपश्च सहस्रजिदनंतजित ॥ ४६ ॥

युगादिकृत ॥ ॥ युगसंवत्सरमासादिका करता १ युगोंका प्रारंभ करनेवाला ॥ ३०० नाम ॥ युगावर्त्तः सत्ययुगादि को वारंवार घुमावनेवाले ॥ १ ॥ नैकमायः ॥ ॥ अनेकप्रकारकीमाया रचनेवाले ॥ १ ॥ महाशनः ॥ प्रलयकालमें सब जगतके खानेवाले ॥१॥ अदृश्यः॥ सबकी बुद्धि औरइंद्रियोंसे लखा न जाय॥१ व्यक्तरूपः ॥ ॥ प्रगट है स्थूलरूप जिसका १ योगियोंके हृदयमें स्वयंप्रकाशरूपसे प्रगट होनेवाले २ ॥ सहस्रजित् ॥ हजारों असुरोंके जीतनेवाले१ ॥अनंतजित् ॥ अनंतजीवोंको युद्धादि सब लीलामें जीतनेवाले ॥ ४६ ॥

इष्टोऽविशिष्टः शिष्टेष्टः शिखंडी नहुषो वृषः ॥
क्रोधहा क्रोधकृत्कर्ता विश्वबाहुर्महीधरः ॥ ४७ ॥

इष्टः ॥ ॥ परमादनरूप होनेसे सबको प्रिय १ यज्ञादि करके पूजित २ ॥ अविशिष्टः ॥ ॥ सबके हृदयमें समानरूपसे अंतर्यामीरूपहोके रहनेवाले ॥ १ ॥ शिष्टेष्टः ॥ शिष्ट नाम उत्तमजनोंके इष्ट १ शिष्टजन जिनको प्यारे हैं २ शिष्टजनों करके पूजित ३ ॥ ३१० ॥ शिखण्डी ॥ मोरमुकुटवाले ॥ १ ॥ नहुषः ॥ अपनी मायासे जीवोंको बांधनेवाले ॥ १ ॥ वृषः॥ धर्मरूप होके कामनाके बरसावनेवाले १ ॥क्रोधहा ॥ ॥ साधुजनोंके क्रोधहंता १

क्रोधकृत् ॥ दुष्टोंके क्रोधबढावनेवाले १ ॥ कर्ता जगत्के १ क्रोधकृत् नाम दुष्टजनोंके कर्ता नाम मारनेवाले ॥ दोनों पदसे एक नाम ॥ विश्वबाहुः ॥ जिसकी बाहु सबका आधार है १ सब तरफ जिसकी भुजा है ॥२॥ महीधरः ॥ पृथ्वीके धारण करनेवाले १ पूजाके धारण करनेवाले २ ॥ ४७ ॥

अच्युतः प्रथितः प्राणः प्राणदो वासवानुजः ॥
अपांनिधिरधिष्ठानमप्रमत्तः प्रतिष्ठितः ॥ ४८ ॥

अच्युतः ॥ ॥ षड्भावविकारसे रहित ॥ छः विकार जन्म लेना १ अस्ति नाम रहना २ वर्धते नाम बढना ३ विपरिणमते नाम रूपका बदलजाना ४ अपक्षीयते नाम घटना ५ नश्यते नाम नाशहोना ६॥ प्रथितः॥ पालनादिकमें प्रसिद्ध ॥ १ ॥प्राणः॥ प्रजाको प्राणरूपसे जिलावनेवाले ॥ ३२० नाम ॥ प्राणदः ॥ सुरोंको बलदेनेवाले १ असुरोंके बलके नाशक ॥ १ ॥ वासवानुजः ॥ ॥इंद्रकेछोटेभाई १ अपांनिधिः ॥ समुद्ररूपसे जलकेघर ॥ १ ॥ अधिष्ठानम् ॥ जिसमें सबभूत वासकरें कारण रूप ब्रह्म ॥ १ ॥ अप्रमत्तः ॥ कर्मके अनुकूल फल देनेमें सावधान १ ॥प्रतिष्ठितः ॥ अपनी महिमामें स्थित ॥ ४८ ॥

स्कंदः स्कंदधरो धुर्यो वरदो वायुवाहनः ॥
वासुदेवो बृहद्भानुरादिदेवः पुरंदरः ॥ ४९ ॥

स्कन्दः ॥ ॥ अमृतरूप होके बहनेवाले १ वायुरूप होके जगत्के शोषनेवाले २ ॥ स्कंदधरः ॥ धर्मपथके धारण करने-वाले ॥ १ ॥ धुर्यः ॥ सब जगत्का जन्मस्थितिलयरूपी बोझ उठावनेवाले ॥ वरदः ॥ ॥ वांछित वरदेनेवाले १ वरनाम गऊ उसे दान देनेवाले यजमानरूप होके २ ॥ ३३० नाम ॥

वायुवाहनः ॥ ॥ सातों वायुके चलानेवाले नाम सातों वायुके आवह १ प्रवह २ अनुवह ३ संवह ४ विवह ५ परावह ६ परिवह ७ सातों वायुके स्थान यह हैं-मेघ और पृथ्वीके बीचमें आवह १ मेघ और सूर्यके बीचमें प्रवह २ सूर्यचांदके बीचमें अनुवह ३ चांद और नक्षत्रोंके बीचमें संवह ४ नक्षत्र और ग्रहोंके बीचमें विवह ५ ग्रह और सप्तऋषिके बीचमें परावह ६ सप्तऋषि और ध्रुवके बीचमें परिवह ७॥ वासुदेवः ॥ जो सबमें वसै वा सबको ढकलेवै देव नाम क्रीडा करै अथवा विवाह करै वा प्रकाश करै वा जिसकी सब स्तुतिकरैं वा मुमुक्षुलोग जहां प्राप्त हों सो देव ॥ प्रमाण महाभारतका ॥ " वासनात्सर्वभूतानां स्तुत्यो यो देवयोनिषु ॥ वासुदेवस्ततो ज्ञेयो योगिभिस्तत्त्वदर्शिभिः " ॥ १ ॥ बृहद्भानुः ॥ बडी है भानु नाम किरण जिसकी १ चंद्रसूर्यमें प्रकाशकरनेवाली और जगत्को प्रकाश करनेवाली २ ॥ आदिदेवः ॥ आदि नाम कारणरूप देव ॥ पुरंदरः ॥ देवतोंके शत्रुओंके पुर नाम गांवके विदारण करनेवाले ॥ ४९ ॥

**अशोकस्तारणस्तारः शूरः शौरिर्जनेश्वरः ॥**
**अनुकूलः शतावर्त्तः पद्मी पद्मनिभेक्षणः ॥ ५० ॥**

अशोकः ॥ ॥ शोकादिषडूर्मीसे रहित ॥१॥ "क्षुत्पिपासा जरामृत्यू शोकमोहौ षडूर्मयः " ॥ तारणः ॥ संसारार्णवसे तारनेवाले ॥ १ ॥ तारः ॥ गर्भ जन्म जरा मृत्युके भयसे तारनेवाले ॥ १ ॥ शूरः ॥ बडे पराक्रमवाले ॥ १ ॥ शौरिः शूरसेनके कुलमें उत्पन्न ॥ ३४० ॥ जनेश्वरः ॥ जन नाम जंतुके ईश्वर ॥१॥ अनुकूलः ॥ आत्मारूपसे सबको अनुकूल १

जिसका कोई प्रतिकूल नहीं २॥ ॥ शतावर्त्तः ॥ ॥ धर्मकी रक्षाके वास्ते सब पदार्थोंमें वर्त्तमान १ प्राणरूपसे सैकडों नाडियोंमें वर्त्तमान ॥ २ ॥ पद्मी ॥ पद्म है जिसके हाथमें ॥ १ ॥ पद्मनिभेक्षणः ॥ ॥ कमलकी रोशनी जिसकी आँखोंमें ॥ ५० ॥

**पद्मनाभोऽरविंदाक्षः पद्मगर्भः शरीरभृत् ॥**
**महर्द्धिर्ऋद्धो वृद्धात्मा महाक्षो गरुडध्वजः ॥ ५१ ॥**

पद्मनाभः ॥ ॥ ब्रह्मा जिसमें पैदा हुवा ऐसा कमल है जिसकी नाभिमें १ कमलके भीतर जो गुच्छा है उसके बीचकी किरणोंमें बसे सो पद्मनाभ२ ॥ अरविन्दाक्षः ॥ कमलकीसी आँखोंवाले १॥ पद्मगर्भः ॥ योगियोंका दिल जो कमलकी सुरत है उसको गर्भ नाम बीचमें रहै १ ॥ शरीरभृत् ॥ विनारूप होके वा प्राणरूप होके सब शरीरोंको धारै १ वा अपनी मायासे सब शरीरोंको धारै २ ॥ महर्द्धिः ॥ बडी विभूतिवाला ॥ ३५० ॥ ऋद्धः ॥ प्रपंचरूप होके बढै जो ॥ १ ॥ वृद्धात्मा ॥ पुराना है आत्मा जिसका ॥ १ ॥ महाक्षः ॥ बडी आँखोंवाला १ गरुडध्वजः ॥ जिसकी ध्वजामें गरुडकी मूर्ति है ॥ ५१ ॥

**अतुलः शरभो भीमः समयज्ञो हविर्हरिः ॥**
**सर्वलक्षणलक्षण्यो लक्ष्मीवान् समितिंजयः ॥ ५२ ॥**

अतुलः ॥ ॥ जिसके समान कोई नहीं १ गीतामें कहा है कि, तुम्हारे समान कोई नहीं ॥ भारी है यश जिसका २ यह श्रुतिहै ॥ शरभः ॥ शरनाम शरीर सब शरीरोंमें आत्मारूप होके भासै ॥ १ ॥ भीमः ॥ जिससे सब डरैं १ भक्तोंको अभय देनेसे अभीमः ॥ २ ॥ समयज्ञः ॥ सृष्टि स्थिति प्रलयको सबजानै १ सबभूतोंमें समदृष्टि होना यही पूजा है जिसकी२ जिसका आराधन

समभाव है ॥ २ ॥ हविर्हरिः ॥ यज्ञोंमें आहुति ग्रहणकरनेवाला १ हविष्यका ग्राहक २ गीतामें कहा है-मैं सब यज्ञोंका भोक्ता और प्रभु हूँ स्मरणसे पुरुषोंकी अविद्या दूरकरनेवाला ॥ श्याम अर्थात् हरितवर्ण ॥ व्यासका वचन ॥ हराम्यघं च स्मर्तॄणां हविर्भागं क्रतुष्वहम् ॥ वर्णश्चमेहरिश्रेष्ठस्तस्माद्धरिरहं स्मृतः ॥ ३ ॥ सर्वलक्षणलक्षण्यः ॥ सर्वतरहके प्रमाणोंसे जो जाना जाय १ साधु सर्वलक्षलक्षण्य होते हैं परमार्थरूप होनेसे २ ॥ ३६० ॥ नाम ॥ लक्ष्मीवान् ॥ जिसके हृदयमें नित्य लक्ष्मी वसै ॥ १ ॥ समितिंजयः ॥ समिति नाम लड़ाईको जीतनेवाला १ जिसकी जय शुद्ध है २ ॥ ५२ ॥

**विक्षरो रोहितो मार्गो हेतुर्दामोदरः सहः ॥**
**महीधरो महाभागो वेगवानमिताशनः ॥ ५३ ॥**

विक्षरः ॥ दूर हुवा है नाश जिसका १ ॥ रोहितः ॥ रोहितनाम रोहूमछलीका रूप १ वराहरूप २ ॥ मार्गः ॥ परमानंदका रस्ता १ मुक्तिका मार्ग २ ॥ हेतुः ॥ जगतका हेतु उपादानकारण निमित्त कारण होनेसे १ ॥ दामोदरः ॥ दमादिकसाधनोंसे प्राप्त होनेवाला १ यशोदाजीने जिसके पेटमें रस्सी लगाकर बाँधा २ ॥ सहः ॥ सब जीवोंका तिरस्कार क्षमा करै १ (सहनकरै) ॥ महीधरः ॥ पर्वतरूप होकर पृथ्वीको धारै १ वराहरूपहोकर पृथ्वीको उठावै २ ॥ महाभागः ॥ अपनी इच्छासे बड़े शरीर १ अतिश्रेष्ठ शरीर २ भाग्यजन्यके भोगोंको भोगनेवाला ३ अवतारोंमें बड भोगोंका लेनेवाला ४ ॥ ३७० नाम ॥ वेगवान् ॥ जल्दी दौडनेवाला वेदूनचले १ मनसे भी अधिक है वेग जिसका २ ॥ अमिताशनः प्रलय कालमें बे प्रमाण भोजन करने वाला १ ॥ ५३ ॥

**उद्भवः क्षोभणो देवः श्रीगर्भः परमेश्वरः ॥**
**करणं कारणं कर्ता विकर्ता गहनो गुहः ॥ ५४ ॥**

उद्भवः ॥ संसारकी उत्पत्तिका उपादानकारण १ उद्गत नाम पृथक् है भव नाम संसारसे २ ॥ क्षोभणः ॥ प्रकृति और पुरुषमें प्रवेश करके क्षोभकरै १ ॥ विष्णुपुराणका वचन है प्रकृति और पुरुषमें आत्मा प्रवेशकरके क्षोभ करता है और आप सदा अविनाशी रहता है ॥ देवः ॥ सर्गादि नाम उत्पत्ति पालन संहारसे पीडा करै १ प्रकाश करे २ असुरोंको जीतै ३ सब भूतोंको धारै ४ आत्मा करके प्रकाश करै ५ स्तुतिके योग्य ६ सब देशकाल सब वस्तुमें व्याप्त ७ ॥ श्रुतिमें कहा है कि एक देव हैसब भूतोंमें छिपा हुवा सर्व व्यापी है सबका साक्षी है ॥ श्रीगर्भः ॥ जगत्रूप श्री है जिसके गर्भमें १ ॥ परमेश्वरः ॥ सबसे पर और प्रेरणा करनेवाले १ ॥ करणम् ॥ जगत्की उत्पत्तिका साधकतम ॥ कारणम् ॥ निमित्तकारण उपादानकारण ॥ कर्ता ॥ स्वतंत्र १ ॥ विकर्ता ॥ ३८० नाम ॥ विचित्र लोकोंका करनेवाला १ गहनः ॥ जिसके स्वरूप और सामर्थ्य और चेष्टाको कोई भी न जानै १ ॥ गुहः ॥ अपनी माया करके आपही छिप जाय १ ॥५४॥

**व्यवसायो व्यवस्थानः संस्थानः स्थानदो ध्रुवः ॥**
**परर्द्धिः परमः स्पष्टस्तुष्टः पुष्टः शुभेक्षणः ॥ ५५ ॥**

व्यवसायः ॥ सत्चित्मात्र ॥ व्यवस्थानः ॥ सब जगत्का स्थान १ सबलोकपालोंसे लेकर अधिकार पूर्वक अण्डज पिंडज स्वेदज उद्भिज्ज चारों वर्णाश्रमके विभाग करनेवाले२ ॥ संस्थानः ॥ प्रलयकालमें जहाँ सब भूत स्थान करैं १ प्रलयरूपी स्थान है जिसका २ ॥ स्थानदः॥ ध्रुव ब्रह्मादादिभक्तोंको यथायोग्यस्थानके

दाता १॥ध्रुवः॥ अविनाशी १ ॥परर्द्धिः॥ ॥सबसे श्रेष्ठविभूतिवाले १ ॥ परमःस्पष्टः ॥ परमनाम शांति ज्ञानरूप स्वतंत्रहोनेसे स्पष्ट १ सब सिद्धि जिसके अधीन हैं २ ॥ ३९०नाम॥तुष्टः॥ परमानंदरूप पुष्टः ॥ सदा सब जगह एकरूप ॥ शुभेक्षणः ॥ शुभकारी है दृष्टि जिसकी १ मुमुक्षुजनोंको मोक्ष कामेप्सुजनोंको काम पापी लोगोंको दंडदेनेवाला २ सर्व संदेहजन्य हृदयकी ग्रंथि और अविद्या जिसकी दृष्टिसे दूर होय ३ जिसकी दृष्टिसे कर्मका नाश होय ४ ॥ श्रुति कहती है कि, हृदयकी गांठ जिसकी दृष्टि खोलती है ॥ ५५ ॥

रामो विरामो विरजो मार्गो नेयो नयोऽनयः ॥
वीरःशक्तिमतां श्रेष्ठो धर्मो धर्मविदुत्तमः ॥ ५६ ॥

रामः ॥ जिसमें योगी लोग रमणकरें १ योगियोंके हृदयमें रमणकरे २ आत्मामें रमणकरे ३ अपनी इच्छासे रमणीय सुंदर शरीर धारनेवाला ४ रघुकुलमें अवतारलेनेवाला ५ ॥ विरामः॥ जगत्का विश्राम नाम आधार वा अवसान है जिसमें १ जगत् जिसमें अंतकालमें प्रवेश करै २ ॥ विरजः ॥ रजोगुणसे निवृत्त १ जिसका वीर्य नाम पराक्रम आकाशसे भी परे है २ ॥ मार्ग ॥ जिसे जानके मुमुक्षु अमर होते है उसी राहको मार्ग कहते हैं श्रुतिमें कहा है कि मुमुक्षुका यही ज्ञानमार्ग है १॥ नेयः ॥ प्राप्त होनेवालेको नेय कहते हैं, पहुँचावनेवालेको नेता कहते हैं, मार्ग कहते हैं,नेय कहते हैं, सुखसे उत्तम मार्गनामब्रह्मज्ञानसे जीवोंको परमात्मास्वरूपकी प्राप्ति करै ॥ अनयः ॥ जिसका कोई प्रेरक नहीं॥४००नाम ॥ वीरः ॥ पराक्रमवाला ॥ शक्तिमतांश्रेष्ठः ॥ ब्रह्मादिक शक्तिमानोंसे श्रेष्ठ ॥ धर्मः ॥ जिसको सबभूत धारण करै सो धर्म यह बडा सूक्ष्म धर्म है १ धर्मकरके

जिसका आराधन होय २ ॥ धर्मविदुत्तमः ॥ धर्मजाननेवालोंमें उत्तम श्रुति स्मृति जिसकी आज्ञा है धर्मके जाननेवाले अवतारादिकसे भी उत्तम ॥ ४०० नाम ॥ ५६ ॥

**वैकुंठः पुरुषः प्राणः प्राणदः प्रणवः पृथुः**
**हिरण्यगर्भः शत्रुघ्नो व्याप्तो वायुरधोक्षजः ॥ ५७ ॥**

वैकुंठः ॥ ॥ नानाप्रकारकी गतिका दाता विविध नाम नाना प्रकारकी कुंठः नाम गति विकुंठा नाम नगरीके कर्ता पंचभूतका जगत्के आरंभमें इकट्ठा करनेवाला १ ॥ पुरुषः ॥ सब शरीरोंमें सोनेवाला १ सब पापोंका सादननाम नाशकरनेवाला २ ॥ प्राणः ॥ जीवरूप होकर रक्षाकरै १ प्राणरूप होकर चेष्टा करावै २ संसाररूपहोकर चेष्टा करावै ३ विष्णुपुराणमें वचन है ॥ प्राणदः ॥ प्रलयमें प्राणोंको खंडन करनेवाला १ सृष्टिके आदिमें प्राण देने वाला २ ॥ प्रणवः पवित्रकरनेवाला इसी कारण श्रुति अकार उकार मकारको प्रणव कहती है १ जिसको नमस्कार करै यह सनत्कुमारका वचन है २ ॥ पृथुः ॥ प्रपंचरूप होकर विस्तार करै ॥ ४१० नाम॥ हिरण्यगर्भः ॥ सृष्टिका कारण १ हिरण्यरूप ब्रह्मांडका बीज गर्भमें है जिसके २ ॥ शत्रुघ्नः ॥ देवतोंके शत्रुनके मारनेवाले १ ॥ व्याप्तः ॥ सबका कारण सबमें व्याप्त ॥ वायुः ॥ सबमें सुगंधरूप १ गीतामें वचन है कि, पृथ्वीमें सुगंध मैं हूँ २ ॥ अधोक्षजः ॥ किसीसे नीचे क्षीन न हो १ स्वर्ग और पृथ्वी जिसके नीचे है ॥ ५७ ॥

**ऋतुः सुदर्शनः कालः परमेष्ठी परिग्रहः ॥**
**उग्रः संवत्सरो दक्षो विश्रामो विश्वदक्षिणः ॥ ५८॥**

ऋतुः ॥ कालात्मा ऋतुशब्द है ॥ सुदर्शनः ॥ सुनाम मोक्ष दर्शननाम ज्ञान है जिसका १ शोभावान् कमलपत्रसे नेत्रवाले २

अपनी इच्छासे सुन्दररूप धारने वाले ३ भक्तोंको जिसका दर्शन सुख देवै ४ ॥ कालः ॥ कालहोकर सबको खाय १ लोकके क्षयकरनेको में काल हूँ २ गीतायें कहा है ॥ परमेष्ठी ॥ परनाम उत्तम है महिमा जिसकी १ हृदयरूपी आकाशमें है स्थिति जिसकी २ ॥ परिग्रहः ॥ ४२० नाम ॥ जो शरण आवै उसको सब ओरसे ग्रहण करै १ सर्वगत २ सर्वज्ञ ३ ॥ उग्रः ॥ सूर्यादिकको भयदाता १ जिसके भयसे पवन पवित्र करता है और सूर्य तपता है यह श्रुति कहती है॥ संवत्सरः ॥ भूत जिसमें सुखसे वसैं ॥ दक्षः॥ जगद्रूप होकर वर्द्धमान होय १ सर्वभूतको तत्क्षण उत्पन्न करै २ ॥ विश्रामः ॥ संसारसागरसे व्यासादिकको षडूर्मि अविद्यासे और पंचक्लेश और मदमात्सर्यादि पंचउपक्लेशसे सब मुमुक्षुजनोंको छुटादेनेवाले ॥ विश्वदक्षिणः ॥ सब संसारसे सामर्थी १ विश्वके रचनेमें दक्ष नाम चतुर ॥ ५८ ॥

**विस्तारः स्थावरस्थाणुः प्रमाणं बीजमव्ययम् ॥**
**अर्थोऽनर्थो महाकोशो महाभोगो महाधनः ॥५९॥**

विस्तारः ॥ ॥ जिसमें जगत्का विस्तार है ॥ स्थावरस्थाणुः॥ स्वभाविक स्थिति है जिसकी १ पृथ्वी आदिक स्थित हैं जिसमें २ स्थावरस्थाणु एकनाम है ॥ प्रमाणम् ॥ ज्ञानात्मा द्वारा सबका प्रमाण रूप १ प्रत्यक्षादिक प्रमाणोंसे प्रमाण है जिसका २ ॥ बीजम् ॥ अन्यथा भाव विना सबका कारण १ ॥ अव्ययम् ॥ नाशरहित॥बीजमव्ययम् ॥ एकनाम है ॥ अर्थः ॥ सुखरूप जिसकी प्रार्थना करै १ ॥४३० नाम॥ अनर्थः ॥ पुनरकाम जिसको कुछ अर्थ नाम काम नहीं ॥ महाकोशः ॥ अन्नमयकोशादिक जिसके बडेबडे भंडार हैं १ ॥ महाभोगः ॥

सुखरूप भोग है जिसके ॥ महाधनः ॥ भोगोंका साधन-लक्षणरूप महाधन है जिसके ॥ ५९ ॥

अनिर्विण्णः स्थविष्ठोऽभूर्धर्मयूपो महामखः ॥
नक्षत्रनेमिर्नक्षत्री क्षमः क्षामः समीहनः ॥ ६० ॥

अनिर्विण्णः ॥ सब काम प्राप्त होनेसे अशोच ॥ स्थविष्ठः ॥ विराटरूप होनेसे स्थित ॥ अग्नि जिसका शिर है सूर्य चांद जिसकी आखें हैं १ पूर्णकामनाहोनेसे जिसको कुछ पीडा नहीं है २ ॥ अभूः ॥ ॥ जन्मादिकसे रहित १ सत्तारूप २ पृथ्वीरूप ३ ॥धर्मयूपः ॥ यज्ञस्तम्भरूप १ पशुकी तरह जो आराधनरूपी धर्मसें बँधा है २ ॥ महामखः ॥ यज्ञादिक जिसका अर्पणकरनेसे निर्वाणमोक्षफल: मिलै इसी कारणसे यज्ञका फल महान् हो जाता है १ ॥ नक्षत्र नेमिः ॥ नेमि नाम चक्र सूर्यादि नवग्रह और तारोंको शिशुमारचक्रके हृदयमें वायुचक्रमें चक्ररूप होकर फिरावे ॥ ४४० नाम ॥ नक्षत्री ॥ चन्द्ररूप नक्षत्रोंमें चांदरूप मैं हूँ यह गीतामें कहा है १ ॥ क्षमः ॥ सब कामोंमें समर्थ १ क्षमा जिसका स्वभाव है २ पृथ्वीकी तरह क्षमा है जिसको ३ ॥ क्षामः ॥ सब विकारोंके नाश हो जाने पर आत्मारूप होकर जो रहै १ ॥ समीहनः ॥ सृष्टि करनेमें भली प्रकार चेष्टाकरनेवाला ॥ ६० ॥

यज्ञ इज्यो महेज्यश्च क्रतुः सत्रं सतां गतिः ॥
सर्वदर्शी विमुक्तात्मा सर्वज्ञो ज्ञानमुत्तमम् ॥ ६१ ॥

यज्ञः ॥ सर्वयज्ञस्वरूप सब देवतोंके तृप्तिकारण यज्ञस्वरूप १ यज्ञ विष्णु है यह श्रुति कहती है ॥ इज्यः ॥ सबके इष्टदेव १ फलके दाता इज्य नाम पूज्य जो देवता और पितरोंका पवित्र

यज्ञ करते हैं सो आत्माका पूजन करते हैं ॥ यह हरिवंश पुराणमें कहा है ॥ महेज्यः ॥ सब पूज्योंमें पूज्यतम मोक्षफल देनेसे १ ॥ क्रतुः ॥ स्तंभसहित यज्ञका नाम क्रतु है १ ॥ सत्रम् ॥ आसनादि उपाय जिस यज्ञके लक्षण हैं १ सत्पुरुषोंके रक्षक २ ॥ सतां गतिः ॥ मुमुक्षुजनोंको नानाप्रकारकी गति १ ॥ ४९० नाम ॥ सर्वदर्शी ॥ ॥ सबका पाप पुण्य देखने वाला १ ॥ विमुक्तात्मा ॥ स्वभावहीसे मुक्तनाम छुटा है आत्मा जिसका ॥ सर्वज्ञः ॥ वही सर्व है वही ज्ञानयोग्य है यह जगत् जो दिखाई देता है सो आत्मा है यह श्रुति कहती है ॥ ज्ञानमुत्तमम् ॥ एक नाम है ॥ ज्ञानरूप श्रेष्ठ १ जन्मरहित अनवच्छिन्न नाम आदि अन्त रहित सर्वका साधक परमात्मा ब्रह्म सब है सत्य है आनंद है ज्ञान है यह श्रुति कहती है ॥ ६१ ॥

**सुव्रतः सुमुखः सूक्ष्मः सुघोषः सुखदः सुहृत् ॥**
**मनोहरो जितक्रोधो वीरबाहुर्विदारणः ॥ ६२ ॥**

सुव्रतः ॥ उत्तम शोभित है व्रत जिसका सब भूतोंको अभय देता हूँ यह मेरा व्रत है यह रामायणमें रामजीका वचन है व्रतनाम नियम ॥ सुमुखः ॥ सुंदरमुखवाले १ आनंदरूप मनोहर मुख कमलसे नेत्र विष्णुपुराणमें लिखा है २ वनयात्राके समय श्रीरामचंद्रका मुख परम सुहावनाभया पिताका वचन राज्यसे भी प्यारा माना, यह रामायणमें लिखा है ३ ब्रह्मको सर्वविद्याके उपदेश करनेसे सुंदरमुख ४ ॥ जिसने ब्रह्माको उत्पन्न करके वेद दिया सब वेदोंको प्रकाश किया यह श्रुतिने कहा है ॥ सूक्ष्मः ॥ इंद्रियोंका विषय नहीं १ शब्दादि जो विषयके कारण पंचभूत हैं उनसे रहित नाम जुदा २ बारीकसे बारीक ३ सर्वगत नाम सबमें व्यापक यह श्रुति है ॥ सुघोषः ॥ सुहावना है शब्द

जिसका १ श्रुतिरूप मेघकी तरह गंभीर वचन २ ॥ सुखदः॥ भले जनोंको सुखदाता १ दुर्जनोंका सुख दूरकरनेवाला २ ॥ सुहृत् ॥ वेदून सेवा और बदला चाहनेका उपकार करनेवाला ॥ ४६० नाम॥ मनोहरः ॥ परमानंदरूपसे मनहरनेवाला जो भूमा नाम व्यापक है सोई सुख है १ यह श्रुति कहती है ॥ जितक्रोधः ॥ क्रोधका जीतनेवाला १ वेदमार्ग थापे २ विना क्रोध असुरोंको मारे ३ ॥ ॥ वीरबाहुः ॥ देवतोंके वैरियोंको मारे १ वेदकी मर्यादा स्थापन करै २ बड़ी पराक्रमी बाहुवाले ३ ॥ विदारणः ॥ अधर्मियोंको नाश करै ॥ ६२ ॥

स्वापनः स्ववशो व्यापी नैकात्मा नैककर्मकृत् ॥
वत्सरो वत्सलो वत्सी रत्नगर्भो धनेश्वरः ॥ ६३ ॥

स्वापनः ॥ अज्ञानी जनोंको मायामें सुलावै नाम आत्मबोधसे रहित करै १ ॥ स्ववशः ॥ सृष्टिकी उत्पत्ति स्थिति और लय जिसके वशमें है १ ॥ व्यापी ॥ आकाशकी तरह व्यापक सब कार्योंमें कारणरूप होकर १ ॥ नैकात्मा ॥ अनेकात्मा होकर जगत्रूप १ जगत्की उत्पत्ति स्थिति प्रलयके वास्ते अनेकरूपसे विराजमान २ ॥ नैककर्मकृत् ॥ जगत्की उत्पत्तिसे आदि लेकर अनेक कर्म करै १ ॥ वत्सरः ॥ सब जगत् जिसमें वसै ॥ वत्सलः ॥४७० नाम ॥ जगत्पर दयालु, भक्त जिसको प्यारे हैं२॥ वत्सी ॥ वत्सोंका पालक नाम जगत्का पिता उसके सब बेटे हैं १ ॥ रत्नगर्भः ॥ रत्न है गर्भमें जिसके ऐसा समुद्र जिसके गर्भमें है ॥ धनेश्वरः ॥ धनोंका मालिक १ यक्षोंमें कुबेर मैं हूँ यह गीतामें कहा है ॥ ६३ ॥

धर्मगुब्धर्मकृद्धर्मी सदसत्क्षरमक्षरम् ॥
अविज्ञाता सहस्रांशुर्विधाता कृतलक्षणः ॥ ६४ ॥

धर्मगुप् ॥ धर्मोंके रक्षक धर्म की रक्षाके हेतु युगयुगमें अवतार लेताहूँ १ यह गीताके ४ अध्यायमें कहा है ॥ धर्मकृत् ॥ धर्म करने वाला वेदमर्यादाके स्थापनके वास्ते धर्मकरनेवाला १ धर्म अधर्मसे रहित भी है परन्तु धर्म मर्यादा स्थापन करे है २ ॥ धर्मी ॥ धर्मोंका धारण करनेवाला १ ॥ सदसत् ॥ सत्तामात्र सत्रूप जगत्से सतरूप पहिले यह सत्पदका अर्थ है असत् जगत्रूप होकर असत् नाम रूपविकार असत् है १ यह श्रुति है ॥ क्षरः सब भूतरूप जगत् होकर क्षरनाम नाशवान् है १ ॥ ४८० नाम ॥ अक्षरः ॥ कूटस्थ गीतामें लिखा है कूटस्थ अचलरूप जगत् ध्रुव है ॥ अविज्ञाता ॥ आत्माको कर्ता माननेसे दुर्बल शक्ति होगई है जिसकी ऐसा जो है जीव उसको विज्ञाता कहते हैं उसका प्रतिद्वंद्व अविज्ञाता नाम सर्वज्ञ ॥ सहस्रांशुः ॥ जिसके किरण सूर्यादिक ज्योतिवालोंमें चमक रही है सूर्य उसीके तेजसे प्रकाश करता है १ यह श्रुति कहती है ॥ जो तेज सूर्य चंद्र अग्निमें है वह मेरा ही तेज है यह गीतामें कहा है ॥ विधाता ॥ सब भूतोंका धारनेवाला १ शेष दिग्गजादि जो जगत्के आधार हैं उनका भी धारनेवाला २ ॥ कृतलक्षणः ॥ सदा चैतन्यरूप १ शास्त्रादिकके कर्ता २ सजातीय विजातीयके विच्छेद लक्षणका कर्ता ३ श्रीवत्सरूप लक्ष्मी है लक्षण जिसका नाम ४ ॥ ६४ ॥

गभस्तिनेमिः सत्त्वस्थः सिंहो भूतमहेश्वरः ॥
आदिदेवो महादेवो देवेशो देवभृद्गुरुः ॥ ६५ ॥

गभस्तिनेमिः ॥ गभस्तिनाम सूर्य मंडलकी किरण उसमें

सूर्यरूप होकर वसै १ ॥ सत्त्वस्थः ॥ प्रकाश सतोगुणमें प्रधान होकर वसै १ सत्त्व अंतः करण सबजीवके अंतः करणमें स्थित २ ॥ सिंहः ॥ सिंहकी तरह बलवान् नृपदके लोप होनेसे नृसिंहका नाम सिंह है ॥ भूतमहेश्वरः ॥ सब भूतोंका बड़ा ईश्वर १ भूतनाम जीव उनमें बड़ा२ ॥ आदिदेवः ॥ सब भूतोंका आदिकर्ता ॥ ४९० नाम ॥ महादेवः ॥ महादेवजीके सिवाय सब देवतोंको अपने आत्मज्ञानसें योगरूपी ऐश्वर्यमें लय करै १ सबभावोंको आत्मज्ञान योग ऐश्वर्यमें जो पूज्य होय सो महादेव यह श्रुति कहती है ॥ देवेशः ॥ सब देवतोंका ईश नाम मालिक १ ॥ देवभृद्गुरुः ॥ देवतोंके सरदार इंद्र उनके गुरु १ देवतोंका और सबविद्याका पालक सब विद्याका धारण करनेवाला ॥ ६५ ॥

उत्तरो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्यः पुरातनः ॥
शरीरभूतभृद्भोक्ता कपींद्रो भूरिदक्षिणः ॥ ६६ ॥

उत्तरः ॥ संसारसागरसे तारनेवाला १ सबसे श्रेष्ठ सबसे उत्तम इंद्र है यह श्रुति है ॥ गोपतिः ॥ गोपनाम अहीर बनकर गौवोंको पालै गोनाम पृथ्वी उसका पति नाम पालक२ ॥ गोप्ता ॥ जगतका पालक ॥ ज्ञानगम्यः ॥ केवल ज्ञानसे ही मिलने योग्य कर्महीसे नहीं ॥ पुरातनः ॥ जो सदा रहै पुराना १ सबसे पहिले जो होय २ ॥ शरीरभूतभृत ॥ शरीरके कारण प्राणरूप होकर पंचभूतका धारण करनेवाला भोक्ता ॥ पालनेवाला १ अनंतरूपसे जगत्का भोग करनेवाला २ ॥ ५०० नाम ॥ ॥कपींद्रः ॥कपिनाम बराह कपिनाम बंदरोके इंद्र रामचन्द्ररूप१ ॥ भूरिदक्षिणः ॥ भूरिनाम बहुत यज्ञरूप धर्म और मर्यादारूपी यज्ञ बहुत दक्षिणावाले करै १ ॥ ६६ ॥

**सोमपोऽमृतपः सोमः पुरुजित्पुरुसत्तमः ॥**
**विनयो जयः सत्यसंधो दाशार्हः सात्वतां पतिः ६७॥**

सोमपः ॥ सोमलताके पीनेवाले यज्ञमें देवतारूप १ धर्मकी मर्यादा दिखातेहुये यजमानरूप होकर सोमलता पीनेवाले २ ॥ अमृतपः ॥ आत्मारूपी अमृतका पीनेवाला १ समुद्रसे निकला हुआ अमृत असुरोंसे छीनके देवतोंको पिलावै और आप पिये २ ॥ सोमः ॥ चन्द्रमा होके औषधोंको पुष्ट करनेवाला १ मैं चन्द्रमारूप होके औषधोंको पुष्टकरता हूँ,यह गीता में कहा है उमा नाम पार्वतीके साथ रहनेवाला शिव २ ॥ पुरुजित् ॥ पुरु नाम बहुतको जीतनेवाला १ ॥ पुरुसत्तमः ॥ विश्वरूपको पुरु कहते हैं सत्तम नाम श्रेष्ठ १ ॥ विनयः ॥ विनय नाम दण्ड दैत्य और दुष्ट प्रजाको जो दण्ड दे १ ॥ जयः ॥ सब भूतोंको जय करै ॥ सत्यसंधः ॥ संध नाम संकल्प जिसका सत्य है १ सत्यसंकल्प है यह श्रुति कहती है ॥ ५१० नाम ॥ दाशार्हः ॥ दाश नाम दान उसके योग्य १ यदुकुलमें जन्में २ ॥ सात्वतांपतिः ॥ तंत्रको निर्माणकरै १ सात्त्वतनाम यादवोंके अंशसे उत्पन्न २ सतोगुणी पुरुषोंका पति ३ ॥ ६७ ॥

**जीवो विनयितासाक्षी मुकुंदोऽमितविक्रमः ॥**
**अंभोनिधिरनंतात्मा महोदधिशयोन्तकः ॥६८॥**

जीवः ॥ क्षेत्रज्ञरूप होकर प्राणोंको धारणेवाला १॥ विनयितासाक्षी ॥ धर्म युक्त जीवोंको साक्षात्जानै १ आत्मासे जुदा कोई पदार्थ जो न देखै २ ॥ मुकुंदः ॥ मुक्ति [illegible] दाता ॥ अमितविक्रमः ॥ अनंतपराक्रमवाला १ तीन पैरसे तीन लोकनापै २ बडी शूरता है जिसकी ॥ ३ अंभोनिधिः ॥ अंभ

नाम देवतादिक जिसमें लय होते हैं १ देव पितृ मनुष्य असुर इन चारोंका नाम अंभस यह श्रुति है २ अंभोनिधि नाम समुद्र तालाबोंमें समुद्र मैं हूँ ॥ यह गीतामें कहा है ॥ अनंतात्मा ॥ जिसको किसी देश किसी काल किसी वस्तुमें नियम न कर सकैं १ ॥ महोदधिशयः ॥ प्रलय करके सब भूतों समेत समुद्रमें शयन करै १ ॥ अंतकः ॥ ॥ भूतोंको अन्त करै १ ॥ ५२० नाम ॥ ६८ ॥

**अजो महार्हः स्वाभाव्यो जितामित्रः प्रमोदनः ॥**
**आनंदो नंदनो नंदः सत्यधर्मा त्रिविक्रमः ॥६९॥**

अजः ॥ जिसका जन्म नहीं १ अजनाम कामका है ॥ महार्हः बडी पूजाके योग्य ॥ स्वाभाव्यः ॥ स्वभाव करके सदा सिद्धरूप १ ॥ जितामित्रः ॥ रावणादिक बाहरके शत्रु और काम क्रोधादिक भीतरके शत्रुको जीतनेवाले ॥ प्रमोदनः ॥ ज्ञानियोंको आत्माका स्वाद अमृतरूप नित्य देनेवाला १ और कथनकरनेसे हर्ष देनेवाला २ ॥ आनंदः ॥ आनंदस्वरूप १ जिस आनंदका लेश सर्व भूतोंमें है यह श्रुति है ॥ नन्दनः ॥ आनंददायक १ ॥ नन्दः ॥ सबसे बडा ऐश्वर्यवान् विषयसुखसे रहित आनंदस्वरूप २ ॥ सत्यधर्मा ॥ सत्य और धर्म और ज्ञानवाला १ सच्चा है धर्म जिसका आचार दया अहिंसा दान स्वाध्याय यह परम धर्म हैं इनके संयोगसे आत्माका दर्शन २ ॥ त्रिविक्रमः ॥ तीन लोक उल्लंघनकरनेवाला १ तीन लोकके नाप लेनेसे वामनजीको त्रिविक्रम हरिवंश पुराणमें कहा है तीनपद रखता हुआ यह श्रुति है उत्पत्ति पालन संहार तीन पराक्रमवाला ॥५३० नाम ॥ ६९ ॥

**महर्षिः कपिलाचार्यः कृतज्ञो मेदिनीपतिः ॥**
**त्रिपदस्त्रिदशाध्यक्षो महाशृंगः कृतान्तकृत् ॥७०॥**

महर्षिः कपिलाचार्यः ॥ यह विशेषण सहित एक नाम है महान् हो वही ऋषिहो सब वेदोंके जाननेसे वेदका एकदेश जाने सो ऋषि कपिल नाम शुद्धात्म तत्त्वका उपदेश करनेवाला आचार्य सो कपिलाचार्य ऋषिका पुत्र जो कपिल है वह महान् है यह श्रुति है। सिद्धोंमें कपिल मुनि मैं हूँ यह गीतामें कहा है॥ कृतज्ञः ॥ कृत नाम जगत् ज्ञ आत्मा आप ही जगत् है आप ही आत्मा है १॥ मेदिनीपतिः ॥ पृथ्वीका पति ॥ त्रिपदः ॥ तीन पाद हैं जिसके तीन पैर धरता हुआ यह श्रुति है १॥ त्रिशाद॥ ध्यक्षः ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ति तीनों अवस्थाका साक्षी १॥ महाशृंगः मत्स्यरूप महाशृंग प्रलयकालमें नाव बना कर अपनी शृंगमें बांधके क्रीडा करे ॥ कृतांतकृत् कृत नाम जगत्का अन्तनाम संहारकरनेवाला १ कृतांत नाम मृत्युको काटनेवाला २ ॥ ७० ॥

**महावराहो गोविंदः सुषेणःकनकांगदी ॥**
**गुह्यो गभीरो गहनो गुप्तश्चक्रगदाधरः ॥ ७१ ॥**

महावराहः ॥ वराहावतार १ ॥ गोविंदः गो नाम वेदवाक्यसे जो प्राप्त होय१ वाणी वा वेदांतवाक्यसे जो जाना जाय सो गोविंद २ यह विष्णुपुराणमें कहा है ॥ सुषेणः ॥ सुन्दर है त्रिगुणरूप सेना जिसकी ॥५४० नाम ॥ कनकांगदी ॥ सोनेका है अंगद नाम भुजबंद जिसका १ ॥ गुह्यः ॥ रहस्य और उपनिषदोंसे जो जाना जाय १ हृदयरूपी गुफामें प्राप्त २ ॥ गभीरः ॥ ज्ञान ऐश्वर्य बलमें गम्भीर १ ॥ गहनः ॥ शरीरोंमें प्रवेश होनेवाले से जिसमें प्रवेशकरना दुर्घट है २ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ति तीनों अवस्थाके भाव अभावका साक्षी ३ ॥ गुप्तः ॥

मन वाणी जहां न पहुँचे सबमें छिपा हुआ १ सब भूतोंमें एक आत्मा छिपा है प्रकाश नहीं करता यह श्रुति है ॥ चक्रगदाधरः ॥ चक्र और गदाके धारण करनेवाले १॥ ७१ ॥

वेधाः स्वांगो जितः कृष्णो दृढः संकर्षणोऽच्युतः ॥
वरुणो वारुणो वृक्षः पुष्कराक्षो महामनाः ॥ ७२ ॥

॥ वेधाः ॥ ब्रह्मारूप होकर जगत्को रचनेवाला १ ॥ स्वांगः ॥ आपही कार्य और कारण अपने अङ्गसे रचनेवाला १ ॥ अजितः ॥ अवतारधारके किसीसे जीता न जाय १ ॥ कृष्णः ॥ द्वैपायननामव्यासको कृष्ण जानो १ नारायण जानो कृष्णके सिवाय और किसकी सामर्थ्य महाभारत बनानेकी है २ यह विष्णुपुराणमें कहा है सब मुनियोंमें व्यास मैं हुँ यह गीतामें कहा है ॥ ५५० नाम ॥ दृढः ॥ जिसके स्वरूप और सामर्थ्य का नाश नहीं है ॥ सकर्षणोऽच्युतः ॥ प्रलयकालमें एकही बेर सब प्रजाको खींचनेवाला नाश रहित स्वभावसे विशेषण सहित एक नाम है १ ॥ वरुणः ॥ वरुण नाम सूर्य वा जल इनको प्राप्त होय १ वरुण सूर्य है यह श्रुति है ॥ वारुणः ॥ वरुणकी संतान वसिष्ठ वा अगस्त्य १ ॥ वृक्षः ॥ वृक्षकासा अचल स्वभाव है जिसका १ वृक्षकी तरह अचल है यह श्रुति है ॥ पुष्कराक्षः ॥ हृदयकमलमें चिंतन होय जिसका १ स्वरूप जिसका प्रकाशवान् है २ ॥ महामनाः ॥ उत्पत्ति स्थिति प्रलय अपने मनसे करनेवाला ॥ ७२ ॥

भगवान् भगहानंदी वनमाली हलायुधः ॥
आदित्यो ज्योतिरादित्यः सहिष्णुर्गतिसत्तमः ॥७३॥

भगवान् ॥ ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, वैराग्य, मोक्ष इन छः पदार्थोंका नाम भग है जिसमें भग रहै सो भगवान् १ जिसको

इन छः पदार्थोंका यथार्थ ज्ञान होय २ भूतोंकी उत्पत्ति लय गति अगति विद्या अविद्या इन छः वस्तुका जाननेवाला ३ ॥ भगहा ॥ प्रलयकालमें ऐश्वर्यादि भगका नाशक १ ॥ आनंदी ॥ सुखरूप सर्व संपत्तियुक्त १ ॥ ५६० नाम ॥ वनमाली ॥ पंचभूततन्मात्रारूपी वैजयंती नाम वनमाला है जिसकी १ तुलसी कुंद मंदार पारिजात कमल इन पांच फूलोंसे बने सो वनमाला पांवतक लटकती हुई माला वनमाला जिसकी २ ॥ हलायुधः ॥ हल जिसका शस्त्र है बलदेवमूर्ति १ जरासंधकी लड़ाईके समय हल मूशल आकाशसे उतरा यह विष्णुपुराणमें लिखा है ॥ आदित्यः ॥ अदितिमें कश्यपसे उत्पन्न वामनरूप १ ॥ ज्योतिरादित्यः ॥ सूर्यमंडल जिसमें ज्योति रहती है १ आपही ज्योति आपही आदित्य २ ॥ सहिष्णुः ॥ शीतोष्ण और दुःख सुखको सहनेवाला १ ॥ गतिसत्तमः ॥ आपही गतिरूप आपही सत्तम श्रेष्ठ ॥ ७३ ॥

**सुधन्वा खंडपरशुर्दारुणो द्रविणप्रदः ॥**
**दिविस्पृक्सर्वदृग्व्यासो वाचस्पतिरयोनिजः ॥ ७४ ॥**

सुधन्वा ॥ सुंदर इंद्रियरूपी धनुष है जिसका १ ॥ खंडपरशुः ॥ शत्रुओंका खंडन करनेवाला परशाधारे परशुरामरूप १ अथवा शिवरूप २ अखण्ड है नाम अमोघ है परशा जिसका ३ ॥ दारुणः ॥ सन्मार्गके विरोधियोंको मारनेवाला १ ॥ द्रविणप्रदः ॥ भक्तोंको वांछित फलका देनेवाला १॥ ५७० नाम ॥ दिविस्पृक् ॥ दिवनाम स्वर्गका स्पर्श करनेवाला १॥ सर्वदृग्व्यासः॥ सर्वदृष्टिवाले जो सर्वज्ञ उसका विस्तार करनेवाला व्यास १ आपही सर्व और आपही द्रष्टा २ जिसने चारों वेदकी

शाखा करदी ऋग्वेदकी २१ यजुर्वेदकी १०१ सामवेदकी १००० अथर्वण वेदकी ९ और १८ पुराणोंका कर्ता ॥ वाचस्पतिरयोनिजः ॥ वाचनाम विद्याका पति ॥ अयोनिजः ॥ माताकी योनिसे जिसका जन्म नहीं यह नाम ब्रह्माका है ॥ ७४ ॥

**त्रिसामा सामगः साम निर्वाणं भेषजं भिषक् ॥**
**संन्यासकृच्छमःशांतो निष्ठा शांतिः परायणः॥७५॥**

त्रिसामा ॥ त्रिसामनाम वेदव्रतका है तीनों वेदके व्रतसे जिसकी स्तुति होय १ ॥ सामगः ॥ सामवेदका गानेवाला १ सामवेदने जिसको गाया है २ ॥ साम ॥ साम वेद १ वेदोंमें सामवेद में हूं ॥ यह गीतामें कहा है ॥ निर्वाणम् ॥ सर्वदुःखनाशरूप परमानंद लक्षणरूप ॥ भेषजम् ॥ संसारसे छूटनेकी दवा ॥ भिषक् संसाररूपी रोगके नाश करनेवाले मोक्षरूप ब्रह्मविद्या उपनिषद् गीता सब रोगके वैद्य होय यह श्रुति है ॥ ॥ संन्यास कृत् ॥ मोक्षके वास्ते चौथा आश्रम करनेवाला १ ॥ ६८० नाम ॥ शमः ॥ संन्यासियोंको ज्ञानका साधन शमरूप १ ज्ञानका साधन शम २ सदा संन्यासीका मुख्य धर्म शमता है ३ वानप्रस्थोंका नियम गृहस्थोंका केवल दान ब्रह्मचारीका गुरुसेवा यह स्मृति है सब भूतोंको शमनकरनेवाला ४ ॥ शांतः ॥ विषयसुखमें संगरहित १ क्रिया और कलंकसे रहित है शांत हैं यह श्रुति है ॥ निष्ठा ॥ प्रलयकालमें सब भूत जिसमें रहें ॥ शांतिः ॥ ब्रह्मविद्या १ समतासे अविद्याका नाश २ ॥ परायणः ॥ पर अयननाम स्थान जहां जायके फेर नहीं आवै ॥ ७५ ॥

**शुभांगः शांतिदः स्रष्टा कुमुदः कुवलेशयः ॥**
**गोहितो गोपतिर्गोप्ता वृषभाक्षो वृषप्रियः ॥ ७६ ॥**

शुभांगः ॥ शोभावान् अंग १ ॥ शांतिदः ॥ रागद्वेष खोनेवाला शांतिके दाता १ ॥ स्रष्टा ॥ सृष्टिके आदिमें सबभूतोंका रचनेवाला १ ॥ कुमुदः ॥ कु नाम पृथ्वीमें आनंदपानेवाला १ पृथ्वीको आनंद देनेवाला २ ॥ कुवलेशयः ॥ पृथ्वीको सब दिशासे ढकनेवाला १ कुवल नाम जल उसमें शेषनागपर सोनेवाला २ कुवलनाम बेरका फल उसमें तक्षकरूप होके सोनेवाला ३ कु नाम भूमि वल नाम चलन ऐसा जो सर्पका पेट उसपर सोनेवाला ४ ॥५९० नाम ॥ गोहितः ॥ गऊके बढावनेके वास्ते गोवर्द्धन पर्वतरूप १ गऊको प्यार करै २ गोनाम भूमिके भार उतारनेको अपनी इच्छासे अवतार धारनेवाला ॥ गोपतिः ॥ पृथ्वी, गऊ इंद्रियोंके पति नाम पालक १ ॥ गोप्ता ॥ जगत्के रक्षक १ अपनी मायासे अपने आत्माको आच्छादन करनेवाला २ ॥ वृषभाक्षः ॥ सब कामना बरसाने वाला १ धर्म रूप पवित्र दृष्टि है जिसकी २ ॥ वृषप्रियः ॥ धर्म प्यारा है जिसको ॥ ७६ ॥

**अनिवर्ती निवृत्तात्मा संक्षेप्ता क्षेमकृच्छिवः ॥**
**श्रीवत्सवक्षाः श्रीवासः श्रीपतिः श्रीमतांवरः॥ ७७ ॥**

अनिवर्ती ॥ देवता और असुरोंके संग्रामसे जो छुट्टी न पावै १ जो धर्म न छोड़ै २ ॥ निवृत्तात्मा ॥ स्वाभाविक जिसकी आत्मा नाम मन विषयोंसे निवृत्त है १ ॥ संक्षेप्ता ॥ जगत्के विस्तारको प्रलयमें घटानेवाला १ क्षेमकृत् जो शरण आयेकी रक्षा करै १ ॥ शिवः ॥ स्मरणमात्रसे पाप खोनेवाला १ ॥ ६०० नाम ॥ श्रीवत्सवक्षाः ॥ श्रीवत्सनाम छापा है छातीपर जिसके १ ॥ श्रीवासः ॥ जिसके हृदयमें नित्य लक्ष्मी वसै १ ॥ श्रीपतिः ॥ समुद्रमथनके समयमें

सब देवतोंको छोड़कर लक्ष्मीने जिसको अपना वर किया १ परमशक्तिके पति २ ॥ श्रीमतांवरः ॥ तीनोंवेदरूप श्री है जिसकी १ ब्रह्मादिक श्रीमानोंसे उत्तम ॥ ७७ ॥

**श्रीदः श्रीशः श्रीनिवासः श्रीनिधिः श्रीविभावनः ॥**
**श्रीधरः श्रीकरः श्रेयः श्रीमाँल्लोकत्रयाश्रयः ॥ ७८ ॥**

श्रीदः ॥ भक्तोंको श्री देनेवाले १ ॥ श्रीशः ॥ लक्ष्मीके स्वामी मालिक १ ॥ श्रीनिवासः ॥ लक्ष्मीवानोंमें नित्य वसै १ ॥ लक्ष्मी जहां रहै २ ॥ श्रीनिधिः ॥ जिस सर्वशक्तिरूपमें संपूर्ण श्रीस्थापन होय १ ॥ श्रीविभावनः ॥ कर्मके अनुसार नाना-प्रकारकी श्री सर्वभूतोंको देनेवाला १ ॥ श्रीधरः ॥ सर्वभूतोंको उत्पन्न करनेवाले १ लक्ष्मीको छातीपर धारे २ ॥ ६१० नाम ॥ श्रीकरः ॥ श्रवण, स्मरण, स्तुति, ध्यान, पूजा करने वालोंको ऐश्वर्य देनेवाले १ ॥ श्रेयः ॥ कल्याणरूप परब्रह्म १ नाशरहित सुखकी प्राप्तिका नाम श्रेय है २ ॥ श्रीमान् ॥ सदा लक्ष्मीसहित १ ॥ लोकत्रयाश्रयः ॥ तीनों लोकोंका आधारभूत ॥ ७८ ॥

**स्वक्षः स्वंगः शतानंदो नंदिर्ज्योतिर्गणेश्वरः ॥**
**विजितात्माऽविधेयात्मा सत्कीर्तिश्छिन्नसंशयः ॥ ७९ ॥**

स्वक्षः ॥ कमलकोसी सोहनीआँखों वाले १ ॥ स्वंगः ॥ अच्छे सुंदर अंगवाले १ ॥ शतानंदः ॥ एक परमानंद जो भेदसे अनेक आनंदरूप हुआ है १ एकी आनन्दके आसरे सबभूत जीते हैं यह श्रुति है ॥ नंदिः ॥ परमानन्दरूप १ ॥ ज्योतिर्गणेश्वरः ॥ सब चमकनेवाले समूहके ईश्वर १ उसीके प्रकाशसे सब प्रकाश करते हैं यह श्रुति है। सूर्य, चंद्रमा, अग्निमें

मेराही तेजहै यह गीतामें कहा है ॥ विजितात्मा ॥ मनको जीतनेवाला १ ॥ ६२० नाम ॥ अविधेयात्मा ॥ जिस आत्माका विधाननाम कथन न हो सके १ ॥ सत्कीर्तिः ॥ सत्य है सत्कीर्ति जिसकी १ ॥ छिन्नसंशयः ॥ हस्तामलकवत् साक्षात् ज्ञानसे जिसको कोई संदेह न रहै १ ॥ ७९ ॥

**उदीर्णः सर्वतश्चक्षुरनीशः शाश्वतः स्थिरः॥**
**भूशयो भूषणो भूतिर्विशोकः शोकनाशनः॥ ८० ॥**

उदीर्णः ॥ सब जगत्से श्रेष्ठ १ ॥ सर्वतश्चक्षुः ॥ सबको अपना चैतन्यरूप देखै १ सबदिशामें हैं नेत्र जिसके यह श्रुति है ॥ अनीशः ॥ जिससे कोई बड़ा नहीं १ ॥ शाश्वतःस्थिरः ॥ सदा होनेपर भी विकार नहीं जिसमें १ ॥ दोनों पदोंका एकही नाम है ॥ भूशयः ॥ लंकाजानेके समय समुद्रके तटपर भूमिपर सोनेवाला १ ॥ भूषणः ॥ अपनी इच्छासे अवतारादिक धारकर पृथिवीको शोभा देनेवाले १ ॥ भूतिः ॥ होनेवाली शक्तिविभुति सब विभूतिका कर्ता १ ॥ ६३० नाम ॥ विशोकः ॥शोकरहित परमानंदरूप १ ॥ शोकनाशनः ॥ स्मरणसे भक्तोंके शोक नाश करै ॥ ८० ॥

**अर्चिष्मानर्चितः कुंभो विशुद्धात्मा विशोधनः ॥**
**अनिरुद्धोऽप्रतिरथः प्रद्युम्नोऽमितविक्रमः ॥ ८१ ॥**

अर्चिष्मान् ॥ जिसके प्रकाशसे सूर्य चंद्रमा प्रकाश करते हैं १ अर्चिनाम किरणवाले सूर्यरूप चंद्रमारूप २ ॥ अर्चितः ॥ सब लोकके पूज्य ब्रह्मादिकदेवतोंके पूज्य २ ॥ कुंभः ॥ घड़ेकेरूप जिसमें सब वस्तु भरी जायँ १ ॥ विशुद्धात्मा ॥ तीनोंगुणोंसे रहित १ ॥ विशोधनः ॥ स्मरणसे पाप दूर करै

१ ॥ अनिरुद्धः ॥ चारमूर्तियोंमें अनिरुद्धरूप १ जो लड़ाईमें किसीसे न रुके २ ॥ अप्रतिरथः ॥ बैरी जिसके नहीं १ ॥प्रद्युम्नः॥ प्र उत्तम द्युम्न नाम द्रव्य है जिसके १ चारमूर्तिमें प्रद्युम्नरूप २ ॥ ६४० नाम ॥ अमितविक्रमः ॥ बेप्रमाण बलवाले १ हिंसारहित पराक्रम है जिसका२ अपरिच्छिन्न पराक्रमवाला३॥८१॥

**कालनेमिनिहा वीरः शौरिः शूरजनेश्वरः ॥**
**त्रिलोकात्मा त्रिलोकेशः केशवः केशिहाहरिः॥८२॥**

कालनेमिनिहा ॥ कालनेमि नाम दैत्यको मारने वाला १ ॥ वीरः॥ अगले पिछले शत्रुका नाशक १॥ शौरिः ॥ शूरकुलमें अवतार लेनेवाला १ ॥ शूरजनेश्वरः ॥ शूरतामें इंद्रादिक देवतोंसे अधिक ऐश्वर्य वाला १॥ त्रिलोकात्मा ॥ तीनों लोकका अंतर्यामी आत्मा १ तीनों लोकमें अभेदआत्मारूप २॥ त्रिलोकेशः॥ तीनोंलोकका स्वामी १ तीनों लोक जिसकी आज्ञासे अपने अपने मार्गमें चलैं २ ॥ केशवः ॥ सूर्यादिककी किरण जिसके केश हैं १ ब्रह्मा विष्णु शक्ति गणेश नाम हैं जिसके २ क नाम ब्रह्मा ईश नाम शिव दोनों तुम्हारे अंश हैं यह हरिवंशपुराणमें है ॥ केशिहा ॥ केशि दैत्यके मारनेवाले १ ॥ हरिः॥ ॥ अज्ञान सहित संसारको हरै१ ॥ ६५०नाम ॥८२॥

**कामदेवः कामपालः कामी कांतः कृतागमः ॥**
**अनिर्देश्यवपुर्विष्णुर्वीरोऽनंतो धनंजयः ॥ ८३ ॥**

कामदेवः॥ धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके चाहनेवाले जिसकी पूजा करैं सो कामदेव १ ॥ कामपालः ॥ कामनावालोंके काम पूरण करैं १॥ कामी ॥ पूरणकाम जिसको कामना न रहै १ सरस्वतीके वास्ते कामना की यह श्रुति है ॥ कांतः॥

परमसुंदररूप १ क नाम ब्रह्माका दो परार्द्धनाम १०० वर्षमें अंतकरै १ ॥ कृतागमः ॥ वेद श्रुतिस्मृतिके कर्ता । वेद शास्त्र विज्ञान यह सब जनार्दनसे भये विष्णुसहस्रनाममें कहा है १ ॥ अनिर्देश्यवपुः ॥ जिसके शरीरको यह है ऐसा न कहाजाय १ सबगुणोंसे रहित शरीर है जिसका २ ॥ विष्णुः ॥ सारे जगत्में व्याप्त जिसकी कांति अधिक करके है ॥ १ ॥ वीरः ॥ कांति नाम वेग अथवा कांतिवाले॥ १ ॥ अनंतः ॥ व्यापक नित्य सबका आत्मा देश काल वस्तुके नियमसे रहित सत्य है ज्ञानरूप है अनंत है यह श्रुति है २ देवता जिसके गुणोंका अंत न पावें यह विष्णुपुराणमें है ३ ॥ धनंजयः ॥ दिग्विजयकरके धन लेनेवाला अर्जुन १ पांडवमें धनंजय मैं हूं यह गीतामें कहा है ॥ ६६० नाम ॥ ८३ ॥

**ब्रह्मण्यो ब्रह्मकृद्ब्रह्मा ब्रह्म ब्रह्मविवर्धनः ॥**
**ब्रह्मविद्ब्राह्मणो ब्रह्मी ब्रह्मज्ञो ब्राह्मणप्रियः ॥८४ ॥**

ब्रह्मण्यः ॥ तप वेद सत्य ज्ञान इन पदार्थोंको जाननेवाले १ इन्हीं पदार्थोंसे जानने योग्य और हितकारी नरनारायण रूपसे तप किया २ ब्राह्मणजातिके रक्षाके वास्ते अवतार धार राक्षसोंको मारके वेदकी रक्षा की ३ अर्जुनको ज्ञानदिया ४ ॥ ब्रह्मकृत् ॥ तप, वेद, सत्य, ज्ञानका कर्ता १ ॥ ब्रह्मा ॥ ब्रह्मारूपसे सब का रचनेवाला १ ॥ ब्रह्म ॥ सत्यादिक चार पदार्थके बढ़ने अथवा बढ़ावनेसे सत्य है ज्ञानस्वरूप है अनंत है यहश्रुति है ॥ १ ॥ ब्रह्म विवर्द्धनः ॥ तप आदिक चारों पदार्थको बढ़ानेवाला १ ॥ ब्रह्मविद् ॥ वेदके अर्थ और वेदको जो यथार्थजानै ॥ १ ॥ ब्राह्मणः ॥ ब्रह्मारूपसे सबलोकको वेद देनेवाला १ ॥ ब्रह्मी ॥ जगत् ब्रह्मरूपको धारणेवाला १ ॥

ब्रह्मज्ञः ॥ ब्रह्मको जाननेवाला १ ॥ ब्राह्मणप्रियः ॥ ब्राह्मणोंका प्रिय १ जिसको ब्राह्मण प्रिय हैं २ ब्राह्मण मारता हुवा गाली देता हुवा शाप देता हो तो भी पूज्य है जो ब्राह्मणको प्रणाम न करै तो ब्रह्म अग्निसे दग्ध है दहनके योग्य है मेरा नहीं है यह भगवद्वाक्य है ॥ ६७० नाम ॥ ८४ ॥

**महाक्रमो महाकर्मा महातेजा महोरगः ॥**
**महाक्रतुर्महायज्वा महायज्ञो महाहविः ॥ ८५ ॥**

महाक्रमः ॥ बड़े क्रमवाले १ क्रम नाम चरण धरतीरूपी बड़े चरण हैं जिसके २ बड़े क्रमवाले विष्णु मुझे पवित्र करो यह श्रुति है ॥ महाकर्मा ॥ महान् जगत्के रचने और पाल्ने और नाशकरने रूप हैं कर्म जिसके १ ॥ महातेजाः ॥ बड़े तेजवाले १ सूर्यादिक जिसके तेजसे होवें २ जिसके तेजको पाकर सूर्यतपता है यह श्रुति है सूर्यमें मेराही तेज है यह गीतामें है अपनी शूरता और वीरतासे सबको लड़ाईमें तृप्त करै ३ ॥ महोरगः ॥ बड़ा सर्प १ सर्पोंमें वासुकि मैं हूं यह गीतामें है ॥ महाक्रतुः ॥ आपही बड़ा है आपही यज्ञ है जैसे अश्वमेध यज्ञोंका राजा है सो नारायणरूप है ॥ महायज्वा ॥ आपही बड़ा है आपही यज्ञकरनेवाला है जगत्के उद्धारके वास्ते यज्ञका प्रचारक ॥ महायज्ञः॥ आपही बड़ा है आपही यज्ञ है । यज्ञोंमें जपयज्ञ मैं हूँ यह गीता है १ ॥ महाविः ॥ आपही बड़ा है आपही हवि नाम होमकरनेका अन्न और घी है जिस परमात्मामें सब जगत् होमा गया ॥ ८५ ॥

**स्तव्यः स्तवप्रियः स्तोत्रं स्तुतिः स्तोता रणप्रियः ॥**
**पूर्णः पूरयिता पुण्यः पुण्यकीर्तिरनामयः ॥ ८६ ॥**

स्तव्यः ॥ उसकी सब स्तुति करते हैं वह किसीकी स्तुति

न करै १ स्तुति करनेवालोंके स्तुतियोग्य २ आपही स्तुतिरूप है ३ ॥ स्तवप्रियः ॥ स्तुति प्यारी है जिसको १ ॥ ६८० नाम ॥ स्तोत्रम् ॥ गुणवर्णनरूप हरि १ जिस शब्दसे स्तुति करै सो स्तोत्र आपही स्तोत्र है ॥ स्तुतिः ॥ आपही स्तुतिरूप है १ ॥ स्तोता ॥ आपही स्तुति करनेवाला १ ॥ रणप्रियः ॥ रण है प्यारा जिसको १ लोकके देखानेके वास्ते पांच आयुध रखनेवाले २ ॥ पूर्णः ॥ संपूर्ण काम और शक्ति वाले १ रयिता ॥ सब ऋद्धि और सब शक्तिसे कामना पूरण करनेवाले १ कुछ आपही पूरण नहीं हैं सबको सब संपतके पूरणकरनेवाले २ ॥ पुण्यः ॥ स्मरण करनेसे पापोंका नाश करै १ ॥ पुण्यकीर्तिः ॥ पवित्र है यश और कीर्ति जिसकी १ आदमियोंको जिसकी कीर्ति पवित्र करै २ ॥ अनामयः ॥ कर्मसे उत्पन्न होनेवाली आधि और व्याधिसे रहित अनामय नाम रोगके रहित ॥ ८६ ॥

मनोजवस्तीर्थकरो वसुरेता वसुप्रदः ॥
वसुप्रदो वासुदेवो वसुवसुमना विः ॥ ८७ ॥

मनोजवः ॥ मनकी तरह जलदी दौड़नेवाले १ ॥ ६९० नाम ॥ तीर्थकरः ॥ चौदहविद्या और उपविद्या सबका कर्ता ॥ वसुरेताः ॥ सुवर्ण है बीज जिसका १ सृष्टिकी आदिमें जलमें तेजका त्याग किया उससे सोनेका अंडा सूर्यकी तरह प्रकाशित २ ॥ वसुप्रदः ॥ भक्तोंको धनदाता १ धनके दाता कुबेर २ ॥ वसुप्रदः ॥ दैत्योंके धनको नाश करै १ ॥ वासुदेवः ॥ वसुदेवके बेटे १ ॥ वसुः ॥ जिसमें सब भूत वसैं १ सबभूतोंमें वसनेवाला २ मयासे जो अपने स्वरूपको छिपाले ३ सबदेश सबकाल सबवस्तुमें जो बराबर वसै ४ ॥ वसुमनाः ॥ तद्रूप

है मन जिसका १ सबमें बराबर वसे सो वस्तु वसु है मन जिसका २ ॥ हविः ॥ होमकी साकल्य हवि ब्रह्म है यह गीतामें है १ ॥ ८७ ॥

**सद्गतिः सत्कृतिः सत्ता सद्भूतिः सत्परायणः ॥**
**शूरसेनो यदुश्रेष्ठः सन्निवासः सुयामुनः ॥ ८८ ॥**

सद्गतिः ॥ ब्रह्म है ऐसा निश्चय करनेवालेकी जो गति वह सद्गति १ श्रेष्ठ बुद्धिशाला२ ॥ सत्कृतिः ॥ जगत् की उत्पत्ति पालन लय जिसकी क्रिया है ॥ ७०० नाम ॥ सत्ता ॥ सजातीय नाम अपना विजातीय नाम दूसरा स्वगत नाम देहिक इन भेदसे रहित जो अनुभव १ एक ब्रह्म है दूसरा नहीं यह श्रुति है ॥ सद्भूतिः ॥ एक आत्मा बहुत प्रकार देखाई देवे १ तेरे निश्चय होनेसे और कुछ नहीं है क्योंकि सब एक है ॥ सत्परायणः ॥ सत् नाम तत्त्ववेत्ता पर नाम श्रेष्ठ अयन नाम स्थान ॥ शूरसेनः ॥ हनूमानादिक शूर वीर जिसकी सेना है १ ॥ यदुश्रेष्ठः ॥ यादवकुलमें श्रेष्ठ १ ॥ सन्निवासः॥ सत्पुरुषोंके रहनेकी जगह १ ॥ सुयामुनः ॥ सोहावनी यमुनाकी आवर्त चारों ओर हैं जिसके १ गोपवेषधारी पद्मासनादिक गोपोंकरके आवृत ॥ यामुनः ॥ नाम चारोंतरफ घेरनेवाले॥८८॥

**भूतावासो वासुदेवः सर्वासुनिलयोऽनलः ॥**
**दर्पहा दर्पदो दृप्तो दुर्धरोऽथापराजितः ॥ ८९ ॥**

भूतावासः ॥ सब भूतोंको रहनेकी जगह १ जिसमें सब भूत बसें यह हरिवंशपुराणमें है ॥ वासुदेवः ॥ मायासे जगत्को छिपालेनेवाले १ अपनी विभूति और ऐश्वर्यसे जगत्को ढक

लेताहूँ यह भगवद्वचन है छिपाता हूँ सब जगत्को सूर्य्यकी तरह अपने किरनोंसे यह महाभारत मोक्षधर्म है ॥ सर्वासुनिलयः ॥ सब प्राण जिसमें लय होजायँ १ ॥ ७१० नाम ॥ अनलः ॥ जिसकी शक्ति और संपत् अनंत हैं १॥ दर्पहा ॥ अधर्मियोंका दर्प नाम अहंकार हरनेवाला १ ॥ दर्पदः ॥ धर्मवालोंका दर्प देनेवाले नाम रक्षाकरनेवाले १ ॥ दृप्तः ॥ आत्मारूपी अमृतका स्वाद जिसके सदा है ॥ दुर्द्धरः ॥ बहुत दुःखोंसे जिसकी धारणा होय । अव्यक्तमें मन लगानेवालेको बहुत क्लेश हैं अव्यक्तमें गतिनाम पहुँच दुःखसे भी देहवालेको नहीं होती यह गीतामें कहा है ॥ अपराजितः ॥ भीतरके शत्रु रागद्वेषादिक और बाहरके दानवादिकसे जीता न जाय ॥ ८९ ॥

**विश्वमूर्तिर्महामूर्तिर्दीप्तमूर्तिरमूर्तिमान् ॥**
**अनेक मूर्तिरव्यक्तः शतमूर्तिः शताननः ॥९०॥**

विश्वमूर्तिः ॥ सब विश्व जिसकी मूर्ति है १ ॥ महामूर्तिः ॥ शेषनागपर सोनेवाली बड़ी मूर्ति १ ॥ दीप्तमूर्तिः ॥ ज्ञानमयी और तेजसी मूर्ति है जिसकी १ ॥ अमूर्तिमान् ॥ शेषनागपर सोनेवाली बड़ी मूर्ति होकर नाम भेद करके बहुत मूर्ति नहीं १ ॥ ७२० नाम ॥ अनेकमूर्तिः ॥ उपकारके अर्थ अनेकमूर्तिवाले १ ॥ अव्यक्तः ॥ अनेकमूर्तिवाला भी है तो भी उसको यह है और ऐसा है नहीं कह सकते १॥ शतमूर्तिः ॥ ज्ञानरूप मूर्ति १ ॥ शताननः ॥ जिससे जगत् मूर्तिमान् है जिससे सब भूत होयँ यह श्रुति है ॥ ९० ॥

**एको नैकः सवः कः किं यत्तत्पदमनुत्तमम् ॥**
**लोकबंधुर्लोकनाथो माधवो भक्तवत्सलः ॥९१॥**

एकः ॥ एक है श्रुति है जिसके दूसरा नहीं १ ॥ नैकः ॥ अपनी मायासे जगत्रूप होनेवाला १ इन्द्र मायाकरके बहुत-रूपवाला हुआ यह श्रुति है ॥ सवः ॥ जिस यज्ञमें सोमपान होय १ ॥ कः ॥ सुखरूप १ ब्रह्मरूप २ क ब्रह्म है यह श्रुति है ॥ किम् ॥ सब पुरुषार्थका स्वरूप । जिससे सब भूत होंय यह श्रुति है ॥ १ ॥ यत् ॥ स्वतः सिद्ध जिससे भूतोंकी उत्पत्ति पालन लय होय यह श्रुति है ॥ तत् ॥ विस्तार करनेवाला ब्रह्म । ब्रह्मके तीननाम हैं प्रणव १ तत् २ सत् ३ गीतामें हैं ॥ पदमनुत्तमम् ॥ ७३० नाम ॥ जिस उत्तम पदको मुमुक्षु लोग प्राप्त होंय १ जिससे कोई उत्तम पद न होय २ ॥ लोकबंधुः ॥ आधाररूप परमात्मासे सब लोग बँधे हैं १ लोकोंका जनक है दूसरा बंधु नहीं है। श्रुति स्मृतिरूप हित अहित जीवोंको उपदेश करै २ ॥ लोकनाथः ॥ सब लोक जिससे मांगे १ दैत्योंको दंड देनेवाला २ ॥ माधवः ॥ मधुकुलमें उत्पन्न ॥ १ ॥ भक्तवत्सलः ॥ भक्तोंपर कृपा करै ॥ ९१ ॥

**सुवर्णवर्णो हेमांगो वरांगश्चंदनांगदी ॥**
**वीरहा विषमः शून्यो घृताशीरचलश्चलः ॥ ९२ ॥**

सुवर्णवर्णः ॥ सोनेके रंग १ रुक्मवर्णको देखो यह श्रुति है ॥ हेमांगः ॥ सोनेकासा अङ्ग १ जो एक सूर्यमण्डलमें हिरण्मय पुरुष है यह श्रुति है ॥ वरांगः ॥ श्रेष्ठ है अङ्ग जिसका १ ॥ चदनांगदी ॥ चंदन लगाये हुए अङ्गद नाम बाजुबंध पहिरे हैं १ चंदन नाम आनंददेनेवाला अङ्गदनाम बाहुभूषण है जिसका २ ॥ ७४० नाम ॥ वीरहा धर्मकी रक्षाके वास्ते वीर दैत्योंको मारनेवाला १ रागद्वेष कामादिकको दूर करै २ ॥ विषमः ॥ समनाम बराबर जिसके कोई नहीं

है १ तुम्हारे सम कोई नहीं तो अधिक कहांसे होयगा यह गीतामें है ॥ शून्यः ॥ सब गुणोंसे पर है १ शून्यकी तरह शून्य २ ॥ धृताशीः ॥ अशी नाम कामना, धृत नाम क्षय, दूर हो गई है चाहना जिसकी १ ॥ अचलः ॥ स्वरूपसामर्थ्यगुण जिसके अचल हैं १ ॥ चलः ॥ वायुरूप होकर चलनेवाला ॥ ९२ ॥

**अमानी मानदो मान्यो लोकस्वामी त्रिलोकधृक् ॥**
**सुमेधा मेधजो धन्यः सत्यमेधा धराधरः ॥९३॥**

अमानी ॥ अनात्मवस्तुमें अभिमान नहीं करनेवाले १ मानरहित शुद्ध ज्ञानस्वरूप २ जिसकी प्रमा नाम हद्द नहीं ३ ॥ मानदः॥ अपनी मायासे जीवोंको आत्मामें आत्मारूपी अभिमान देनेवाला १ भक्तोंको मान देनेवाला २ दैत्योंका मान तोड़नेवाला ३ ज्ञानियोंका देहाभिमान दूरकरनेवाला ४ ॥ मान्यः ॥ सबका मान्य नाम पूज्य १॥ लोकस्वामी ॥ चौदह लोकोंका स्वामी नाम ईश्वर १ ॥ ७५० नाम ॥ त्रिलोकधृक् ॥ तीनों लोकोंका धारण करनेवाला १ ॥ सुमेधाः ॥ उत्तमबुद्धिवाला १ ॥ मेधजः ॥ यज्ञमें प्रकाशित होय ॥ १ ॥ धन्यः ॥ कृतार्थरूप १ ॥ सत्यमेधाः ॥ सत्यस्वरूपनाम विकाररहित बुद्धि जिसकी १ ॥ धराधरः ॥ शेषसे आदि अपने वेप्रमाण अंशोंसे पृथ्वीको उठावै ॥ ९३ ॥

**तेजोवृषो द्युतिधरः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥**
**प्रग्रहो निग्रहो व्यग्रो नैकशृंगो गदाग्रजः ॥९४॥**

तेजोवृषः ॥ आदित्यरूप होकर वरसानेवाला १ जलको सूरजरूपसे खींचकर वरसानेवाला २ ॥ द्युतिधरः ॥ शरीरकी कांतिवाला १ सत्पुरुषोंकी कीर्ति धारणेवाला २॥ सर्वशस्त्रभृतांवरः॥ सब हथियार रखनेवालोंमें श्रेष्ठ १ ॥ प्रग्रहः ॥ भक्तोंके अर्पण

किये हुये पत्र फूल फल जल प्रसन्नतासे ग्रहण करैं १ दुर्दांत इंद्रियरूपी घोड़े विषयरूपी जंगलमें दौड़ते हुये जिसके प्रसादसे प्रग्रह नाम पगहेमें बंध जाते हैं २ ॥ ७६० नाम ॥ निग्रहः ॥ सबको अपने वश करनेवाले १ ॥ व्यग्रः ॥ नाशरहित १ भक्तोंको इष्ट नाम मनोरथदाता २ ॥ नैकशृंगः ॥ चारशृंगवाले १ चार शृंग तीन पांव दो शिखा सात हाथ यह श्रुति है २ ॥ गदाग्रजः ॥ गदनाम यादवके बडे भाई वासुदेव हैं निगदनाम मंत्रसे सामने प्रगट होय ९४॥

चतुर्मूर्तिश्चतुर्बाहुश्चतुर्व्यूहश्चतुर्गतिः ॥
चतुरात्मा चतुर्भावश्चतुर्वेदविदेकपात् ॥ ९५ ॥

चतुर्मूर्तिः ॥ विराट् १ सूत्र २ अव्याकृत नाम वेदांतका सिद्धांत ३ तुरीय आत्मा ४ यह चार मूर्ति हैं जिसकी १ श्वेत रक्त पीत कृष्ण चाररंगकी मूर्तिवाले २ ॥ चतुर्बाहुः ॥ चारभुजावाले यह नाम वासुदेवमें रूढ है क्योंकि चार भुजा और देवताओंके भी हैं पर चतुर्भुज वासुदेव ही कहावते हैं १ ॥ चतुर्व्यूहः ॥ शरीरपुरुष १ वेदपुरुष २ महापुरुष ३ छंदपुरुष ४ इन चार व्यूहवाले २ ॥ चतुर्गतिः ॥ चारो वर्ण चारो आश्रमके स्वधर्म करनेवालोंकी जो गतिरूप हैं॥ चतुरात्मा ॥ रागद्वेषादिकसे रहित ऐसा चतुर है मन जिसका १ मन चित्त बुद्धि और अहंकार चार आत्मावाले २ ॥ चतुर्भावः ॥ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, यह चार जिससे उत्पन्न हैं १॥ ७७० नाम ॥ चतुर्वेदवित् ॥ चारों वेदोंको यथार्थ जाननेवाले १ ॥ एकपात् ॥ एकचरणवाले १ सारा विश्व जिसका चरण है यह श्रुति है सारा जगत् मेरे एक अंशसे स्थित है यह गीताकी १० अध्यायमें है ॥ ९५ ॥

समावर्तोनिवृत्तात्मा दुर्जयो दुरतिक्रमः ॥
दुर्लभो दुर्गमो दुर्गो दुरावासो दुरारिहा ॥ ९६ ॥

समावर्तः ॥ संसारचक्रको जो अच्छी तरह घुमावै १ ॥ अनिवृत्तात्मा ॥ सर्व व्यापक होनेसे जिसकी आत्मा किसी पदार्थसे पृथक् नहीं है १ निवृत्त है सब विषयोंसे आत्मा जिसका २ इस अर्थसे निवृत्तात्मा नाम है ॥ दुर्जयः ॥ किसीसे जीता न जाय १ ॥ दुरतिक्रमः ॥ जिसके भयसे सूर्यादिक आज्ञा मानते हैं १ जिसके भयसे वायु वहता है सूर्य तपता है इंद्र वर्षता है आग जलती है जिसके डरसे मौत मारती है यह महाभारतमें है ॥ दुर्लभः ॥ दुर्लभ भक्तिसे मिलता है १ हजारों जन्मोंके तप ध्यान समाधि करनेसे कृष्णभक्ति होती है यह व्यासका वचन है १ अनन्य भक्तिसे मिलता है यह गीतामें कहा है २ ॥ दुर्गमः ॥ दुःखसे जानाजाय १ ॥ दुर्गः ॥सब विषयोंके दूर होनेपरभी बड़े दुःखसे जानाजाय १ ॥ दुरावासः ॥योगियोंके हृदयमें कष्टकी बड़े समाधिसे वसे १ ॥ ७८० नाम ॥ दुरारिहा ॥ दुष्ट वैरी जो दानव उनका नाशक १ ॥ ९६ ॥

**शुभांगो लोकसारंगः सुतंतुस्तंतुवर्धनः ॥**
**इंद्रकर्मा महाकर्मा कृतकर्मा कृतागमः ॥ ९७ ॥**

शुभांगः ॥ सुन्दर अंग ध्यानके योग्य १ ॥ लोकसारंगः ॥ लोकसार नाम भक्तिको सारंग धनुषकी तरह धारण करते हैं १ ॥ लोकसार नाम प्रणवसे जो प्राप्त होय २ ॥ सुतंतुः ॥ सुंदर है जगत्के विस्ताररूपी तंतु जिसका १ ॥ तंतुवर्द्धनः ॥ संसाररूपतंतुको बढानेवाले १ संसाररूपीतंतुको काटै २ ॥ इंद्रकर्मा ॥ इंद्रकेसे कर्म जिसके हैं १ ॥ ऐश्वर्यके कर्म हैं जिसके २ ॥ महाकर्मा ॥ आकाशादिक पंचभूतका कर्ता १ ॥ कृतकर्मा ॥ जो संपूर्ण कर्मको करचुके और कुछ करना बाकी न रहै १ धर्मरूपी कर्मका स्थापन करनेवाला २ ॥ कृतागमः ॥ आगम

नाम वेदका कर्ता १ जिस महद्भूतका वेद श्वास है यह श्रुति है ॥ ९७ ॥

उद्भवः सुंदरः सुंदो रत्ननाभः सुलोचनः ॥
अर्को वाजसनः शृंगी जयंतः सर्वविज्जयी ॥ ९८ ॥

उद्भवः ॥ दूर हो गया है जन्म जिसका सर्वकारण होनेसे १ ॥ ७९०नाम ॥ सुंदरः ॥ सोहना जन्म है जिसका अपनी इच्छासे १ ॥ सुंदः ॥ सुंद नाम कोमल है स्वभाव जिसका १ ॥ रत्ननाभः ॥ रत्नकी नाईं चमकती है नाभि जिनकी १ ॥ सुलोचनः ॥ उत्तम हैं ज्ञानके नेत्र जिसके १ ॥ अर्कः ॥ ब्रह्मादिकके परम पूज्य १ ॥ वाजसनः ॥ वाज नाम अन्न सनः नाम दाता अन्नके दाता ॥ शृंगी ॥ प्रलयमें मत्स्यरूप होके अपनेशृङ्गमें नाव बांधी जिसने १ ॥ जयंतः वैरियोंको अच्छी तरह जीतनेवाले १ ॥ जयदाता २ ॥ सर्वविज्जयी ॥ सबको जानै सो सर्ववित्१ सर्ववित् भी है जयी भी है भीतरके शत्रु रागादिक बाहरके शत्रु हिरण्यकशिपु आदिकके जीतनेका स्वभाव है जिसका १ ॥ ९८ ॥

सुवर्णबिंदुरक्षोभ्यः सर्ववागीश्वरेश्वरः ॥
महाह्रदो महागर्तो महाभूतो महानिधिः ॥ ९९ ॥

सुवर्णबिंदुः ॥ बिंदु नाम अवयव तथा अंग जिसके सुवर्णकी नाईं चमकें १ वर्णनाम अक्षर सुंदर अक्षर और बिंदु है जिस मंत्रमें मंत्ररूप २ ॥ ८०० नाम ॥ अक्षोभ्यः ॥ विषयादिक और विकारादिकसे जो क्षुब्ध न होय क्षोभनाम घबराना १ ॥ सर्ववागीश्वरेश्वरः ॥ ब्रह्मा बृहस्पति आदिक जो वाणी के ईश्वर हैं उनका भी ईश्वर १ ॥ महाह्रदः ॥ जिस आनंदरूपी ह्रदनाम तालाबमें स्नान करके योगी लोग सुखसे वास करें १ ॥

महागर्तः ॥ गढेकी तरह जिसकी मायाका बहुत दुःखसे भी पार न मिले १ "मम माया दुरत्यया" यह गीतामें है ॥ गर्त नाम रथ जिसका बड़ा रथप्रमाण महाभारतसे २ ॥ महाभूतः ॥ तीन कालमें परिपूर्ण स्वरूप १ ॥ महानिधिः ॥ सबभूत जिसमें हैं सो महानिधि १ ॥ ९९ ॥

**कुमुदः कुंदरःकुंदः पर्जन्यः पावनोऽनिलः ॥**
**अमृताशोऽमृतवपुः सर्वज्ञः सर्वतो मुखः ॥१००॥**

कुमुदः ॥ कु नाम पृथ्वी मुद नाम हर्षदाता अवतारादिक धारके पृथ्वीको आनंददाता ॥ १ ॥ कुंदरः ॥ कुंदकेफूलसे उजले धर्मोंके फलदाता १ पृथ्वीके धारनेवाले हिरण्याक्षके घातक वराहरूप २ ॥ कुंदः ॥ कुंदके रंग समान निर्मल प्रधान अंगवाले १ कुंदनाम यम २ कु पृथ्वी के राजोंको मारनेवाले परशुरामजी ३ कुनाम पृथ्वीको अश्वमेध करके परशुरामजी रूपसे कश्यपको दान करदी ४ ॥ पर्जन्यः ॥ मेघकी तरह तीनों तापके मिटानेवाले १ सब कामनाके मेघनाम वरसावनेवाले २ ॥ ८१० नाम ॥ पावनः ॥ स्मरणहीसे पवित्र करते हैं १ ॥अनिलः॥ जिसको कोई इल नाम प्रेरक नहीं १ इल नाम नींदसे रहित सदा जागृत् २ ॥ अमृताशः ॥ आत्मारूपी अमृत भोजन है जिसका १ अमृत नाम अविनाशी फलदायक है आत्मा जिसका २ समुद्र मथ आपभी अमृत पिया देवतोंको भी दिया ३ ॥ अमृतवपुः ॥ जिसको मौत नहीं १ ॥ सर्वज्ञः ॥ सब वस्तुका ज्ञाता १ सर्वज्ञ सर्ववित् हैं यह श्रुति है ॥ सर्वतोमुखः ॥ सब तरफ मुँह है जिसका १ ॥ सब तरफ आंख शिर मुँह है यह गीता है ॥ १०० ॥

**सुलभः सुव्रतः सिद्धः शत्रुजिच्छत्रुतापनः ॥**
**न्यग्रोधोदंबरोऽश्वत्थश्चाणूरांध्रनिषूदनः ॥ १०१ ॥**

सुलभः ॥ भक्तोंसे पत्रपुष्प लेकर जलदी प्राप्त होय १ ॥ सुव्रतः ॥ सुंदर शोभित है व्रत नाम नेम जिसका १ ॥ सिद्धः ॥ आपसे आप जिसको सब सिद्धि प्राप्त हैं ॥ शत्रुजित् ॥ जो देवतोंके वैरी सोई नारायणके वैरी हैं उनके जीतनेवाले १ ॥ ८२० नाम ॥ शत्रुतापनः ॥ देवतोंके शत्रुको जलानेवाले १ ॥ न्यग्रोधः ॥ सबसे ऊँचे १ सबभूतोंको मायामें लपेटनेवाले २ ॥ उदंबरः ॥ अम्बरनाम आकाश सबभूतोंका कारणभूतसे जो उत्पन्न होय १ ऊर्ग अन्नरूप आत्मासे विश्वको पालन करै २ ॥ ऊर्ग नाम अन्नसे जिसने जिलाया यह श्रुति है ॥ अश्वत्थः ॥ श्वनाम कल्ह जो कल्हनाम दूसरे दिनतक न रहै १ अश्वत्थकी तरह जो स्थित रहै २ ॥ ऊपर जड़ नीचे डाली है जिसकी ऐसा अश्वत्थ सनातन है यह श्रुति है और गीता में है ॥ चाणूरांध्रनिषूदनः ॥ चाणूर नाम दैत्य आंध्रजातका अथवा अन्ध्रनाम देशका वासी सो आंध्र उसके घातक१ चाणूरके शरीरके नाशक २ ॥ १०१ ॥

**सहस्रार्चिः सप्तजिह्वः सप्तैधाः सप्तवाहनः ॥**
**अमूर्तिरनघोऽचिंत्यो भयकृद्भयनाशनः ॥ १०२ ॥**

सहस्रार्चिः ॥ अनन्त किरणवाले १ ॥ गीतामें कहा है कि जो हजार सूर्य आकाशमें एक बार उदय होयँ तो भी उस महात्माकी किंचित् सादृश्य होय ॥ सप्तजिह्वः ॥ अग्निरूप सात जिह्वावाले ॥ काली १ कराली २ मनोजवा ३ सुधूम्रवर्णा ४ सुलोहिता ५स्फुलिंगिनी ६ विश्वरुचिः ७ ॥ सप्तैधाः ॥ सात एधसनाम दीप्तिवाले १ ॥ सप्तवाहनः ॥ सात घोड़ोंपर चढ़नेवाले १ एक

वाहन घोड़ा सात नामवाला १ एक घोड़ा सात नामवाला है ये श्रुति है॥ गायत्री १ बृहती २ उष्णिक् ३ जगती ४ त्रिष्टुप् ५ अनुष्टुप् ६ पंक्ति ७ सातघोड़ोंके रूप होकर छंदनाम वेद जिसको उठावै वह विष्णुपुराणमें मत्स्यपुराणमें है॥ अमूर्तिः॥ चराचररूप जो भोज्य है सो जिसको नहीं जो कुछ खाता नहीं और प्रकाशमान है १॥ पंचभूतोंमेंसे आदमियोंका भोजन अन्न और जानवरोंका भोजन जानवर यह सब नहीं है जिसको, यह श्रुति है मूर्ति नाम देह जिसको नहीं२॥ ८३० नाम॥ अनघः॥ पाप और दुःखसे रहित १॥ अचिन्त्यः॥ सबका साक्षी पालनहार १ सबप्रमाणोंसे बाहर जिसको चिंतन न कर सकै २ सब प्रपंचसे न्यारा ३ जिसको यह है ऐसा है नहीं कहसकै ४॥ भयकृत्॥ असत्मार्गवालोंको भयदाता १ भक्तोंका भय काटनेवाले २॥ भयनाशनः॥ अपने अपने वर्णाश्रमके धर्मवालोंको परमपुरुष विष्णुकी आराधनाके सिवाय दूसरी राह नहीं है यह विष्णुपुराणमें है॥ १०२॥

अणुर्बृहत्कृशः स्थूलो गुणभृन्निर्गुणो महान्॥
अधृतः स्वधृतः स्वास्यः प्राग्वंशो वंशवर्द्धनः॥ १०३॥

अणुः॥ परमसूक्ष्म १ ब्रह्म अणु है यह श्रुति है॥ बृहत्॥ बढनेवाले बढानेवाले १ बड़ोंसे बड़ा है यह श्रुति है॥ कृशः॥ स्थूलता नाम मोटाईरहित॥ स्थूलः॥ सर्वरूप है इसवास्ते मोटा॥ गुणभृत्॥ सत्त्व, रज, तम तीनोंगुणोंका और उत्पत्ति स्थिति लय तीनों क्रियाके अधिष्ठान॥ निर्गुणः॥ गुणसे रहित १ कैवल्य है निर्गुण है यह श्रुति है॥ ८४० नाम॥ महान्॥ गुणोंसे रहित सूक्ष्मतर १ नित्य शुद्ध बुद्ध सर्वगत

जिसको यह है इतना है यह न जानसके २ जिसके शब्द नहीं स्पर्श नहीं ३ ॥ अधृतः ॥ जो किसीसे उठाया न जाय पृथ्वीके बोझ उठानेवाले शेषनागादिकाभी बोझ उठानेवाले १ ॥ स्वधृतः ॥ अपनी आत्माको आपही उठानेवाले १ वह भगवान् किसीमें प्रतिष्ठित है अपनी ही महिमामें प्रतिष्ठित है यह श्रुति है ॥ स्वास्यः ॥ कमलकीसी शोभा है जिसके मुखकी १ वेदरूपी शब्द जिसके मुखसे पुरुषार्थके उपदेशके वास्ते निकाला है २ परमात्माके सब वे श्वास हैं यह श्रुति है ॥ प्राग्वंशः ॥ सब वंश वालोंका वंश है नाम सबसे पहिले है पीछेसे प्रपंच रूपी वंश जिसका हुआ॥ वंशवर्द्धनः ॥ वंश नाम संसाररूपी प्रपंचका बढानेवाला १ प्रपंचके काटनेवाले २ ॥ १०३ ॥

**भारभृत्कथितो योगी योगीशः सर्वकामदः ॥**
**आश्रमः श्रमणः क्षामः सुपर्णो वायुवाहनः ॥१०४॥**

भारभृत् ॥ शेष नाग कूर्मवाराहादिक धारणकर भूमिभारको धारनेवाले १ ॥ कथितः ॥ वेदोंने देवतोंने जिसको परमात्मा कहा है १ सब वेद जिसकी मर्यादा मानते हैं सब भूतोंका परमात्मा वेदोंने कहा है २ सब वेद जिसके पदका मनन करैं सब वेदोंमें मैंही जानने योग्य हूँ यह गीता है ३ वेदमें पुराणमें भारतमें रामायणमें विष्णुको सब जगह गाया है ॥ योगी ॥ योग नाम ज्ञानसे जो मिलै योगसमाधिसे अपनी आत्माको सदा धारनेवाले १ ॥ योगीशः ॥ योगियोंका भेद दूर करनेवाले आप अभेद १ सब योगियोंके ईश्वर २ ॥ ८५० नाम ॥ सर्वकामदः ॥ सबकामनाके दाता ॥ जिससे फल उत्पन्न होते हैं यह व्यासने कहा है १ ॥ आश्रमः ॥ सव संसारका घर १ संसाररूप वनमें भटकते हुये लोगोंका

विश्रामस्थान २ ॥ श्रमणः ॥ मूर्खों को संताप नाम दुःख देनेवाले १ ॥ क्षामः ॥ सब भूतोंको छिन्न करनेवाले १ ॥ सुपर्णः ॥ वेदरूपी अच्छे पंखवाले १ वेद जिसके पत्ते हैं यह गीतामें है ॥ वायुवाहनः ॥ जिसके डरसे हवा चलती है ॥ १०४ ॥

धनुर्धरो धनुर्वेदो दंडो दमयिता दमः ॥
अपराजितः सर्वसहो नियंता नियमोयमः॥ १०५ ॥

धनुर्धरः ॥ श्रीरामरूपसे धनुषधारी १ ॥ धनुर्वेदः ॥ रामचंद्ररूपसे धनुर्विद्याका जाननेवाला १ ॥ दंडः ॥ दंडरूप होकर दमनकर्ता १ ॥ दमयिता ॥ धर्मराजरूप और मनु और राजारूपसे प्रजाके दमन करनेवाले १ दंड और दमयिता मैं हूँ यह गीताहै ॥ ८६० नाम ॥ दमः॥ दंड और दंडका कार्यरूप और दंडरूप भी है ॥ अपराजितः ॥ शत्रुओंसे जीता न जाय १ ॥ सर्वसहः॥ सब कामोंमें सामर्थ्यवाले १ सब वैरियोंको अनादर करनेवाले २ पृथ्वीरूपसे सबके उठानेवाले ३ ॥ नियंता ॥ सबको अपने अपने कामोंमें लगानेवाले ॥ अनियमः ॥ जिसका कोई काममें लगानेवाला नहीं १ सब कामप्रेरक नाम हाकीम है उसका कोई प्रेरक नहीं ॥ अयमः ॥ यम नाम मृत्यु जिसको नहीं १ यम नियम योगके अंग हैं उनके करनेसे जो मिलै आपही यम है आपही नियम हैं क्योंकि यम नियम करनेसे आत्मा मिलता है॥ १०५ ॥

सत्त्ववान्सात्त्विकः सत्यः सत्यधर्मपरायणः ॥
अभिप्रायः प्रियार्होऽर्हः प्रियकृत्प्रीतिवर्धनः॥ १०६॥

सत्त्ववान् ॥ शूरता वीरता सत्त्व नाम पराक्रम है जिसका १ ॥ सात्त्विकः ॥ सत्त्वगुणमें प्रधानकरके स्थित १ ॥ सत्यः ॥

सत्पुरुषोंमें भली भाँति जो वास करै १ ॥ सत्यधर्मपरायणः ॥ सच बोलनेमें और धर्म नाम वेदकी आज्ञामें परायण नाम लगेहुये ॥ १ ॥ ८७०नाम ॥ अभिप्रायः ॥ पुरुपार्थी लोग जिससे मुक्तिकी प्रार्थना करैं १ अथवा जिसमें जगत् लय होय २ ॥ प्रियार्हः ॥ प्रिय नाम प्यारी वस्तु उसके योग्य ॥ अर्हः ॥ अर्हनाम आसन प्रशंसा अर्घ पूजा स्तुति नमस्कार ध्यान इन साधनोंके योग्य प्रियकृत् ॥ स्तुति करनेवाले भक्तोंकी कामना पूरी करै १ ॥ ॥ प्रीतिवर्द्धनः ॥ भक्तोंकी प्रीति बढावनेवाले ॥ १०६ ॥

**विहायसगतिर्ज्योतिः सुरुचिर्हुतभुग्विभुः ॥**
**रविर्विरोचनः सूर्यः सविता रविलोचनः ॥ १०७ ॥**

विहायसगतिः ॥ विहायस नाम आकाशमें है गति जिसकी १ लोकमें जो जो प्यारी वस्तु है उसके बढ़नेकी इच्छासे गुणवान् श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ अथवा सर्वज्ञ आत्माके अर्पण करनेलायक २ विष्णुके चरण वा सूर्य ३ ॥ ज्योतिः ॥ आप प्रकाशरूप १ नारायण परमज्योति है यह श्रुति है ॥ सुरुचिः ॥ सुंदरप्रकाश अथवा उत्तम इच्छावाले १ ॥ हुतभुक् ॥ देवतोंके नामकी जो आहुति है उसके खानेवाले १ ॥ विभुः ॥ व्यापक तीन लोकके प्रभु १ ॥ ८८०नाम ॥ रविः ॥ रसके लेनेवाले सूर्यरूप १ ॥ विरोचनः ॥ नानारूपसे सूर्य चांद ग्रहरूपसे प्रकाश करनेवाले ॥ सूर्यः ॥ सबके उत्पत्ति करनेहार १ सब जगत्को काममें लगानेवाले २ ॥ सविता ॥ सबजगत्के दाता १ सब जगत्के रचनेवाले२ सब रसोंके दाता ३ ॥ रविलोचनः ॥ सूर्य है आंख जिसकी १ अग्नि माथा है सूर्य चांद आँख हैं यह श्रुति है ॥ १०७ ॥

**अनंतो हुतभुग्भोक्ता सुखदो नैकजोऽग्रजः ॥**
**अनिर्विण्णः सदामर्षी लोकाधिष्ठानमद्भुतः ॥ १०८ ॥**

अनंतः॥ नित्य सब देश सब काल सब वस्तु रूप व्यापक किसी देश किसी काल किसी वस्तुमें जिसका नियम न होसके १ शेष नागरूप २॥ हुतभुक्॥ यज्ञको भोगनेवाला १॥ भोक्ता॥ भोग नाम मायाके भोग करनेवाले १ जगत्के पालनेवाले २॥ सुखदः॥ भक्तोंको मुक्तिरूप सुख देनेवाले १ दुःखको काटनेवाले २॥ नैकजः॥ धर्मकी रक्षाके वास्ते वारंवार जन्म लेनेवाले १॥ ८९० नाम॥ अग्रजः॥ सबसे पहले जन्म धारनेवाले १ अग्रज नाम हिरण्यगर्भ २ हिरण्यगर्भ सबके पहले हुवा यह श्रुति है॥ अनिर्विण्णः॥ सब काम प्राप्तहोनेसे वैराग्यरहित १॥ सदामर्षी॥ सत्कर्म करनेवालोंको सहनेवाले १॥ लोकाधिष्ठानम्॥ सब जगत्को धारणकरै नाम जगत् जिसमें रहै १ जिसमें तीन लोक वसै ऐसा ब्रह्म है २॥ अद्भुतः॥ आश्चर्यरूप शक्ति जिसकी १ कोई आश्चर्यकी तरह देखता है कोई अचरजकी नाईं कहता है कोई अचरजकी तरह सुनता है यह गीतामें है॥ १०८॥

**सनात्सनातनतमः कपिलः कपिरव्ययः॥स्वस्तिदः स्वस्तिकृत्स्वस्ति स्वस्तिभुक्स्वस्तिदक्षिणः॥१०९॥**

सनात्॥ सबका कालरूप कल्पोंसे श्रेष्ठ १ब्रह्मका रूप बहुकाल रहनेवाला सनातन है यह विष्णुपुराणमें है॥ सनातनतमः॥सबका कारण ब्रह्मादिकसे भी पुराना १॥ कपिलः॥ वडवाग्निरूप कपिलवर्ण १ क नाम जल पि नाम पीनेवाला अपनी किरणोंसे सूर्यरूप २॥ कपिः॥ नाम वराहजी॥ अव्ययः॥ प्रलयकालमें जगत् जिसमें लयहोय १॥ ९०० नाम॥ स्वस्तिदः॥ भक्तोंको कल्याणदायक १॥ स्वस्तिकृत्॥ कल्याण करनेवाले १॥ स्वस्ति॥ मंगलरूप परमानंदलक्षण १॥ स्वस्तिभुक्॥ कल्याणके

भोगनेवाले १ भक्तोंको कल्याणका भोग करानेवाले २ ॥ स्वस्तिदक्षिणः ॥ कल्याणरूप होकर बढ़नेवाले १ कल्याणकरनेमें समर्थ २ कृष्णके स्मरणसे सब सिद्धि प्राप्त होती है यह स्मृति है ॥ १०९ ॥

**अरौद्रः कुंडली चक्री विक्रम्यूर्जितशासनः ॥**
**शब्दातिगःशब्दसहःशिशिरः शर्वरीकरः॥ ११० ॥**

अरौद्रः ॥ कर्मरौद्र रागरौद्र कोपरौद्रसे रहित नाम दुःखदायी काम दुःखदायी राग नाम प्रीति और बहुत दुःखदायी कोप जिसमें नहीं १ सर्वकाम प्राप्त होनेसे रागद्वेषसे रहित २ ॥ कुंडली ॥ शेषरूप सहस्रांशुसूर्यमंडलरूपी कुंडल है जिसका २ सांख्य योगरूपी कुंडल धारनेवाला ३ ॥ चक्री ॥ लोगोंकी रक्षाके वास्ते मनरूप सुदर्शनचक्र धारनेवाले १ बलरूप धारनेवाले २ बडेवेगसे वायुको मनरूपी चक्रमें छीननेवाले ३ ॥ विक्रमी॥ चरणोंका धरना अथवा शूरता विलक्षण है जिसकी १॥ऊर्जितशासनः ॥ ऊर्जित नाम बढ़ी है 'शासन नाम आज्ञा जिसकी १ श्रुतिस्मृति हमारी आज्ञा है, उसको न माने सो हमारा शत्रु है यह भगवद्वचन है ॥ ९१० नाम ॥ शब्दातिगः ॥ वाणी जिसके कहनेमें मनसहित जिसके विचारमें फेर आतीहै १ शब्दनाम वेदसे जाना जाय यह श्रुति है सब वेदोंसे मैंही जाननेयोग्य हूँ यह गीता है ॥ शब्दसहः ॥ सारे वेद व्यंगसे जिसको कहैं सब वेद जिसकी आज्ञामानैं ॥ वेदोंमें सामवेद मैं हूँ यह गीतामें है १॥ शिशिरः ॥ तीनों तापसे भूलसे हुवोंको ढक देनेवाले शिशिररूप १ ॥ शर्वरीकरः ॥ ज्ञानियोंको मुक्तिदाता १ संसारी लोगोंको रात करनेवाले ॥ ११० ॥

अक्रूरः पेशलो दक्षो दक्षिणः क्षमिणांवरः ॥
विद्वत्तमो वीतभयः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ १११ ॥

अक्रूरः ॥ सब कामके प्राप्तहोनेसे क्रोधरहित ॥ पेशलः ॥ जिसका शरीर कर्म मन वाणी शोभावान् है १ ॥ दक्षः ॥ बड़ेसे बहुत बड़ा परम समर्थ और वक्तु जल्दीरूप १ ॥ दक्षिणः ॥ दक्षिण शब्दका भी दक्ष अर्थ है १ ॥ क्षमिणांवरः ॥ क्षमाकरनेवाले योगी १ अथवा पृथ्वी इनसे श्रेष्ठ पृथ्वीकी तरह क्षमावाला है यह वाल्मीकिका वाक्य है ॥ क्षमा जो शक्ति सब शक्तिवानोंमें श्रेष्ठ ॥ विद्वत्तमः ॥ सदा पूर्णज्ञानवाले १ ॥ ९२० नाम ॥ वीतभयः ॥ दूर हो गया है संसाररूपी भय जिसका १ संसारके भयसे रहित २ सबका ईश्वर नित्यमुक्त ॥ पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ श्रवण और कीर्तन जिसके गुण और यशको पवित्र करता है १ जिसका श्रवण कीर्तन करनेसे दोनों लोकमें अशुभ नहीं होता यह व्यासका वचन है २ ॥ १११ ॥

उत्तारणो दुष्कृतिहा पुण्यो दुःस्वप्ननाशनः ॥
वीरहा रक्षणः सन्तो जीवनः पर्य्यवस्थितः ॥ ११२ ॥

उत्तारणः ॥ संसारसागरसे पार उतारनेवाला १ ॥ दुष्कृतिहा ॥ दुष्कृति नाम पाप समूहको दूरकरनेवाले १ पापीजनोंको मारनेवाले२ ॥ पुण्यः ॥ सब स्मरणादिककरनेवालोंको पवित्रकरै श्रुति स्मृतिआदिक वचनोंसे उपदेश करनेवाले २ इतिहास पुराण श्रवणकरनेवालोंको पवित्र कर्ता ३ ॥ दुःस्वप्ननाशनः ॥ ध्यान पूजा स्तुतिकरनेसे खोटेस्वप्न नाशकरनेवाले १ ॥ वीरहा ॥ सब दुःखोंको दूरकरके मुक्तिदाता १ ॥ रक्षणः ॥ सत्त्वगुणसे तीन लोककी रक्षाकरनेवाले ॥ सन्तः ॥ संत रूप होकर विद्या और विनयको बढ़ावनेवाले १ उत्तम मार्गमें चलैं सो संत ॥ जीवनः ॥

प्राणरूप होकर जगत्को जिलावनेवाले १ ॥ ९३० नाम पर्यवस्थितः ॥ संपूर्ण विश्वमें व्याप्तहोके रहनेवाले १ ॥ ११२ ॥

**अनन्तरूपोऽनतश्रीर्जितमन्युर्भयापहः ॥**
**चतुरस्रो गभीरात्मा विदिशो व्यादिशो दिशः ११३**

अनंतरूपः ॥ अनंतरूप होकर अथवा जगत्रूप होके रहै १ ॥ अनंतश्रीः ॥ अप्रमाण शक्तिवाले १ उसकी परमशक्ति नाम हैं यह श्रुति है ॥ जितमन्युः ॥ मन्यु नाम क्रोधको जीतनेवाले ॥ भयापहः ॥ संसारका भय नाश करनेवाले १ संसाररूपी भयके नाशक२ ॥ चतुरस्रः ॥ न्याययुक्तको चतुरस्र कहते हैं पुरुषोंको कर्मके अनुसार चार फल देनेवाले १ ॥ गभीरात्मा ॥ गभीर नाम अथाह आत्मा स्वरूप १ अप्रमाण आत्मा २ ॥ विदिशः ॥ नाना प्रकारके फल अधिकारियोंको देनेवाले १ ॥ व्यादिशः ॥ इंद्रादिकको आज्ञा देनेवाले इंद्रादिककी आज्ञाकरनेवाले २ ॥ दिशः ॥ वेदरूप होके कर्मोंके फल बतावनेवाले १ ॥ ९४० नाम ॥ ११३ ॥

**अनादिर्भूर्भुवो लक्ष्मीः सुवीरो रुचिरांगदः ॥**
**जननो जनजन्मादिर्भीमो भीमपराक्रमः ॥११४॥**

अनादिः ॥ अनादि नाम कारणरहित १ ॥ भूर्भुवः ॥ जगत्की आधार पृथ्वी उसके भी आधार १ ॥ भू नाम पृथ्वीकी लक्ष्मी नाम शोभा भुवोलक्ष्मीः एकनाम है १ भूलोक भुवर्लोक और लक्ष्मी नाम आत्मविद्या यह तीनरूप हैं जिसका २ ॥ लक्ष्मीः ॥ आत्मविद्या चंद्र सूर्य अग्निरूपसे लक्ष्मी नाम शोभित २ सुवीरः ॥ ईर नाम गति सुन्दर है जिसकी १ श्रवणमननिदिध्यासनादिक सुन्दर हैं ज्ञानके साधन जिसके २ सुन्दर है गति मच्छ कच्छ आदिक रूपमें पृथ्वीके हितके वास्ते जिसकी ३ ॥

रुचिरांगदः ॥ सुंदर बाहुभूषणवाला १॥ जननः ॥ जीवोंका पैदा करनहार १॥ जनजन्मादिः ॥ जीवोंके जन्मका मूलकारण १ ॥ भीमः ॥ सबको भयदाता १ ॥ भीमपराक्रमः ॥ असुरोंके भय-दायक है पराक्रम जिसका ॥ ११४ ॥

आधारनिलयो धाता पुष्पहासः प्रजागरः ॥
ऊर्ध्वगः सत्पथाचारः प्राणदः प्रणवः पणः ॥११५॥

आधारनिलयः॥ पृथिव्यादिक पंचभूत जो जगत्का आधार है उनकाभी आधार १ ॥ ९९० नाम ॥ अधाता ॥ जिसके स्वरूपका कोई पैदा करनेवाला नहीं है आपसे आपही स्थित प्रलयमें सबको धारनेवाला इस पक्षमें धाता नाम है १ ॥ पुष्पहासः ॥ खिलेहुये फूलकी तरह जगत्को प्रकाश करनेवाले १ यह जगत् भगवान्की फुलवारी है २ ॥ प्रजागरः ॥ सदाबु-द्धिरूप हैं इसीवास्ते सदा जागनेवाला है ॥ ऊर्ध्वगः ॥ सबसे ऊंचा १ ॥ सत्पथाचारः ॥ सत्पुरुषोंके कर्म अच्छीराहसे आच-रण करनेवाले १ सज्जनोंको भले मार्गमें चलावे २ वेदमार्ग आचार है जिसका ३ ॥ प्राणदः ॥ प्राण देनेवाले १ परीक्षिता-दिक मरेहुवोंको जिलावनेवाले २ ॥ प्रणवः ॥ ॐकाररूप परमात्मा १ ॥ पणः ॥ व्यवहारमें प्रतिज्ञा पूर्ण करनेवाले १ अधि-कारियोंके पुण्य लेकर उसके बदलेमें फल देनेवाले २ पण नाम चित्त वह मोक्षकालमें अथवा सुषुप्तिकालमें जिसमें लयहोय ॥ ११५ ॥

प्रमाणं प्राणनिलयः प्राणभृत्प्राणजीवनः ॥
तत्त्वं तत्त्वविदेकात्मा जन्ममृत्युजरातिगः॥११६॥

प्रमाणम् ॥ प्रमाज्ञानस्वरूप १ स्वयंप्रकाश २ प्रमा ज्ञान ब्रह्म-विद्या यह श्रुति है अनंतज्ञानस्वरूप भ्रांतिसे जीवरूप हो गया यह विष्णुपुराणमें है २॥ प्राणनिलयः॥ प्राणइंद्रिय जिसमें

लय होय ऐसा जीवरूप १ प्राण अपानादिकहीसे मनुष्य नहीं जीता किंतु जिसके आश्रय प्राण हैं उससे जीता है २ ॥ ९६० नाम ॥ प्राणभृत् ॥ अन्नरूप होके प्राणका पालक १ ॥ प्राणजीवनः ॥ प्राण नाम वायुसे मनुष्योंको जिलावनेवाले १ तत्त्वम् ॥ तत्सत्व अमृत यह ब्रह्मके नाम हैं ॥ तत्त्ववित् तत्त्वके स्वरूपको यथार्थ जाननेवाले ॥ एकात्मा ॥ आपही एक आत्मारूप हैं और कुछ नहीं है १ एक है सब पहिले होनेवाला यह श्रुति है ॥ जन्ममृत्युजरातिगः ॥ जन्मसे आदिलेकर षट्विचारोंका उलंघनेवाला १ न जन्मता है न मरता है न यह था न है न होगा ॥ अज है नित्य है शाश्वत है पुराणहै यह गीता है ॥ ११६ ॥

**भूर्भुवःस्वस्तरुस्तारः सपिता प्रपितामहः ॥**
**यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा यज्ञांगो यज्ञवाहनः ॥११७॥**

भूर्भुवः स्वस्तरुः ॥ तीनों लोकरूप वृक्षके रूप १ भूर्भुवः स्वः इन व्याहृतिसे जगत्को तारनेवाला २ यज्ञसे मेघ वर्षता-है मेघसे अन्न होता है अन्नसे प्राणी यह मनु कहते हैं और गीतामें भी है २ ॥ तारः ॥ संसारसागरसे तारनेवाले १ तार नाम प्रणवका भी है ॥ सपिता ॥ लोकोंका पिता ॥ प्रपितामहः ॥ ब्रह्माकाभी पिता १॥ ९७० नाम ॥ यज्ञः ॥ यज्ञरूप यज्ञमें जाने वाले २ ॥ यज्ञपतिः ॥ यज्ञके रक्षक अथवा स्वामी १ सब यज्ञोंके प्रभु और भोक्ता में हूँ यह गीता है ॥ यज्वा ॥ यजमानरूप १ ॥ यज्ञांगः ॥ यज्ञ है अंग जिसके ऐसी वराहमूर्ति वेद जिसके परे हैं, डाढ जिसकी स्तंभ हैं, क्रतु हाथ हैं, चित्ती नाम अग्निका स्थान मुख हैं, अग्नि जीभ है, कुशा रोम हैं, रात दिन आंख हैं, वेदके मंत्र अंगभूषण, घृत नाक है सुवा थुथुन है सत्य और धर्म शब्द है, ब्रह्म नाम ब्रह्मा अथवा ब्राह्मण अर्थात् शिर है, महापिता ऐसी वराहमूर्ति ॥ यज्ञवाहनः ॥ यज्ञोंका फलदाता ॥ ११७ ॥

**यज्ञभृद्यज्ञकृद्यज्ञी यज्ञभुग्यज्ञसाधनः ॥**
**यज्ञांतकृद्यज्ञगुह्यमन्नाद एव च ॥ ११८ ॥**

यज्ञभृत् ॥ यज्ञोंका रक्षक १ ॥ यज्ञकृत् ॥ जगत्के आदिमें यज्ञ करनेवाले १ जगत्के अन्तमें यज्ञ काटनेवाले २॥ यज्ञी॥यज्ञकरनेवालोंमें प्रधान १ ॥ यज्ञभुक् ॥ यज्ञका भोक्ता १॥ यज्ञ साधनः ॥यज्ञकासामान दर्वीस्रुवा चपाल हरि इत्यादिक अंग.१ ॥ ९८० नाम ॥ यज्ञांतकृत् ॥ यज्ञका अंत नाम फल जो दे १ ॥ यज्ञगुह्यम् ॥ यज्ञोंमें सिद्धांतज्ञानयज्ञ १ ॥ अन्नम् ॥ आहाररूप १ जो खाया जाय अथवा जो सबको खाय उसको अन्न कहतेहैं यह श्रुति है ॥ अन्नादः ॥ अन्नखानेवाले ॥ एव च ॥ ११८ ॥

**आत्मयोनिः स्वयंजातो वैखानः सामगायनः ॥**
**देवकीनंदनः स्रष्टा क्षितीशः पापनाशनः ॥ ११९॥**

आत्मयोनिः ॥ आत्माहीसे उत्पन्न ॥ स्वयंजातः ॥ स्वयमेव नाम स्वतः होनेवाला ॥ वैखानः ॥ बहुत खोदनेवाले १ पृथ्वी खोदके पातालमें रहनेवाले वराहरूपहोके हिरण्याक्षको मारनेवाले २ ॥ सामगायनः ॥ सामवेदके गावनेवाले १ सामवेद जिसको गावे २ ॥ देवकीनंदनः ॥ देवकीके बेटा जिसकी आज्ञा सब वेद सब देवता सब लोकपालक तीनों अग्नि मानते हैं वही देवकीनंदन है यह महाभारत है ॥ स्रष्टा ॥ सब सृष्टिका रचनेवाला ॥ ९९० नाम ॥ क्षितीशः ॥ पृथ्वीके प्रभु रामचन्द्ररूप १॥ पापनाशनः॥ पूजन भजन करनेसे पाप नाश करनेवाले पक्षभरके उपवाससे पुरुषका पाप जितना नाश होता है उतना ही १०० प्राणायामसे जाता है जितना १००० हजार प्राणायामसे नाश होताहै उतना विष्णुके एक क्षण ध्यानकरनेसे । यह वृद्ध शातातपका वचन है ॥ ११९ ॥

**शंखभृन्नंदकी चक्री शार्ङ्गधन्वा गदाधरः ॥**
**रथांगपाणिरक्षोभ्यः सर्वप्रहरणायुधः ॥ १२० ॥**

शंखभृत् ॥ भूतोंका आदि जो अहंकार सोई पांचजन्य शंखके धारनेवाले १ ॥ नंदकी ॥ विद्यारूप नंदक नाम तलवार है जिसकी १ ॥ चक्री ॥ मन रूप सुदर्शन नाम चक्रके धारनेवाले १ ॥ शार्ङ्गधन्वा ॥ इंद्रियरूप जिसका शार्ङ्ग नाम धनुष है १ ॥ ॥ गदाधरः ॥ बुद्धिरूपी कौमोदकी नाम गदा है जिसकी ॥ रथांगपाणिः ॥ रथका पहिया जिसके हाथमें होय १ यह कथा महाभारतमें है ॥ अक्षोभ्यः ॥ जिसको कुछभी क्रोध वा भय घबराहट न होय १ ॥ सर्वप्रहरणायुधः ॥ जितने हथियार ऊपर कहे हैं उनके सिवाय और जितनी मारनेकी वस्तु हैं वह सब उसीके हथियार हैं ॥ १००० नाम ॥ १२० ॥

**सर्वप्रहरणायुध ॐ नम इति ॥ ॥ इतीदं कीर्तनीयस्य केशवस्य महात्मनः॥ नाम्नां सहस्रं दिव्यानामशेषेण प्रकीर्तितम् ॥ १ ॥**

ओंनमः ॥ नमस्कारवास्ते पूजाके सर्वप्रहरणायुध दोबार कहनेसे समाप्तिका सूचन होता है ॥ अथ फलश्रुतिः॥इतीदं ॥ इति शब्दसे हजारनामकी पूरी गिनती यह कीर्तन करनेके योग्य केशवमहात्माके हजार नाम जो प्रकाशमान हैं तिनको संपूर्ण भली भाँति कहे हैं ॥ १ ॥

**य इदं शृणुयान्नित्यं यश्चापि परिकीर्तयेत् ॥**
**नाशुभं प्राप्नुयात्किञ्चित्सोऽमुत्रेह च मानवः॥ २ ॥**

जो इसको नित्य सुनै और कीर्तन करै किसीतरहके अशुभ उसको इस लोकमें और परलोकमें नहीं होते ॥ २ ॥

वेदांतगो ब्राह्मणः स्यात्क्षत्रियो विजयी भवेत् ॥
वैश्यो धनसमृद्धः स्याच्छूद्रः सुखमवाप्नुयात् ॥३॥
ब्राह्मण वेदांतका जाननेवाला होय क्षत्रिय लड़ाईमें जीत पावै वैश्यका धन बढ़ै शूद्र सुख पावै ॥ ३ ॥

धर्मार्थी प्राप्नुयाद्धर्ममर्थार्थी चार्थमाप्नुयात् ॥
कामानवाप्नुयात्कामी प्रजार्थी प्राप्नुयात्प्रजाः॥४॥
धर्म चाहनेवाला धर्म पावै अर्थ चाहनेवाला अर्थ पावै काम चाहने वाला काम पावै प्रजा चाहनेवाला औलाद पावै ॥ ४ ॥

भक्तिमान्यः सदोत्थाय शुचिस्तद्गतमानसः ॥
सहस्रं वासुदेवस्य नाम्नामेतत्प्रकीर्तयेत् ॥ ५ ॥
भक्तिसे जो सदा उठकर पवित्र होकर दिल लगाके वासुदेवके सहस्रनामका पाठ करै ॥ ५ ॥

यशः प्राप्नोति विपुलं ज्ञातिप्राधान्यमेव च ॥
अचलां श्रियमाप्नोति श्रेयः प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥६ ॥
उसको बहुत यश मिले जातिमें प्रधानता मिलै अचल लक्ष्मी मिलै सबसे उत्तम कल्याण नाम मुक्ति मिलै ॥ ६ ॥

न भयं क्वचिदाप्नोति वीर्यं तेजश्च विंदति ॥
भवत्यरोगो द्युतिमान्बलरूपगुणान्वितः ॥ ७ ॥
कुछ डर न लगै बड़ा पराक्रम होवै रोग जाय प्रकाशवान् होय बलरूपगुणसे भरा रहै ॥ ७ ॥

रोगार्तो मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बंधनात् ॥
भयान्मुच्येत भीतस्तु मुच्येतापन्न आपदः ॥ ८ ॥
रोगी रोगसे छूटजाय और कैदी कैदसे छूटजाय आपदावाला आपत्से छूटे ॥ ८ ॥

दुर्गाण्यतितरत्याशु पुरुषः पुरुषोत्तमम् ॥
स्तुवन्नामसहस्रेण नित्यं भक्तिसमन्वितः ॥ ९ ॥

बड़े दुःखोंसे जल्दी पार होजाय पुरुषोंमें उत्तम पुरुषको नित्य भक्तिसे सहस्रनाम पढ़के स्तुति करै ॥ ९ ॥

वासुदेवाश्रयो मर्त्यो वासुदेवपरायणः ॥
सर्वपापविशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम् ॥ १० ॥

वासुदेवके आसरेवाला आदमी वासुदेवकी पूजा सेवा स्मरणमें लगाहुआ सब पापोंसे मनशुद्धकरके सनातनब्रह्मकोपावताहै॥ १०॥

न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् ॥
जन्ममृत्युजराव्याधिभयं नैवोपजायते ॥ ११ ॥

वासुदेवके भक्तोंको कभी अशुभ नहीं है जन्म लेना मरना बूढ़ा होना बीमारी यह उसको नहीं होतीं ॥ ११ ॥

इमं स्तवमधीयानः श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ॥
युज्येतात्मसुखक्षांतिश्रीधृतिस्मृतिकीर्तिभिः ॥ १२ ॥

इस स्तोत्रको जो श्रद्धाभक्तिसे पाठ करता है पाता है आत्म-सुख शांति लक्ष्मी धृति कीर्तिसे उसकी आत्मा युक्त होती है ॥ १२ ॥

न क्रोधो नच मात्सर्यं न लोभो नाशुभा मतिः ॥
भवंति कृतपुण्यानां भक्तानां पुरुषोत्तमे ॥ १३ ॥

जो पुरुषोत्तमके भक्त कृतपुण्य लोग हैं उनको क्रोध और मत्सरता और लोभ अशुभमति न होती है ॥ १३ ॥

द्यौः सचंद्रार्कनक्षत्रा खं दिशो भूर्महोदधिः ॥
वासुदेवस्य वीर्येण विधृतानि महात्मनः ॥ १४ ॥

स्वर्ग चंद्रमा सूर्य नक्षत्रोंसमेत आकाश दिया पृथ्वी समुद्र वासुदेवके पराक्रमसे सब धारण करते हैं ॥ १४ ॥

**ससुरासुरगंधर्वं सयक्षोरगराक्षसम् ॥**
**जगद्वशे वर्ततेदं कृष्णस्य सचराचरम् ॥ १५ ॥**

देवता असुर गंधर्व यक्ष सर्प राक्षस समस्त यह जगत् सब चरअचर कृष्णके वशमें हैं ॥ १५ ॥

**इंद्रियाणि मनो बुद्धिः सत्त्वं तेजो बलं धृतिः ॥**
**वासुदेवात्मकान्याहुः क्षेत्रं क्षेत्रज्ञ एवच ॥ १६ ॥**

इंद्रियां मन बुद्धि अंतःकरण तेज बल धृति क्षेत्र क्षेत्रज्ञ यह वासुदेवके आत्मस्वरूप हैं ॥ १६ ॥

**सर्वागमानामाचारः प्रथमं परिकल्पते ॥**
**आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः ॥ १७ ॥**

सब वेदोंमें प्रथम आचार पहिला धर्म है धर्मका रक्षक अच्युत है ॥ १७ ॥

**ऋषयः पितरो देवा महाभूतानि धातवः ॥**
**जंगमाजंगमं चेदं जगन्नारायणोद्भवम् ॥ १८ ॥**

ऋषि पितर देवता महाभूत सब धातु और जंगम स्थावर यह सब नारायणसे उत्पन्न हैं ॥ १८ ॥

**योगो ज्ञानं तथा सांख्य विद्याः शिल्पादिकर्म च ॥**
**वेदाः शास्त्राणि विज्ञानमेतत्सर्वं जनार्दनात् ॥१९॥**

योग ज्ञान सांख्य विद्या शिल्पविद्यासे आदिलेकर कर्म वेदशास्त्रविज्ञान यह सब जनार्दनसे हुए हैं ॥ १९ ॥

एको विष्णुर्महद्भूतं पृथग्भूतान्यनेकशः ॥
त्रींल्लोकान्व्याप्य भूतात्मा भुंक्तेविश्वभुगव्ययः२०॥

एक विष्णु महाभूत जुदा जुदा हुआ अनेक हैं तीनों लोकमें व्यापक होकर वो भूतोंका आत्मा अव्यय नाम नाशरहित भोगकरता है ॥ २० ॥

इमं स्तवं भगवतो विष्णोर्व्यासेन कीर्तितम् ॥
पठेद्य इच्छेत्पुरुषः श्रेयः प्राप्तुं सुखानि च ॥ २१ ॥

यह स्तोत्र भगवद्विष्णुका व्यासजीने भलीभाँति कहा है जो पुरुष अपना कल्याण और सुख चाहै सो पाठ करै ॥ २१ ॥

विश्वेश्वरमजं देवं जगतः प्रभवाप्ययम् ॥
भजंति ये पुष्कराक्षं न ते यांति पराभवम्॥२२॥इति॥

जगत्के ईश्वर जन्मरहित प्रकाशवान् जगत्के प्रभु नाशरहित कमलकीसी आँखवालेको जो भजता है नाम सेवा करता है वह पराभव नाम अनादरको नहीं पावता ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारतके शांतिपर्वमें दानधर्मके उत्तर व्यास-
जीका बनाया हुआ विष्णुसहस्रनामस्तोत्र संपूर्ण ॥

॥ श्रीरस्तु ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेंकटेश्वर" छापाखाना, खेतवाडी-मुंबई.

॥ श्रीः ॥

# अथ भीष्मस्तवराजः ।

बेरी निवासी पं० वसतिरामविरचित-

भाषाटीकासमेतः ।

साऽयं

क्षेमराज-श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना

मुम्बय्यां

स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालये

मुद्रयित्वा प्रकाशितः ।

संवत् १९८०, शके १८४५.

श्रीविष्णवे नमः ।



यं योगिनः प्राणविमोक्षकाले
यत्नेन चित्ते विनिवेशयंति ।
साक्षात्पुरस्ताद्धरिमीक्षमाणः
प्राणाञ्जहौ प्राप्तकालो हि भीष्मः ॥ १ ॥

श्रीः ।

# अथ भीष्मस्तवराज ॥

## भाषाटीकासमेत ।



जनमेजय उवाच ।

**शरतल्पे शयानस्तु भारतानां पितामहः ॥**
**कथमुत्सृष्टवान्देहं कं च योगमधारयत् ॥ १ ॥**

जनमेजय बोले-शरशय्या ( बाणोंकी शय्या ) पर सोतेहुए भीष्मपितामहजी शरीरको कैसे त्यागतेभये और किस योगको धारण करतेभये ॥ १ ॥

वैशंपायन उवाच ।

**शृणुष्वावहितो राजन् शुचिर्भूत्वा समाहितः ॥**
**भीष्मस्य कुरुशार्दूल देहोत्सर्गं महात्मनः ॥ २ ॥**

वैशंपायनजी कहते हैं-हे राजन् ! हे कुरुवंशमें शार्दूल ! तुम पवित्र हो सावधान होके महात्मा भीष्मजीके देह त्यागको सुनो ॥ २ ॥

**निर्वृत्तमात्रे त्वयने उत्तरे वै दिवाकरे ॥**
**समावेशयदात्मानमात्मन्येव समाहितः ॥ ३ ॥**

उत्तरायण सूर्य होते समय परमात्माविषे अपने आत्माको सावधान होके समावेश करते भये अर्थात् परमात्माविषे लीन होके मुक्त भये हैं ॥ ३ ॥

शुक्लपक्षस्य चाष्टम्यां माघमासस्य पार्थिव ॥
प्राजापत्ये च नक्षत्रे मध्यं प्राप्ते दिवाकरे ॥ ४ ॥

हे राजन्! माघ शुक्ल अष्टमीके दिन रोहिणी नक्षत्रविषे मध्याह्न समयमें ॥ ४ ॥

विकीर्णांशुरिवादित्यो भीष्मः शरशतैश्चितः ॥
शुशुभे परया लक्ष्म्या वृतो ब्राह्मणसत्तमैः ॥ ५ ॥

भीष्म पितामहजी सैकडों बाणों करके संयुक्त होके ऐसे शोभित होतेभये कि, जैसे खिलीहुई किरणोंकरके सूर्य शोभित हो, और उत्तम ब्राह्मणोंसे आवृत होते भये ॥ ५ ॥

व्यासेन वेदविदुषा नारदेन सुरर्षिणा ॥
देवरातेन वात्स्येन तथाऽऽतेन सुमन्तुना ॥ ६ ॥

वेदव्यासजी, सुरर्षि नारद, देवरात, वात्स्य, आत, सुमंतु ॥ ६ ॥

तथा जैमिनिना चैव पैलेन च महात्मना ॥
शांडिल्यदेवलाभ्यां च मैत्रेयेण च धीमता ॥ ७ ॥

जैमिनी, महात्मा पैलऋषि, शांडिल्य, देवल, बुद्धिमान् मैत्रेय ॥ ७ ॥

असितेन वसिष्ठेन कौशिकेन महात्मना ॥
हारीतरोमशाभ्यां च तथाऽऽत्रेयेण धीमता ॥ ८ ॥

असित, वसिष्ठ, महात्मा कौशिक, हारीत, रोमश, बुद्धिमान् आत्रेय इन्हों करके संयुक्त होतेभये ॥ ८ ॥

बृहस्पतिश्च शुक्रश्च च्यवनश्च महामुनिः ॥
सनत्कुमारकपिलौ वाल्मीकिस्तुंबुरुः कुरुः ॥ ९ ॥

और बृहस्पति, शुक्र, महामुनि च्यवन, सनत्कुमार, कपिल, वाल्मीकि, तुंबुरु, कुरु ॥ ९ ॥

मौद्गल्यो भार्गवो रामस्तृणबिंदुर्महामुनिः ॥
पिप्पलादश्च वायुश्च संवर्त्तः पुलहः कचः ॥ १० ॥

मौद्गल्य, परशुराम, महामुनि तृणबिंदु, पिप्पलाद, वायु, संवर्त्त, पुलह, कच ॥ १० ॥

कश्यपश्च पुलस्त्यश्च क्रतुर्दक्षः पराशरः ॥
मरीचिरंगिराः कण्वो गौतमो गालवो मुनिः॥ ११॥

कश्यप, पुलस्त्य, क्रतु, दक्ष, पराशर, मरीचि, अंगिरा, कण्व, गौतम, गालव मुनि ॥ ११ ॥

धौम्यो विभांडो मांडव्यो धौम्रः कृष्णोऽनुभौतिकः॥
उलूकः परमो विप्रो मार्कंडेयो महामुनिः ॥ १२॥

धौम्य, विभांड, मांडव्य, धौम्र, कृष्णनामक मुनि, अनुभौतिक, परमविप्र उलूक, महामुनि मार्कंडेय ॥ १२ ॥

भास्करः पूरणः कृष्णः सूतः परमधार्मिकः ॥
शैब्येन याज्ञवल्क्येन शंखेन लिखितेन च ॥१३॥

भास्कर, पूरण, श्रीकृष्ण, परमधार्मिक सूत, शैब्य, याज्ञवल्क्य, शंख, लिखित ॥ १३ ॥

एतैश्चान्यैर्मुनिगणैर्महाभागैर्महात्मभिः ॥
श्रद्धादमपुरस्कारैर्वृतश्चंद्र इव ग्रहैः ॥ १४ ॥

इन्होंकरके और अन्य महाभाग महात्मा श्रद्धालु जितेंद्रिय

मुनि गणों करके भीष्मजी ऐसे आवृत होतेभये कि, जैसे ग्रह ( तारागणों ) करके चद्रमा आवृत होरहा हो ॥ १४ ॥

भीष्मस्तु पुरुषव्याघ्र कर्मणा मनसा गिरा ॥
शरतल्पगतः कृष्णं प्रदध्यौ प्रांजलिः शुचिः ॥१५॥

हे पुरुष व्याघ्र ! शरशय्या पर प्राप्त हुए भीष्मपितामहजी हाथ जोड़ पवित्र होके मन, वचन, कर्म करके श्रीकृष्णका ध्यान करते भये ॥ १५ ॥

स्वरेण हृष्टपुष्टेन तुष्टाव मधुसूदनम् ॥
योगेश्वरं पद्मनाभं विष्णुं जिष्णुं जगत्प्रभुम् ॥१६॥

हृष्ट पुष्ट(उत्तम)स्वरकरके योगेश्वर पद्मनाभ विष्णु जिष्णु सबको जीतनेवाले जगत्के स्वामी ऐसे श्रीकृष्णकी स्तुति करतेभये॥१६॥

कृतांजलिः शुचिर्भूत्वा वाग्विदां प्रवरः प्रभुः॥
भीष्मः परमधर्मात्मा वासुदेवमथास्तुवत् ॥ १७॥

इसके अनंतर वचन जाननेवालोंमें अत्यंत श्रेष्ठ प्रभु परम-धर्मात्मा भीष्मजी वासुदेव (श्रीकृष्ण) की स्तुति करते भये॥१७॥

भीष्म उवाच ।

आरिराधयिषुः कृष्णं वाचं जिगदिषाम्यहम् ॥
तया व्याससमासिन्या प्रीयतां पुरुषोत्तमः ॥१८॥

भीष्मजी बोले—श्रीकृष्णको आराधन करनेकी इच्छावाला मैं वचन बोलनेकी इच्छा करता हूँ तिस वेदव्यासजीसे कही हुई ( प्रचलित की हुई ) वाणी करके श्रीकृष्ण भगवान् प्रसन्न हो ॥ १८ ॥

शुचिं शुचिपद हंसं तत्पद परमेष्ठिनम् ॥

मुक्त्वा सर्वात्मनात्मानं तं प्रपद्य प्रजापतिम् ॥ १९॥

मैं सर्वात्मा करके(सब यतन करके) अपने शरीरको अथवा मनको त्यागके पवित्र पवित्रोंके स्थान हंस अर्थात् शुद्धस्वरूप तत्पद (लक्ष्यस्वरूप) (परमेष्ठी) परमें अर्थात् चिदाकाश ब्रह्मपदविषे स्थित हुए तिस प्रजापति अर्थात् संसारके पति ईश्वरकी शरण हूँ॥ १९॥

अनाद्यं तत्परं ब्रह्म न देवा नर्षयो विदुः ॥
एकोऽयं भगवान्देवो धाता नारायणो हरिः॥ २० ॥

अनादि तिस परमब्रह्मको देवता नहीं जानते हैं और ऋषि नहीं जानते हैं सो यह एक भगवान् देव विधाता हरि नारायण है॥२०॥

नारायणादृषिगणास्तथा सिद्धमहोरगाः ॥
देवा देवर्षयश्चैव त विदुः परमव्ययम् ॥२१॥

नारायणसे ऋषिगण होते हैं. सिद्ध, महोरग, देवता, देवर्षि होते हैं तिसको परम अविनाशी कहते हैं ॥२१॥

देवदानवगंधर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥
यं न जानंति को ह्येष कुतो वा भगवानिति ॥२२॥

देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, पन्नग( सर्प )ये जिसको ऐसे नहीं जानते हैं कि, यह भगवान् कहां भये हैं ॥ २२ ॥

यस्मिन्विश्वानि भूतानि तिष्ठंति च विशंति च ॥
गुणभूतानि भूतेशे सूत्रे मणिगणा इव ॥२३ ॥

---

१ आत्मा पुंसि स्वभावेऽपि प्रयत्नमनसोरपि। धृतावपि मनीषायां शरीरब्रह्मणोरपि। इति अत्र--सर्वात्मना कोऽर्थः सर्वस्वभावेन सर्वप्रयत्नेन वा आत्मानं कोऽर्थः शरीरं मनो वा मुक्त्वा प्रपद्य इत्यन्वयः कर्त्तव्यः ।

और जिसविषे संपूर्ण भूत प्राणी मात्र ठहरते हैं और लीन होते हैं गुणभूत संपूर्ण, भूतेश भगवान् विषे ऐसे हैं कि, जैसे सूतमें मणिगण पुरोये रहते हैं ॥ २३ ॥

यस्मिन्नित्ये तते तंतौ दृढे स्रगिव तिष्ठति ॥
सदसद्ग्रथितं विश्वं विश्वगे विश्वकर्मणि ॥ २४ ॥

जिस नित्यस्वरूपी विश्वगत विश्वकर्मा, विस्तृत हुए परमात्मा विषे दृढ तागाकी मालामें पुरोयाहुआकी तरह, सत् असत् ग्रन्थिसे ( कारणलिंगशरीरसे ) ग्रथित हुआ विश्व ( संपूर्ण संसार ) रहता है ॥ २४ ॥

हरिं सहस्रशिरसं सहस्रचरणेक्षणम् ॥
सहस्रबाहुमुकुटं सहस्रवदनोज्ज्वलम् ॥ २५ ॥

हरि अर्थात् सब पापोंको हरनेवाले सहस्र अर्थात् असंख्यात चरण और नेत्रोंवाले असंख्यात बाहु और मुकुटवाले अनंत मुखोंकरके प्रकाशित ॥ २५ ॥

प्राहुर्नारायणं देवं यं विश्वस्य परायणम् ॥
अणीयसामणीयांसं स्थविष्ठं च स्थवीयसाम् ॥ २६ ॥

ऐसे नारायण देवको विश्वका परम निवासस्थान कहते हैं सूक्ष्मोंके भी सूक्ष्म हैं और स्थूलोंके भी स्थूल हैं ॥ २६ ॥

गरियसां गरिष्ठं च श्रेष्ठं च श्रेयसामपि ॥
यं वाकेष्वनुवाकेषु निषत्सूपनिषत्सु च ॥ २७ ॥

भारवालोंमेंभी भारवाले हैं श्रेष्ठोंमें श्रेष्ठ हैं और जिसभगवान्को वाक अनुवाक संज्ञक ऋचाओंके भेदोंमें निषद उपनिषदोंमें ॥ २७ ॥

गृणंति सत्यकर्माणं सत्यं सत्येषु सामसु ॥

चतुर्भिश्चतुरात्मानं सत्वस्थं सात्वतां पतिम् ॥ २८ ॥

सर्वकर्मा अर्थात् सब कार्यको करनेवाला गिनते हैं सत्योंमें अर्थात् पंचतत्त्वोंमें तथा सामवेदोंमें सत्यरूप कहते हैं और प्रद्युम्न आदि चार मूर्तियोंकरके चतुरात्मा कहते हैं और सत्त्वगुणमें स्थित हुआ तथा सात्वत अर्थात् भक्तोंके पति कहते हैं ॥ २८ ॥

यं दिव्यैर्देवमर्चंति गुह्यैः परमनामभिः ॥
यस्मिन्नित्यं तपस्तप्तं यदंगेष्वनुतिष्ठति ॥ २९ ॥

जिस देवको दिव्य परम गुह्य नामोंकरके पूजते हैं जिस विषे नित्य तप कियाहुआ जिसके अंगोंमें सदा ठहरता है ॥ २९ ॥

सर्वात्मा सर्ववित्सर्वः सर्वगः सर्वभावनः ॥
यं देवं देवकीदेवी वसुदेवादजीजनत् ॥ ३० ॥

जो सर्वात्मा सर्वस्वरूप सर्वगत सबको उत्पन्न करनेवाले हैं ऐसे जिस देवको वसुदेवजीके सकाशसे देवकीदेवी जनती भई ॥ ३० ॥

भूमेश्च ब्रह्मणो गुप्त्यै दीप्तमग्निमिवारणिः ॥
यमनन्यो व्यपेताशीरात्मान वीतकल्मषम् ॥३१॥

पृथ्वी और ब्रह्माकी रक्षाके वास्ते ऐसे उत्पन्न किये जैसे अरणी दीप्त अग्निको उत्पन्न करदेती है जिस निष्कलङ्क आत्माको निराहार व्रती अनन्य भक्तजन ॥ ३१ ॥

दृष्ट्वाऽनंत्याय गोविंदं पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥
अतिवाय्विंद्रकर्माणमतिसूर्याग्नितेजसम ॥ ३२ ॥

मोक्षके अर्थ गोविंदको पूजके अपने आत्माको आत्मामें ही देखता है (तिस) वायु और इंद्रसे भी उल्लंघके कर्म करनेवाले सूर्य तथा अग्निको उल्लंघके अर्थात् उनसे भी विलक्षण ॥ ३२ ॥

अतिबुद्धींद्रियात्मानं तं प्रपद्ये प्रजापतिम् ॥
पुराणे पुरुषं प्रोक्तं ब्रह्म प्रोक्तं युगादिषु ॥ ३३ ॥

बुद्धि इंद्रियोंसे ग्रहण नहीं किये जावें ऐसे आत्मा प्रजापतिकी शरण हूँ पुराणोंमें पुरुष कहा हैः युगादिकोंमें ब्रह्म कहा है ॥३३॥

क्षये संकर्षणं प्रोक्तं तमुपास्यमुपास्महे ॥
यमेकं बहुधाऽऽत्मानं प्रादुर्भूतमधोक्षजम् ॥ ३४ ॥

प्रलयकालमें संकर्षण कहा जाता है तिस उपास्य ( उपासना करने योग्य ) देवकी उपासना करते हैं जिस एक परमात्माको बहुत प्रकार हुएको अधोक्षज अर्थात् नीचे कर दिया है इंद्रियों-का ज्ञान जिसने ऐसे इंद्रिय अग्राह्यको ॥ ३४ ॥

नान्यभक्ताः क्रियावंतो यजंते सर्वकामदम् ॥
यं प्राहुर्जगतः कोशं यस्मिन्सन्निहिताः प्रजाः॥३५॥

क्रियावाले अनन्य भक्तजन सर्व कामदायीको पूजते हैं और जिसको जगत्का कोश ( निवासस्थान ) कहते हैं जिस विषे संपूर्ण प्रजा रहती है ॥ ३५ ॥

यस्मिँल्लोकाः स्फुरंतीमे जले शकुनयो यथा ॥
ऋतमेकाक्षरं ब्रह्म यत्तत्सदसतः परम् ॥ ३६ ॥

जिसमें ये सब लोक ऐसे स्फुरते हैं ( चेष्टा करते हैं ) कि, जलमें ( हंस आदि ) पक्षी जैसे चेष्टा करते हैं जो सत्स्वरूप एकाक्षर सत् असत्से परे ब्रह्म है ॥ ३६ ॥

अनादिमध्यपर्यंतं न देवा नर्षयो विदुः ॥
य सुरासुरगंधर्वाः ससिद्धर्षिमहोरगाः ॥ ३७ ॥

आदि,मध्य, अंत रहित है जिसको देवता और ऋषि नहीं जानते हैं जिसको सुर, असुर, गंधर्व, सिद्ध, ऋषि, महोरग ॥ ३७ ॥

**प्रयता नित्यमर्चंति परमं दुःखभेषजम् ॥**
**अनादिनिधनं देवमात्मयोनिं सनातनम् ॥ ३८ ॥**

दुःखमें परम औषधरूपको आदि अंतरहित आत्मयोनि सनातन देवको सावधान होके नित्य पूजते हैं ॥ ३८ ॥

**अप्रतर्क्यमविज्ञेयं हरिं नारायणं प्रभुम् ॥**
**यं वै विश्वस्य कर्तारं जगतस्तस्थुषां पतिम्॥ ३९ ॥**

तिस अप्रतर्क्य ( विचारमें नहीं आसकें ऐसे ) अविज्ञेय हरि नारायण प्रभुको विश्वकर्त्ताको स्थावरजंगमसंसारके पतिको ॥ ३९॥

**वदंति जगतोऽध्यक्षमक्षरं परमं पदम् ॥**
**हिरण्यवर्णो यो गर्भो दितेर्दैत्यनिषूदनः ॥ ४० ॥**

जगत्का पति कहते हैं अक्षर कहिये कभी क्षीण न हो ऐसा परम पद कहा जाता है जो हिरण्यवर्ण गर्भ है (हिरण्यगर्भ है) दितिके पुत्र दैत्योंको नष्ट करनेवाले हैं ॥ ४० ॥

**एको द्वादशधा जज्ञे तस्मै सूर्यात्मने नमः ॥ ४१ ॥**

और जो एक ही बारह प्रकारसे प्रगट होतेभये तिस सूर्यात्मक रूप भगवान्के अथ नमस्कार है ॥ ४१ ॥

**शुक्ले देवान् पितॄन् कृष्णे तर्पयत्यमृतेन यः॥**
**यश्च राजा द्विजातीनां तस्मै सोमात्मने नमः॥४२॥**

जो शुक्लपक्षमें देवतोंको और कृष्णपक्षमें पितरोंको अमृतकरके

तृप्त करता है जो द्विजाति कहिये ब्राह्मणोंका पति है तिस सोमात्मक चंद्र स्वरूपी भगवान्के अर्थ नमस्कार है ॥ ४२ ॥

महतस्तमसः पारे पुरुषं ह्यतितेजसम् ॥
य ज्ञात्वा मृत्युमत्येति तस्मै ज्ञेयात्मने नमः ॥४३॥

महान् तमोगुण( मायाके पार ) विषे पुरुष है जिस अत्यंत तेजवाले पुरुषको जानके मृत्युको उलंघ जाता है मोक्षरूप होजाता है तिस ज्ञेयात्मारूपी भगवान्के अर्थ नमस्कार है ॥४३॥

यं बृहंतं बृहत्युक्थं यमिनो यं महाध्वरे ॥
यं विप्रसंघा गायंति तस्मै वेदात्मने नमः ॥ ४४ ॥

जिस बृहत् ब्रह्म रूपको जितेंद्रिय ब्रह्मचारीजन बृहति कहिये वेद विषे उक्थ अर्थात् सामवेदका अंगभेद ऋचास्वरूपी कहते हैं और ब्राह्मणों के समूह जिसको महान् यज्ञमें ( वेदरूपसे ) गाते हैं तिस वेदात्मारूपी भगवान्के अथ नमस्कार है ॥ ४४ ॥

ऋग्यजुःसामाथर्वाणं दशार्द्धं हविरात्मकम् ॥
यं सप्ततंतुं तन्वंति तस्मै यज्ञात्मने नमः ॥ ४५ ॥

ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम, अथर्वणरूप जो है और दशार्द्धसंज्ञक ऋचा (मन्त्र) रूपी जो है अथवा जो दशार्द्ध कहिये पंचभूतात्मक है तथा साकल्यरूप है जिस तन्तु अर्थात् यज्ञरूपी को सप्तऋषि विस्तार पूर्वक पूजते हैं तिस यज्ञात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ४५ ॥

चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पंचभिरेव च ॥
हूयते च पुनर्द्वाभ्यां तस्मै होमात्मने नमः ॥४६॥

चार वेदों करके चार होता उद्गाता आदिकोंसे दो स्त्री पुरुषोंसे

पांच प्रणापानादिकों करके फिर दो हाथ और स्रुवा करके जो हवन किया जाता है तिस होमात्मकरूपी भगवान्के अर्थ नमस्कार है ॥ ४६ ॥

यः सुपर्णो यजुर्नाम छंदोगात्रस्त्रिवृच्छिराः ॥
रथंतरं बृहत्साम तस्मै स्तोत्रात्मने नमः ॥ ४७ ॥

जो सुपर्णसंज्ञक यजुर्वेदरूप है छन्दोगात्र है वेदत्रयीयुक्त वा त्रिलोकीयुक्त, वा त्रिगुणयुक्त शिरवाले हैं रथंतर बृहत्सामवेद हैं जिस स्तोत्रात्मारूपी भगवान्के अर्थ नमस्कार है ॥ ४७ ॥

यः सहस्रसमे सत्रे यज्ञे विश्वसृजामृषिः ॥
हिरण्यपक्षः शकुनिस्तस्मै हंसात्मने नमः ॥ ४८ ॥

जो हजारवर्षतक अवधिवाले यज्ञमें ब्रह्मा आदिकोंके ऋषि होते हैं (हिरण्य) सुवर्णकी पंखोंवाले पक्षी (हंस) हैं तिस हंसात्मकरूपी भगवान्के अर्थ नमस्कार है ॥ ४८ ॥

पदांगसंधिपर्वाणं स्वरव्यंजनभूषणम् ॥
यमाहुरक्षरं नित्यं तस्मै वागात्मने नमः ॥ ४९ ॥

जो पद, अंग, संधि पर्व ४ वेदके स्वरूप हैं स्वर व्यंजनके भूषण हैं जिसको नित्य अक्षर कहते हैं—तिस वागात्मा (वाणीरूप) भगवान्को नमस्कार है ॥ ४९ ॥

यज्ञांगो यो वराहो वै भूत्वा गामुज्जहार ह ॥
लोकत्रयहितार्थाय तस्मै वीर्यात्मने नमः ॥ ५० ॥

जो यज्ञांग वराहरूप होके त्रिलोकीके हितके वास्ते पृथ्वीका उद्धार करते भये तिस वीर्यात्माको नमस्कार है ॥ ५० ॥

यः शेते योगमास्थाय पर्यंके नागभूषिते ॥
फणासहस्त्ररचिते तस्मै निद्रात्मने नमः ॥ ५१ ॥

जो अपने योगके आश्रय होके हजार फणोंसे रची हुई शेष-शय्या पर शयन करते हैं तिस निद्रात्मारूपी भगवान्‌को नमस्कार है ॥ ५१ ॥

यश्चिनोति सतां सेतुमृतेनामृतयोनिना ॥
धर्मार्थ व्यवहारार्थं तस्मै सत्यात्मने नमः ॥ ५२ ॥

जो धर्मके वास्ते और व्यवहारके वास्ते अमृतयोनि सत्य करके श्रेष्ठ पुरुषोंके पुलको चिनते हैं तिस सत्यात्मास्वरूपी भगवान्‌के अर्थ नमस्कार है ॥ ५२ ॥

यं पृथग्धर्मचरणाः पृथग्धर्मफलैषिणः ॥
पृथग्धर्मैः समर्चंति तस्मै धर्मात्मने नमः ॥ ५३ ॥

अलग २ धर्मका आचरण करनेवाले अलग २ धर्मोंके फलोंकी इच्छावाले जन जिसको अलग २ धर्मोंकरके पूजते हैं तिस धर्मात्मा भगवान्‌के वास्ते नमस्कार है ॥ ५३ ॥

यतः सर्वे प्रसूयंते ह्यनंगात्सांगदेहिनः॥
उन्मादः सर्वभूतानां तस्मै कामात्मने नमः ॥५४॥

जिस शरीर रहित ( कामदेवरूपी ) ईश्वरके सकाशसे शरीरधारी जीव उत्पन्न होते हैं जो सब भूतोंका उन्मादक है तिस कामात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ५४ ॥

यं व्यक्तिस्थितमव्यक्तं विचिन्वन्ति महर्षयः ॥
क्षेत्रे क्षेत्रज्ञमासीनं तस्मै क्षेत्रात्मने नमः ॥ ५५ ॥

महर्षिजन जिस अव्यक्त ( अप्रकटरूपी ) को अलग २ स्थित

हुआ को ढूँढते हैं क्षेत्रमें क्षेत्रज्ञरूपी बैठेहुए तिस क्षेत्रात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ५५ ॥

यं त्रिधाऽऽत्मानमात्मस्थं वृतं षोडशभिर्गुणैः ॥
प्राहुः सप्तदशं सांख्यास्तस्मै सांख्यात्मने नमः ॥५६॥

सोलह प्रकारके ( महदादिक ) गुणोंकरके संयुक्त हुए तीन प्रकारके विश्व, तैजस, प्राज्ञ आत्माको आत्मामें स्थित हुएको सांख्यवाले सतरहवाँ पुरुष पृथक् कहते हैं तिस सांख्यात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ५६ ॥

यं विनिद्रा जितश्वासाः शांता दांता जितेंद्रियाः ॥
ज्योतिः पश्यंति युंजानास्तस्मै योगात्मने नमः ॥५७॥

निद्राको जीतनेवाले, श्वासको जीतनेवाले शांत अंतःकरण और इंद्रियोंको जीतनेवाले योगधारीजन जिसको ज्योतिःस्वरूप देखते हैं, तिस योगात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ५७ ॥

अपुण्यपुण्योपरमे यं पुनर्भवनिर्भयाः ॥
शांताः संन्यासिनो यांति तस्मै मोक्षात्मने नमः ॥५८॥

शांत संन्यासीजन पुनर्जन्मके भयसे रहित होके पाप पुण्य रहित जिस ( ब्रह्म ) को प्राप्त होते हैं तिस मोक्षात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ५८ ॥

योऽसौ युगसहस्रांते प्रदीप्तार्चिर्विभावसुः ॥
संक्षोभयति भूतानि तस्मै घोरात्मने नमः ॥ ५९ ॥

जो हजार युगोंके अंतमें ( प्रलयकालमें ) प्रदीप्तकिरणोंवाला सूर्य ( होके ) सब भूतोंको क्षोभ करता है ( नष्ट करता ) है तिस-घोरात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ५९ ॥

सभक्ष्य सर्वभूतानि कृत्वा चैकार्णवं जगत् ॥
बालः स्वपिति यश्चैकस्तस्मै मायात्मने नमः ॥६०॥

संपूर्ण भूतोंको भक्षणकर जगतमें एकार्णव जल फैलाके जो अकेला बालकस्वरूप होक सोता है तिस मायात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ६० ॥

अजस्य नाभौ संभूतं यस्मिन्विश्वं प्रतिष्ठितम् ॥
पुष्करं पुष्कराक्षस्य तस्मै पद्मात्मने नमः ॥ ६१ ॥

पुष्कराक्ष अजन्मा भगवान्की नाभिमें कमल उत्पन्न भया है और जिसमें विश्व प्रतिष्ठित ( स्थित ) है तिस पद्मात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ६१ ॥

सहस्रशिरसे चैव पुरुषायामितात्मने ॥
चतुःसमुद्रपर्यंके योगनिद्रात्मने नमः ॥ ६२ ॥

हजार शिरोंवाले अतुल आत्मावाले पुरुषके अर्थ चार सागररूपी जलशय्यापर योगनिद्रात्मा होनेवालेके अर्थ नमस्कार है ॥ ६२॥

यस्य केशेषु जीमूता नद्यः सर्वांगसंधिषु ॥
कुक्षौ समुद्राश्चत्वारस्तस्मै योगात्मने नमः ॥६३ ॥

जिसके बालोंमें मेघ है और संपूर्ण अंगकी संधियोंमें नदी हैं कूखिमें चार समुद्र हैं तिस जलस्वरूपी भगवान्के अर्थ नमस्कार है ॥ ६३ ॥

यस्मात्सर्वाः प्रसूयंते सर्गप्रलयविक्रियाः ॥
यस्मिश्चैव प्रलीयंते तस्मै हेत्वात्मने नमः ॥६४॥

रचना और प्रलय पर्यंत सब विकार ( क्रिया ) जिससे उत्पन्न होते हैं

और जिसमें ही लीन हो जाते हैं तिस हेत्वात्माके अर्थ नमस्कार है॥ ६४ ॥

**यो निषण्णो भवेद्रात्रौ दिवा भवति धिष्ठितः ॥**
**इष्टानिष्टस्य च द्रष्टा तस्मै द्रष्ट्रात्मने नमः ॥ ६५ ॥**

जो रात्रिविषे शिथिल हो जाता है दिनमें जाग्रत अवस्थामें अधिष्ठाता साक्षी रहताहै और इष्ट अनिष्टका ( भली बुरी वस्तु का ) देखनेवाला है तिस द्रष्टात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ६५ ॥

**अकुंठं सर्वकार्येषु धर्मकार्यार्थमुद्यतम् ॥**
**वैकुंठस्य हि तद्रूपं तस्मै कार्यात्मने नमः ॥ ६६ ॥**

जो सब कर्योंमें निपुण तत्पर है धर्मकार्योंके वास्ते उद्यत है वह वैकुण्ठका ही रूप है तिस कार्यात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ६६ ॥

**विभज्य पंचधाऽऽत्मानं वायुर्भूतः शरीरगः ॥**
**यश्चेष्टयति भूतानि तस्मै वाय्वात्मने नमः ॥६७॥**

जो अपने आत्माका पांच प्रकार ( पृथ्वी वायु, जल, अग्नि आकाश,ऐसे )विभाग करके वायुस्वरूप हो सब शरीरोंमें प्राप्त होके भूतोंको चेष्टा कराता है तिस वाय्वात्माके अर्थ नमस्कार है ॥

**ब्रह्म वक्त्रं भुजौ क्षत्रं कृत्स्नमूरूदरं विशः॥**
**पादौ यस्याश्रिताः शूद्रास्तस्मै वर्णात्मने नमः६८॥**

ब्राह्मण जिसका मुख है,क्षत्रिय भुजा हैं, सब वैश्य जांघ और उदर है, शूद्र पैर है तिस वर्णात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ६८ ॥

**युगेष्वावर्तते योगैर्मासर्त्वयनहायनैः ॥**

सर्गप्रलययोः कर्ता तस्मै कालात्मने नमः ॥ ६९ ॥

मास, ऋतु, वर्ष इन्हों करके अपने योगोंकरके जो युगोंमें विचरता है उत्पत्ति और प्रलयको करनेवाला है तिस कालात्मा (कालस्वरूपी) के अर्थ नमस्कार है ॥ ६९ ॥

यस्याग्निरास्यं द्यौर्मूर्धा खं नाभिश्चरणौ क्षितिः ॥
सूर्यश्चक्षुर्दिशः श्रोत्रे तस्मै लोकात्मने नमः ॥७० ॥

अग्नि जिसका मुख है, स्वर्ग मस्तक है, आकाश नाभि है, पृथ्वी चरण है, सूर्य नेत्र हैं, दिशा कान हैं, तिस लोकात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ७० ॥

परः कालात्परो यज्ञात्परात्परतरो हि यः ॥
अनादिरादिर्विश्वस्य तस्मै विश्वात्मने नमः ॥७१॥

वह परमात्मा कालसे पर है यज्ञसे पर है परमसे भी परे है स्वयं अनादि है विश्वके आद्य है तिस विश्वात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ७१ ॥

विषये वर्तमानोऽयं तं वैशेषिकनिर्गुणैः ॥
प्राहुर्विषयगोप्तारं तस्मै गोप्त्रात्मने नमः ॥ ७२ ॥

जो विषयमें वर्तमान है तिसको वैशेषिक निर्गुणोंकरके विषयका गोप्ता रक्षक कहते हैं तिस गोप्ता रक्षक आत्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ७२ ॥

अन्नपानेंधनमयो रसप्राणविवर्द्धनः ॥
यो धारयति भूतानि तस्मै प्राणात्मने नमः॥७३ ॥

जो अन्न पानका ईंधनरूप हो रस प्राणोंको बढाता है जो भूतोंको धारण करता है तिस प्राणात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ७३ ॥

पिंगेक्षणसटं यस्य रूपं दंष्ट्रानखायुधम् ॥
दानवेंद्रांतकरणं तस्मै दृप्तात्मने नमः ॥ ७४ ॥

जिसका रूप पिंगल नेत्रोंवाला और पिंगलवर्णजटाधारी है और जाड तथा नखोंका आयुध शस्त्रवाला है दानवोंका नाश करनेवाला है तिस दृप्तात्मा ( मदोन्मत्त अभिमानीरूप ) के अर्थ मनकारहै ॥ ७४ ॥

रसातलगतः श्रीमाननंतो भगवान्विभुः ॥
जगद्धारयते कृत्स्नं तस्मै वीर्यात्मने नमः ॥ ७५ ॥

जो श्रीमान् अनंत विभु भगवान् रसातलमें प्राप्त होके संपूर्ण जगत्को धारण कर रहा है तिस वीर्यात्मा ( बलरूपी ) के अर्थ नमस्कार है ॥ ७५ ॥

यो मोहयति भूतानि स्नेहपाशानुबंधनैः ॥
सर्गस्य रक्षणार्थाय तस्मै मोहात्मने नमः ॥ ७६ ॥

जो स्नेहपाशोंके अनुबंधों करके संपूर्ण भूतोंको प्राणिमात्रोंको संसारकी रक्षाके वास्ते मोहता है तिस मोहनरूपीके अर्थ नमस्कार है ॥ ७६ ॥

भूतलातलमध्यस्थो हत्वा तु मधुकैटभौ ॥
उद्धृता येन वै वेदास्तस्मै मत्स्यात्मने नमः ॥ ७७ ॥

जिसने पाताललोकमें स्थित हुए मधु कैटभ दैत्य मारकेवेदोंका उद्धार किया तिस वेदात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ७७ ॥

ससागरनगां बिभ्रत्सप्तद्वीपां वसुन्धराम् ॥
यो धारयति पृष्ठेन तस्मै कूर्मात्मने नमः ॥ ७८ ॥

समुद्र और पर्वतों सहित सात द्वीपोंवाली पृथ्वीको जो अपनी पीठ करके धारण करता है तिस कूर्म ( कछुआ ) स्वरूपी भगवान्‌के अर्थ नमस्कार है ॥ ७८ ॥

**एकार्णवे हि मग्नां तां वाराहं रूपमास्थितः ॥**
**उद्दधार महीं योऽसौ तस्मै क्रोडात्मने नमः॥७९ ॥**

जो वराह ( सूकर) रूप करके एकार्णव जलमें डूबी हुई पृथ्वीका उद्धार करता भया तिस वराहरूपी भगवान्‌के अर्थ नमस्कार है ॥७९ ॥

**नारसिंहं वपुः कृत्वा यस्त्रैलोक्यभयंकरः ॥**
**हिरण्यकशिपुं जघ्ने तस्मै सिंहात्मने नमः ॥८० ॥**

जो त्रिलोकीको भयंकर नृसिंहरूप धारणकरके हिरण्यकशिपु दैत्यको मारता भया तिस नृसिंहरूपी भगवान्‌के अर्थ नमस्कार है ॥ ८० ॥

**वामनं रूपमास्थाय बलिं संयम्य मायया ॥**
**सहस्रार्जुनहंतेव तस्मा उग्रात्मने नमः ॥८१ ॥**

जो वामनरूप धारण कर माया करके बलिको वशमें करता भया औरये तीनों लोक मांप लिये तिस उग्रात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ८१ ॥

**जमदग्निसुतो भूत्वा रामः परशुधृक्प्रभुः ॥**
**इमे क्रांतास्त्रयो लोकास्तस्मै क्रांतात्मने नमः॥८२॥**

जो प्रभु जमदग्नि ऋषिका पुत्र परशुराम होके सहस्रबाहु राजाको मारता भया तिस क्रान्तात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ८२ ॥

**रामो दाशरथिर्भूत्वा पौलस्त्यकुलनंदनम् ॥**
**जघान रावणं संख्ये तस्मै क्षत्त्रात्मने नमः ॥८३॥**

जो दशरथका पुत्र रामचंद्रजी होके पुलस्त्य ऋषिके कुलमें होनेवाले रावणको युद्धमें मारते भये तिस क्षत्रीरूप आत्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ८३ ॥

**वसुदेवसुतः श्रीमान्वासुदेवो जगत्पतिः ॥**
**जहार वसुधाभारं तस्मै कृष्णात्मने नमः ॥ ८४ ॥**

जो वसुदेवके पुत्र श्रीमान् वासुदेव पृथ्वीके भारको उतारते भये तिस श्रीकृष्णात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ८४ ॥

**बुद्धरूपं समास्थाय सर्वरूपपरायणः ॥**
**मोहयन्सर्वभूतानि तस्मै मोहात्मने नमः ॥ ८५ ॥**

जो बुद्धावतार करके सब रूपोंमें परायण हो सब भूतोंको मोहता है तिस मोहात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ८५ ॥

**हनिष्यति कलेरंते म्लेच्छांस्तुरगवाहनः ॥**
**धर्मसंस्थापनार्थाय तस्मै कल्क्यात्मने नमः॥ ८६॥**

जो कलियुगके अंतमें घोडाकी सवारी करके ( अवतार हो ) धर्मकी स्थिति करनेके वास्ते म्लेच्छोंको मारेगा तिस कल्कि आत्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ८६ ॥

**आत्मज्ञानमिदं ज्ञानं ज्ञात्वा पंचस्ववस्थितः ॥**
**यं ज्ञानेनाधिगच्छंति तस्मै ज्ञानात्मने नमः ॥८७॥**

पांच भूतोंमें अवस्थित हुआ (जीव) इस आत्मज्ञानको जानके जिसको ज्ञानका अधिष्ठाता मानता है तिस ज्ञानात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ८७ ॥

अप्रमेयशरीरस्य सर्वतो बुद्धिचक्षुषे ॥
अपारापरिमेयाय तस्मै दिव्यात्मने नमः ॥ ८८॥

अप्रमेयशरीरवाले सब तर्फ बुद्धि और नेत्रोंवाले अपार अ रिमेय तिस दिव्यात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ८८ ॥

जटिने दंडिने नित्यं लंबोदरशरीरिणे ॥
कमंडलुनिषंगाय तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ॥ ८९ ॥

जटाधारी नित्य दण्डधारी लंबोदर शरीरवाले कमंडलुरूप (तर कस) वा शस्त्रवाले तिस ब्रह्मात्मा (ब्रह्मारूपी) के अर्थ नम स्कार है ॥८९ ॥

शूलिने त्रिदशेशाय त्र्यंबकाय महात्मने ॥
भस्मदिग्धोर्ध्वलिंगाय तस्मै रुद्रात्मने नमः ॥९०॥

त्रिशूलधारी देवताओंके पति त्र्यंबक तीन नेत्रोंवाले अथवा तीनों लोकोंके पिता महात्मा भस्मसे लिपेहुए शरीरवाले ऊर्ध्वलिंगवाले ऐसे रुद्रात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ९० ॥

चंद्रार्धकृतशीर्षाय व्यालयज्ञोपवीतिने ॥
पिनाकशूलहस्ताय तस्मा उग्रात्मने नमः ॥ ९१ ॥

मस्तकमें अर्द्ध चंद्रमाको धारण करनेवाले सर्पका यज्ञोपवीत धारण करनेवाले धनुष और शूलको हाथमें धारण करनेवाले तिस उग्रात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ९१ ॥

पंचभूतात्मभूताय भूतादिनिधनाय च ॥
अक्रोधद्रोहमोहाय तस्मै शांतात्मने नमः॥ ९२ ॥

पंचभूतोंके आत्मभूत भूतोंकी आदि और अंतस्वरूप क्रोध द्रोह मोहसे रहित तिस शांतात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ९२ ॥

यस्मिन्सर्वं यतः सर्वं यः सर्वं सर्वतश्च यः ॥
यश्च सर्वमयो देवस्तस्मै सर्वात्मने नमः ॥ ९३ ॥

जिसविषे सब है जिससे सब होतेहैं जो सर्व स्वरूप है सब जगह है जो सर्वमय देव है तिस सर्वत्माके अर्थ नमस्कार है यहां कर्ता, करण, उपादान, कर्म, सब कुछ ईश्वर ( ब्रह्म ) ही माना है ॥ ९३ ॥

विश्वकर्मन्नमस्तेऽस्तु विश्वात्मा विश्वसंभवः ॥
अपवर्गस्थभूतानां पंचानां परतः स्थितः ॥ ९४ ॥

हे विश्वकर्मन् ! तुम्हारे अर्थ नमस्कार हैं तुम विश्वके आत्मा हो तुमसे विश्व होता है मोक्षमें स्थितहुए भूतोंको पांच तत्त्वोंसे पर अलग स्थितहुए प्राप्त हो ॥ ९४ ॥

नमस्ते त्रिषु लोकेषु नमस्ते परतस्त्रिषु ॥
नमस्ते त्रिषु सर्वेषु त्वं हि सर्वमयो निधिः ॥ ९५ ॥

त्रिलोकीमें ( स्थित हुए ) तुम्हारे अर्थ नमस्कार है तीन गुणों विषे अथवा त्रिलोकी विषे ( परतः ) अलग अधिष्ठाता रहनेवाले तुम्हारे अर्थ नमस्कार है त्रिगुणोंमें वा त्रिलोकीमें सब जगह तुम ही सर्वमय निधि हो ॥ ९५ ॥

नमस्ते भगवन्विष्णो लोकानां प्रभवाप्ययः ॥
त्वं हि कर्ता हृषीकेश संहर्ता चापराजितः ॥ ९६ ॥

हे भगवन् ! हे विष्णो ! तुम्हारे अर्थ नमस्कार है तुम लोकोंकी उत्पत्ति और नाश करनेवाले हो, हे हृषीकेश ! तुम ही कर्ता संहर्त्ता और अपराजित अर्थात् किसीसे नहीं हारनेवाले हो ॥ ९६ ॥

तेन पश्यामि भगवन्दिव्येषु त्रिषु वर्त्मसु ॥

**तच्च पश्यामि तत्त्वेन यत्ते रूपं सनातनम् ॥ ९७॥**

हे भगवन्! दिव्य तीन लोकोंमें तुम्हारे रूपको मैं नहीं देखता हूँ और जो तुम्हारा सनातनरूप है उसको तो मैं तत्त्वसे देखता हूँ॥ ९७॥

**दिवं ते शिरसा व्याप्तं पद्भ्यां देवी वसुंधरा ॥**
**विक्रमेण त्रयो लोकाः पुरुषोऽसि सनातनः ॥९८॥**

स्वर्ग तुम्हारे शिर करके व्याप्त हो रहा है और पैरोंकरके पृथ्वी देवी व्याप्त हो रही है तुम्हारे पराक्रम करके तीनों लोक व्याप्त रहते हैं तुम सनातन पुरुष हो ॥ ९८ ॥

**दिशो भुजा रविश्चक्षुर्वीर्यं शुक्रः प्रजापतिः ॥**
**सप्त मार्गा निरुद्धास्ते वायोरमिततेजसः ॥ ९९ ॥**

दिशा भुजा हैं सूर्य नेत्र है शुक्र प्रजापति वीर्य है और अतुल तेजवाले तुम्हारी वायु करके सात मार्ग रुक रहे हैं ॥ ९९ ॥

**अतसीपुष्पसंकाशं पीतकौशेयवाससम् ॥**
**ये नमस्यंति गोविंदं न तेषां विद्यते भयम् ॥ १०० ॥**

अतसी ( अलसी ) के पुष्पसमान नीले कांतिवाले पीले रेशमी वस्त्रोंवाले गोविंद भगवान्को जो नमस्कार करते हैं उनको भय नहीं है ॥ १०० ॥

**नमो नरकसंत्रासरक्षामण्डलकारिणे ॥**
**संसारनिम्नगावर्त्ततरिकाष्ठाय विष्णवे ॥ १ ॥**

नरकके त्राससे रक्षामंडल करनेवाले संसाररूपी नदीके आवर्त्त ( भौंहारियोंमें ) नौकारूप मार्गवाले विष्णु भगवान्के अर्थ नमस्कार है ॥ १ ॥

**नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ॥**

जगद्धिताय कृष्णाय गोविंदाय नमोनमः॥ २ ॥

ब्रह्मण्य देवके अर्थ गौ ब्राह्मणोंके हित करनेवाले और जगत्का हित करनेवाले श्रीकृष्ण गोविंदके अर्थ वारंवार नमस्कार है ॥२॥

प्राणकांतारपाथेयं संसारच्छेदभेषजम्॥
दुःखशोकपरित्राणं हरिरित्यक्षरद्वयम्॥ ३॥

प्राणरूपी गह्वरवनमें खर्ची ( उपयोगी वस्तु ) संसारका छेदन करनेमें औषधरूप, दुःख शोकसे रक्षा करनेवाले ऐसे हरि ये दो अक्षर हैं ॥ ३ ॥

यथा विष्णुमयं सत्यं यथा विष्णुमयं जगत्॥
यथा विष्णुमयं सर्वं पाप्मनो नाशकस्तथा॥ ४ ॥

जैसे विष्णुमय सत्य है और विष्णुमय जगत् है जैसे संपूर्ण विष्णुमय है तैसे मेरे पापको नष्ट करनेवाले विष्णु हैं ॥ ४ ॥

त्वां प्रपन्नाय भक्ताय गतिमिष्टां जिगीषवे॥
यच्छ्रेयः पुंडरीकाक्ष तद्ध्यायस्व सुरेश्वर ॥५॥

हे सुरेश्वर। हे पुंडरीकाक्ष। तुम्हारी शरण प्राप्तहुए मनोवांछित गतिको चाहनेवाले भक्तके अर्थ जो कल्याण है उसको आप चिंतवन करो ॥ ५ ॥

इति विद्यातपोयोनिरयोनिर्विष्णुरीडितः॥
वाग्यज्ञेनार्चितो देवः प्रीयतां मे जनार्दनः॥ ६ ॥

इसप्रकारसे विद्या तपकी योनि और अयोनि ( उत्पत्तिरहित ) विष्णु भगवान स्तुत किये वाणीरूप यज्ञकरके पूजित किये जनार्दन देव मुझपर प्रसन्न हों ॥ ६ ॥

नारायणपरं ब्रह्म नारायणपरं तपः ॥
नारायणपरं चेदं सर्वं नारायणात्मकम् ॥ ७ ॥

नारायण परब्रह्म हैं नारायण परम तप हैं यह संपूर्ण विश्व नारायणपर है नारायणात्मक ( नारायण स्वरूप ) हैं ॥ ७ ॥

वैशंपायन उवाच।

एतावदुक्त्वा वचनं भीष्मस्तद्गतमानसः ॥
नम इत्येव कृष्णाय प्रणाममकरोत्तदा ॥ ८॥

वैशंपायन कहते हैं—आदरसहित मनवाला भीष्मपितामहजी इतना यह वचन कहके तब 'श्रीकृष्णाय नमः 'ऐसे श्रीकृष्णको प्रणाम करता भया ॥ ८ ॥

अभिगम्य तु योगेन भक्तिं भीष्मस्य माधवः ॥
त्रैलोक्यदर्शने ज्ञानं दिव्यं दत्त्वा ययौ हरिः ॥ ९ ॥

श्रीकृष्ण हरि भगवान् योगकरके भीष्मपितामहजी भक्तिको प्राप्त होके त्रिलोकी दर्शनमें दिव्य ज्ञान देके जाते भये ॥ ९ ॥

तस्मिन्नुपरते शब्दे ततस्ते ब्रह्मवादिनः ॥
भीष्मं वाग्भिर्बाष्पकंठास्तमानर्चुर्महामतिम् ॥१०॥

तिस भीष्मजी विषें शब्द ( बोलना ) बंद होगया तब वे ब्रह्मवादीऋषिलोग गद्गद कंठवाले होके महामति तिस भीष्मजीको वचनोंकरके पूजते भये ॥ ११० ॥

ते स्तुवंतश्च विप्राग्र्याः केशवं पुरुषोत्तमम् ॥
भीष्मं च शनकैः सर्वे प्रशशंसुः पुनः पुनः ॥११॥

पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए वे सब उत्तम ब्राह्मण वारंवार शनैः २ भीष्मजीको सराहते भये ॥ ११ ॥

यं योगिनः प्राणविमोक्षकाले यत्नेन चित्ते विनिवेशयंति ॥ साक्षात्पुरस्ताद्धरिमीक्षमाणः प्राणाञ्जहौ प्राप्तकालो हि भीष्मः ॥ १२ ॥

प्राण निकलनेके समय योगीजन जिस भगवान्को यत्नसे अपने चित्तमें ठहराते हैं तिस हरि भगवान्को साक्षात् अपने आगे देखता-हुआ प्राप्त भया है काल जिसका ऐसा भीष्मपितामहजी अपने प्राणोंको त्यागता भया ॥ १२ ॥

शुक्लपक्षे दिवा भूमौ गंगायां चोत्तरायणे ॥
धन्यास्तात मरिष्यंति हृदयस्थे जनार्दने ॥ १३ ॥

हे तात! शुक्लपक्षमें दिनमें गंगाजीके तटपर भूमिमें उत्तरायण कालमें जनार्दन भगवान्को हृदयमें स्थित करके जो मरेंगे वे धन्य हैं ॥ १३ ॥

विदित्वा भक्तियोगं तु भीष्मस्य पुरुषोत्तमः ॥
सहसोत्थाय संतुष्टो यानमेवान्वपद्यत ॥ १४ ॥

पुरुषोत्तम भगवान् भीष्मजीके भक्तियोगको जानके प्रसन्न हो खड़े होके शीघ्रही गमन करते भये ॥ १४ ॥

केशवः सात्यकिश्चैव रथेनैकेन जग्मतुः ॥
अपरेण महात्मानौ युधिष्ठिरधनंजयौ ॥ १५ ॥

श्रीकृष्णभगवान् और सात्यकि एक रथमें बैठके गमन करते भये दूसरे रथमें बैठके युधिष्ठिर अर्जुन गमन करते भये ॥ १५॥

भीमसेनो यमौ चोभौ रथमेकं समास्थिताः॥
कृपो युयुत्सुः सूतश्च संजयश्चापरं रथम् ॥ १६ ॥

भीमसेन और नकुल, सहदेव एक ही रथमें बैठते भये कृपाचार्य, युयुत्सु, सूत, संजय ये एक रथमें बैठते भये ॥ १६ ॥

ते रथैर्नगराकारैः प्रयाताः पुरुषर्षभाः ॥
नेमिघोषेण महता कम्पयंतो वसुंधराम् ॥ १७ ॥

नगरके समान (ऊंचे) आकारवाले रथोंमें बेठेहुए ये उत्तम पुरुष सबही लोग रथचक्रोंके शब्दकरके संपूर्ण पृथ्वीको कँपातेहुए गमन करते भये ॥ १७ ॥

ततो गिरः पुरुषवरस्तवान्विता द्विजेरिताः पथि
सुमनाः स शुश्रुवे ॥ कृतांजलिं प्रणतमथापरं
जनं स केशिहा मुदितमनाभ्यनंदत ॥१८॥

इसके अनंतर केशी दैत्यको मारनेवाले श्रीकृष्ण विष्णु भगवान्की स्तुतिके वचनोंको ब्राह्मणोंकरके कहेहुओंको सुनतेभये तब प्रसन्नमनवाले श्रीकृष्ण अंजली बांधके खड़ेहुए प्रणतहुए अन्यजनको प्रसन्नमन करके सराहते भये ॥ १८ ॥

अनादिनिधनं विष्णुं सर्वलोकमहेश्वरम् ॥
धर्माध्यक्षं स्तुवन्नित्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १९ ॥

आदि अन्त रहित सब लोकोंके महेश्वर धर्मके अधिपति ऐसे विष्णु अर्थात् सबलोकमें व्याप्त रहनेवाले देवको नित्य प्रति स्तुति करता हुआ जन सब पापोंसे छूटता है ॥ १९ ॥

इमं स्तवं यः पठति शार्ङ्गधन्वनः शृणोति वा भक्तिसमन्वितो जनः ॥ स चक्रधृक्प्रतिहतसर्वकल्मषो जनार्दनं प्रविशति देहसंक्षये ॥ १२० ॥

जो मनुष्य विष्णुके इस स्तोत्रको भक्तिसे पढ़ता है वह शरीर नाशहुए पीछे विष्णुकरके सब पापोंसे छूटके विष्णुमें लीन होजाता है ॥ १२० ॥

अशनिशितसुधारं यस्य चक्रं सुचारु मणिकनकविचित्रे कुंडले यस्य कर्णे ॥ भ्रमरशतसहस्रैः सेविता यस्य माला असुरकुलनिहंता प्रीयतां वासुदेवः ॥ २१ ॥

जिस विष्णु भगवान्‌का चक्र वज्रसमान पैना और सुन्दर धारवाला उत्तम है और मणि तथा सुवर्णसे विचित्र जिसके कानोंमें कुंडल हैं जिसकी माला सैयडों हजारों भ्रमरों करके सेवित है असुरकुलको मारनेवाले वे वासुदेव भगवान् प्रसन्न हों ॥ २१ ॥

स्तवराजः समाप्तोऽयं विष्णोरद्भुतकर्मणः ॥
गांगेयेन पुरा गीतो महापातकनाशनः ॥ २२ ॥

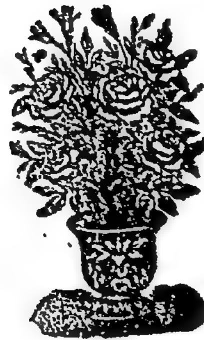
अद्भुत कर्मवाले विष्णुका यह स्तवराज समाप्त भया महापापोंको नष्ट करनेवाला यह स्तोत्र पहले भीष्मपितामहने कहा है ॥ २२ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

यः संपठेदिदं स्तोत्रं मम जन्मानुकीर्त्तनम् ॥
देवलोकमतिक्रम्य तस्य लोको यथा मम ॥ १२३ ॥

श्रीभगवान् बोले-कि जिसमें मेरे जन्मचरित्रोंका वर्णन है- ऐसे इस मेरे स्तोत्रका जो पुरुष पाठ करेगा वह देवलोक अर्थात् स्वर्गादिलोकोंका अतिक्रमण करके मेरे लोकको प्राप्त होगा ॥ १२३ ॥

इति श्रीमन्महाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासि-
क्यां शांतिपर्वणि भीष्मयुधिष्ठिरसंवादे पं०
वसतिरामकृतभाषाटीकायां भीष्म-
स्तवराजः समाप्तः ।



॥ श्रीः ॥

# अथानुस्मृतिः ।

बेरी निवासी पं० वसतिरामविरचित-

भाषाटीकासमेता ।

सेयं

क्षेमराज-श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना

मुम्बय्यां

स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" ( स्टीम् ) यन्त्रालये

मुद्रयित्वा प्रकाशितः ।

संवत् १९८०, शके १८४५.

## अथानुस्मृतिः ।



न वासुदेवात्परमस्ति मङ्गलं
न वासुदेवात्परमस्ति पावनम् ।
न वासुदेवात्परमस्ति दैवतं
तं वासुदेवं प्रणमन्न सीदति ॥ १ ॥



श्रीः ।

# अथानुस्मृतिः ।

## भाषाटीकासमेता ।



शतानीक उवाच ।

महामते महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ॥
अक्षीणकर्मबंधस्तु पुरुषो द्विजसत्तम ॥ १ ॥

शतानीक बोले- हे द्विजसत्तम ! हे महामते ! हे महाप्राज्ञ ! हे सर्वशास्त्रविशारद ! जिसका कर्मरूपी बंधन नहीं छूटा हो वह पुरुष ॥ १ ॥

सततं किं जपेज्जाप्यं विबुधः किमनुस्मरन् ॥
मरणे यज्जपेज्जाप्यं यं च भावमनुस्मरन् ॥ २ ॥

निरंतर किस मंत्रको जपै पंडितजन क्या स्मरण करै मरणसमयमें जो जपने लायक जपै और जिस भावको स्मरण करता हुआ ॥ २ ॥

यच्च ध्यात्वा द्विजश्रेष्ठ पुरुषो मृत्युमागतः ॥
परं पदमवाप्नोति तन्मे वद महामुने ॥ ३ ॥

जिसका ध्यान करके पुरुष मृत्युको प्राप्त होके परमपद(मोक्षको) प्राप्तहो हे द्विजश्रेष्ठ ! हे महामुने ! वह मेरे आगे कहो ॥ ३ ॥

शौनक उवाच ।

इदमेव महाप्राज्ञ पृष्टवांश्च पितामहम् ॥
भीष्मं धर्मभृतां श्रेष्ठं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ४ ॥

शौनकजी कहते हैं हे महाप्राज्ञ ! इसको ही धर्मका पुत्र युधिष्ठिर धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ भीष्मपितामहजीको पूछता भया ॥ ४ ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

**पितामह महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ॥**
**प्रयाणकाले किं चिंत्यं मुमुक्षोस्तत्त्वचिंतकैः ॥ ५ ॥**

युधिष्ठिर बोले-हे पितामह ! हे महाप्राज्ञ ! हे सर्वशास्त्रविशारद ! तत्त्वको चिंतवन करनेवाले मुमुक्षु ( मोक्षकी इच्छावाले ) जनोंने मरणसमयमें क्या चिंतवन करना चाहिये ॥ ५ ॥

**किंनु स्मरन् कुरुश्रेष्ठ मरणे पर्युपस्थिते**
**प्राप्नुयां परमां सिद्धिं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ६ ॥**

हे कुरुश्रेष्ठ ! मरणसमय प्राप्त होवे तब किसका स्मरण करता हुआ जन परम सिद्धिको प्राप्त होवे यह तत्त्वसे मैं सुना चाहताहूँ ॥ ६ ॥

भीष्म उवाच ।

**तद्युक्तं स्वहितं सूक्ष्मं प्रश्नमुक्तं त्वयाऽनघ ॥**
**शृणुष्वावहितो राजन्नारदेन पुराश्रुतम् ॥ ७ ॥**

भीष्मजी बोले-हे राजन् ! तुमने वही यथायोग्य स्वहित सूक्ष्म प्रश्न कहा है जोकि, पहले नारदने सुनाथा अब सावधान होके तुम सुनो ॥ ७ ॥

**श्रीवत्सांकं जगद्बीजमनंतं लोकसाक्षिणम् ॥**
**पुरा नारायणं देवं नारदः परिपृष्टवान् ॥ ८ ॥**

पहले श्रीवत्सचिह्नवाले जगत्के बीज अनन्तलोकके साक्षी नारायणदेवको नारद पूछता भया ॥ ८ ॥

नारद उवाच ।

त्वमक्षरं परं ब्रह्म निर्गुणं तमसः परम् ॥
आहुर्वेद्यं परं धाम ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ॥ ९ ॥

नारदजी बोले-तुम परम अक्षर ( नहीं घटनेवाले ) ब्रह्म हो निर्गुण मायासे वा अज्ञानसे परे हो कमलसे उत्पन्न हुए ब्रह्माजीको जानने योग्य परमधाम तुमको कहते हैं ॥ ९ ॥

भगवन्भूतभव्येश श्रद्दधानैर्जितेंद्रियैः ॥
कथं भक्तैर्विचिंत्योऽसि योगिभिर्मोक्षकांक्षिभिः १०

हे भगवन् ! हे भूतभविष्यत्के पति ! श्रद्धावान् भक्तोंकरके और मोक्षकी इच्छावाले योगीजनोंकरके आप कैसे चिन्तवन करेजावो ॥ १० ॥

किंतु जाप्यं जपेन्नित्यं कल्य उत्थाय मानवः ॥
कथं जपेत्सदा ध्यायेद् ब्रूहि तत्त्वं सनातनम् ॥११॥

प्रातःकाल उठके मनुष्यने क्या जाप्य मन्त्र जपना चाहिये कैसे जपै कैसे सदा ध्यान करै ऐसे सनातनतत्त्वको कहो ॥ ११ ॥

भीष्म उवाच ।

श्रुत्वा च देवदेवर्षेर्वाक्यं वाक्यविशारदः ॥
प्रोवाच भगवान्विष्णुर्नारदाय च धीमते ॥ १२ ॥

भीष्मपितामह कहते हैं-वाक्यविशारद विष्णु भगवान् देवऋषि नारदके वचनको सुनके बुद्धिमान नारदजीके अर्थ बोले ॥ १२ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

हंत ते कथयिष्यामि इमां दिव्यामनुस्मृतिम् ॥

**मरणे मामनुस्मृत्य प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ १३ ॥**

श्रीभगवान् बोले-अब तेरे आगे इस दिव्य अनुस्मृति(स्तोत्रको) कहूँगा मरणसमयमें मेरा स्मरण करके मनुष्य परमगतिको प्राप्त होता है ॥ १३ ॥

**यामधीत्य प्रयाणे तु मद्भावायोपपद्यते ॥**
**ओंकारमग्रतः कृत्वा मां नमस्कृत्य नारद ॥ १४ ॥**

जिसको मरणसमयमें पढके मेरे भावको प्राप्त होता है ( तिसअनुस्मृतिको सुन ) हे नारद ! ॐकारको आगेकर मुझको नमस्कार करके ॥ १४ ॥

**एकाग्रः प्रयतो भूत्वा इमं मंत्रमुदीरयेत् ॥**
**ओं नमो भगवते वासुदेवाय इत्ययम् ॥ १५ ॥**

एकाग्र सावधान होके इस मन्त्रको उच्चारण करै(ॐनमो भगवते वासुदेवाय ) ऐसा यह मन्त्र है॥ १५ ॥

**अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्त्तिते सर्वपातकैः ॥**
**पुमान्विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्मृगैरिव ॥ १६ ॥**

अवश हुआ पुरुष भी इस नामका कीर्त्तन करनेसे सब पापोंसे शीघ्र ही छूट जाता है जैसे सिंहसे भयभीत हुए मृग अलग हो जाते हैं ॥ १६ ॥

**क्षराक्षरविसृष्टस्तु शोच्यते पुरुषोत्तमः ॥**
**अव्यक्तं शाश्वतं देवं प्रभवं पुरुषोत्तमम् ॥ १७ ॥**

(क्षरअक्षरविशिष्ट ) जिसने जीव,ईश्वर रचे हैं ऐसे पुरुषोत्तम भगवान् ध्यायेजाते हैं; अव्यक्त शाश्वत ( सनातन ) देव जगत्में अपने अंशादिकसे उत्पन्न होनेवाले पुरुषोत्तम ॥ १७ ॥

**प्रपद्ये पुंडरीकाक्षं देवं नारायणं हरिम्॥**
**लोकनाथं सहस्राक्षमक्षरं परमं पदम्॥ १८॥**

पुण्डरीकाक्ष नारायण देव हरिकी मैं शरण हूँ लोकोंके नाथ सहस्राक्ष अक्षर परमपद ॥ १८॥

**भगवंतं प्रपन्नोऽस्मि भूतभव्यभवत्प्रभुम्॥**
**स्रष्टारं सर्वलोकानामनंतं विश्वतोमुखम्॥ १९॥**

भूत भविष्यत् वर्तमानके स्वामी सब लोकोंके कर्ता सब तर्फ मुखवाले ऐसे अनन्त भगवान्की मैं शरण हूँ॥ १९॥

**पद्मनाभं हृषीकेशं प्रपद्ये सत्यमच्युतम्॥**
**हिरण्यगर्भममृतं भूगर्भं तमसः परम्॥ २०॥**

पद्मनाभ हृषीकेश सत्यस्वरूप अच्युत ( अपने स्थानसे पतित नहीं होनेवाले ) हिरण्यगर्भ, अमृत, भूगर्भ,तम अर्थात् माया और अज्ञानसे परे (अलग रहनेवाले) ऐसे भगवान्की मैं शरण हूँ॥२०॥

**प्रभोः प्रभुमनाद्यं च प्रपद्ये तं रविप्रभम्॥**
**सहस्रशीर्षकं देवं महर्षेः सत्त्वभावनम्॥२१॥**

प्रभोः अर्थात् ब्रह्मादिक प्रभुवोंके प्रभु ( स्वामी ) अनादि सूर्य समान कांतिवाले हजार शिरोंवाले महर्षि कपिलाचार्य आदि रूपसे सत्त्व सांख्यशास्त्र आदिको प्रवृत्त करनेवाले ऐसे भगवान्की शरण हूँ॥ २१॥

**प्रपद्ये सूक्ष्ममचलं वरेण्यमनघं शुचिम्॥**
**नारायणं पुराणेशं योगावासं सनातनम्॥ २२॥**

सूक्ष्म, अचल; वरेण्य, ( प्रधान, मुख्य पुरुष) पापरहित,पवित्र, नारायण; पुराणेश, योगावास अर्थात् योगके निवासस्थान, सनातन॥ २२॥

सयोगं सर्वभूतानां प्रपद्ये शिवमीश्वरम् ॥
यः पुरा प्रलये प्राप्ते नष्टे स्थावरजंगमे ॥ २३ ॥

संपूर्ण भूतोंके संयोगरूप शिव ईश्वर की शरण हूँ और जो पहले प्रलयसमयमें स्थावर जंगम सब जगत् नष्ट हुए पर ॥ २३ ॥

ब्रह्मादिषु प्रलीनेषु नष्टे लोके चराचरे ॥
एकस्तिष्ठति विश्वात्मा स मे विष्णुः प्रसीदतु॥२४॥

ब्रह्मादिक और चराचर लोक नष्टहुएपर जो विश्वात्मा अकेला स्थित रहता है सो विष्णु मुझपर प्रसन्न हो ॥ २४ ॥

यः प्रभुः सर्वलोकानां येन सर्वमिदं ततम् ॥
चराचरगुरुर्देवः स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥ २५ ॥

जो सब लोकोंका प्रभु है जिसने यह संपूर्ण जगत् रचारक्खा है जो देव चराचर जगत्का गुरु है सो विष्णु मुझपर प्रसन्न हो ॥ २५ ॥

आभूतसंप्लवे चैव प्रलीने प्रकृतौ महान् ॥
योऽवतिष्ठति विश्वात्मा स मे विष्णुःप्रसीदतु ॥२६॥

महा प्रलयके समयमें महान् प्रकृति ( माया ) लीन हुयेपर जो विश्वात्मा अवशेष बाकी रहता है सो विष्णु मुझपर प्रसन्न हो॥२६॥

येन क्रांतास्त्रयो लोका दानवाश्च वशीकृताः ॥
शरण्यः सर्वलोकानां स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥२७॥

जिसने तीनोंलोक ( अपने पैरोंसे ) नापलिए और दानव ( दैत्य ) वशमें करलिये जो सब भूतोंको शरण देनेवाला है सो विष्णु मुझ पर प्रसन्न हो ॥ २७ ॥

यस्य हस्ते गदा चक्रं गरुडो यस्य वाहनम् ॥
शंखः करतले यस्य स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥ २८ ॥

जिसके हाथमें गदा और चक्र है गरुड़ जिसका वाहन है जिसके हाथमें शंख है वह विष्णु मुझपर प्रसन्न हो ॥ २८ ॥

कार्यं क्रिया च करणं कर्त्ता हेतुः प्रयोजनम् ॥
अक्रिया करणाकार्यं स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥२९ ॥

जो कार्यस्वरूप और क्रिया, करण, कर्त्ता, हेतु, प्रयोजन तथा अक्रिया, अकरण, अकार्य आपही है वह विष्णु मुझपर प्रसन्न हो ॥ २९ ॥

चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पचभिरेव च ॥
हूयते च पुनर्द्वाभ्यां स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥ ३० ॥

जो चार वेदोंकरके चार होता उद्गाता आदि आचार्योंकरके द्वाभ्यां अर्थात् दो स्त्री पुरुषोंकरके पांच प्राण अपानादिकों करके फिर दो हाथ और स्रुवा करके हवन किया जाता है सो (होमात्मक) विष्णु भगवान् मुझपर प्रसन्न हो ॥ ३० ॥

शमीगर्भस्य यो गर्भस्तस्य गर्भस्य यो रिपुः ॥
रिपुगर्भस्य यो गर्भः स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥ ३१ ॥

शमीगर्भका अर्थात् अरणिगर्भ अग्निका जो गर्भ सुवर्ण, तिस सुवर्णके गर्भ कहिये हिरण्यगर्भ शत्रु ( हिरण्यकशिपु ) तिस शत्रु गर्भके गर्भ कहिये प्रह्लादके गर्भ अर्थात् हृदय अंतःकरणमें निवास करने वाले जो विष्णु है अथवा तिसप्रह्लादके भर्त्ता नाम पालन पोषण करनेवाले स्वामी है सो विष्णु भगवान् मुझपर प्रसन्न हो यहाँ इस श्लोकके अन्य भी अर्थ हैं सो यहाँ विस्तारभयसे नहीं लिखे हैं ॥ ३१ ॥

अग्निसोमार्कताराणां ब्रह्मरुद्रेंद्रयोगिनाम् ॥
यस्तेजयति तेजांसि स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥ ३२ ॥

जो अग्नि, चंद्रमा, सूर्य, तारागण तथा ब्रह्मा, शिव, इंद्र, योगीजन इनके तेजको तेजवाला करता है वह विष्णु मुझपर प्रसन्न हो ॥ ३२ ॥

पर्जन्यः पृथिवी सस्यं कालो धर्मः क्रियाफलम् ॥
गुणाकारः स मे वाभूर्वासुदेवः प्रसीदतु ॥ ३३ ॥

जो भगवान् पर्जन्यरूप और पृथ्वीस्वरूप और सब अनाजरूप और कालस्वरूप तथाकाल और धर्म सब क्रियारूप तथा सर्व क्रियाओंके फलको देनेवाला और त्रिगुणात्मक सो वासुदेव मुझपर प्रसन्न हो ॥ ३३ ॥

योगावास नमस्तुभ्यं सर्वावास वरप्रद ॥
हिरण्यगर्भ यज्ञांग पंचगर्भ नमोऽस्तु ते ॥ ३४ ॥

हे योगावास सर्वावास ! अर्थात् योग और संपूर्ण प्राणिमात्रोंके निवासस्थान हे वरप्रद ! हे हिरण्यगर्भ ! हे यज्ञांग ! हे पंचगर्भ ! ( पंचतत्त्वोंको उत्पन्न करनेवाले ) तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ ३४ ॥

चतुर्मूर्ते परं धाम लक्ष्म्यावास सदाऽच्युत ॥
शब्दादिवास नान्योऽस्ति वासुदेव प्रधानकृत ॥ ३५ ॥

हे चतुर्व्यूहमूर्तिवाले ! हे परंधाम ! हे लक्ष्मी निवास ! सदाऽच्युत हे शब्दोंके आदि निवासस्थान! हे वासुदेव ! हे प्रधानकृत! मायाको रचनेवाले ( सब जगह तुमसे ) अन्य कोई नहीं है ॥ ३५ ॥

अजः संगमनः पाथो ह्यमूर्तिर्विश्वमूर्तिधृक् ॥
श्रीः कीर्तिः पंचकालज्ञो नमस्ते ज्ञानसागर ॥ ३६ ॥

तुम जन्मरहित हो सब जगह व्याप्त हो अवतार आदिकों करके मूर्तिमान् हो मूर्तिरहित हो और विश्वकी मूर्तिको धारण करनेवाले हो लक्ष्मीरूप कीर्तिरूप हो पंचकालको ( पंचभूतोंके कालको ) जाननेवाले हो हे ज्ञानसागर ! तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ ३६ ॥

**अव्यक्ताद्व्यक्तमुत्पन्नमव्यक्ताद्यः परात्परः ॥**
**यस्मात्परतरं नास्ति तमस्मि शरणं गतः ॥ ३७ ॥**

अव्यक्त कहिये प्रधान पुरुषसे ( व्यक्त )माया उत्पन्न होती है जो अव्यक्तसे भी परात्पर शुद्धब्रह्म है और जिससे परे कोई नहीं है तिसकी मैं शरण हूँ ॥ ३७ ॥

**चिंतयंतो ह्यजं नित्यं ब्रह्मेशानादयः सुराः ॥**
**निश्चयं नाधिगच्छंति तमस्मि शरणं गतः ॥ ३८ ॥**

अजन्मा प्रभुको नित्य चिन्तवन करते हुए ब्रह्मा आदि शिवआदि देवता जिसका निश्चय नहीं करसकते हैं मैं तिसके शरण हूँ ॥ ३८ ॥

**जितेंद्रिया जितात्मानो ज्ञानध्यानपरायणाः ॥**
**यं प्राप्य न निवर्त्तंते तमस्मि शरणं गतः ॥ ३९ ॥**

हे जितेंद्रिय ! और जितात्मन् अर्थात् मन अन्तःकरणको जीतने वाले ज्ञान ध्यानमें परायण मुनिजन जिसको प्राप्त होके फिर निवृत्त नहीं होते हैं ( संसारमें नहीं आते हैं ) तिसके मैं शरण हूँ ॥ ३९ ॥

**एकांशेन जगत्कृत्स्नमवष्टभ्य स्थितः प्रभुः ॥**
**अग्राह्यो निर्गुणो नित्यस्तमस्मि शरणं गतः ॥ ४० ॥**

जो प्रभु अपने एकांशसे सम्पूर्ण जगत्को व्याप्तकर स्थित है और निर्गुण होनेसे मन वाणी करके अग्राह्य है उस सनातन परमात्माको मैं शरण हूँ ॥ ४० ॥

सोमार्काग्निमयं तेजो या च तारामयी द्युतिः॥
दिवि संजायते तेजः स महात्मा प्रसीदतु॥ ४१ ॥

चन्द्रमा,सूर्य, अग्निरूप जो तेज है तारागणमें जो कांतिहै स्वर्गमें ( आकाशमें ) जो तेज होताहै ऐसा वह महात्मा प्रसन्न हो ॥४१॥

गुणात्मा निर्गुणश्चान्यो रश्मिवांश्चेतनो ह्यजः॥
सूक्ष्मः सर्वगतो देहः स महात्मा प्रसीदतु ॥ ४२ ॥

जो गुणोंकी आत्मा और आप निर्गुण अलग है प्रकाशरूप चेतन अजन्मा है सूक्ष्म है सर्वगत देहरहित है वह महात्मा प्रसन्न हो॥४२॥

अव्यक्तं सदधिष्ठानमचिंत्यं तमसः परम् ॥
प्रकृतिः प्रकृतिं भुंक्ते स महात्मा प्रसीदतु ॥ ४३ ॥

जो अव्यक्त अप्रगटरूप है सत( जीवका)-अधिष्ठान है अचिंत्य है मायासे अलग है महदहंकार प्रकृतिरूप हो प्रकृति कहिये मायाको भोगता है वह महात्मा प्रसन्न हो ॥ ४३ ॥

क्षत्रज्ञः पंचधा भुंक्ते प्रकृतिं पंचभिर्मुखैः ॥
महागुणांश्च यो भुंक्ते स महात्मा प्रसीदतु ॥ ४४ ॥

जो क्षेत्रज्ञ होके पांचप्रकारसे पांचमुखों करके प्रकृति (माया) को भोगता है वह महात्मा प्रसन्न हो ॥ ४४॥

सांख्ययोगाश्च ये चान्ये सिद्धाश्च परमर्षयः ॥
य विदित्वा विमुच्यंते स महात्मा प्रसीदतु ॥४५ ॥

सांख्ययोगवाले जो अन्यजन तथा सिद्ध और परमसृषि जिसको जानके (संसारबन्धनसे) छूटजाते हैं वह महात्मा प्रसन्न हो ॥ ४५ ॥

अतींद्रिय नमस्तुभ्यं लिंगैर्व्यक्तैर्न मीयसे ॥
यं च त्वां नाभिजानंति तमस्मि शरणं गतः ॥४६॥

हे अतींद्रिय ! अर्थात् इंद्रियोंकरके अग्राह्य तुम्हारे अर्थ नमस्कार है । तुम प्रकट चिह्नोंकरके ( इंद्रियगोचरों करके ) नहीं प्रमाण किये जाते हो और जिस तुमको नहीं जानते हैं तिसकी मैं शरणागत हूँ ॥ ४६ ॥

कामक्रोधविनिर्मुक्ता रागद्वेषवि वर्जिताः ॥
अन्यभक्ता न जानंति न पुनर्नारका जनाः ॥ ४७॥

कामक्रोधसे छूटे हुए रागद्वेषसे रहित हुए अन्य भक्त भी तुमको नहीं जान सकते हैं तैसे ही नरकवासी जन तो कभी नहीं जानते हैं ॥ ४७॥

एकांतिनो हि निर्द्वंद्वा निराशाः कर्मकारिणः
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणस्त्वां विशंति मनस्विनः ॥४८॥

निरंतर तुम्हारे भक्त सुखदुःखआदि द्वंद्वरहित आशारहित कर्म करनेवाले ज्ञानरूपी अग्निसे कर्मको दग्ध करनेवाले पंडितजन तुम्हारे विषे लीन ( प्रवेश ) होते हैं ॥ ४८ ॥

अशरीरं शरीरस्थं समं सर्वेषु देहिषु ॥
पापपुण्यविनिर्मुक्ता भक्तास्त्वां पर्युपासते ॥ ४९ ॥

शरीर रहित शरीरमें स्थित सब देहधारियोंमें समान रहनेवाले ऐसे तुमको पापपुण्यसे विनिर्मुक्त हुए भक्तजन उपासना करते हैं॥४९॥

अव्यक्तबुद्ध्यहंकारमनोभूतेंद्रियाणि च ॥
त्वयि तानि च तेषु त्वं न तेषु त्वं न तानि ते॥५०॥

माया बुद्धि अहंकार मन ज्ञानेंद्रिय ये सब तुम्हारे विषे हैं (जैसे आकाशमें घट) और उनमें तुम भी हो (वास्तवमें) उन माया आदिकोंमें तुम नहीं और वे तुममें नहीं हैं॥ ५०॥

**एकत्वाय च नानन्यं ये विदुर्यान्ति ते परम्॥**
**समत्वमिह कांक्षंति भक्त्या वै नान्यचेतसा॥ ५१॥**

मुनिजन एकत्वके वास्ते तुमसे अन्य कछु नहीं जानते हैं जो और भक्ति करके अनन्यचित्तसे इस संसारमें समत्व (समता) की इच्छा करते हैं वे परम मोक्षको प्राप्त होते हैं॥ ५१॥

**चराचरमिदं सर्वं भूतग्रामं चतुर्विधम्॥**
**त्वयि तन्तौ च तत्प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥ ५२॥**

यह सब चार प्रकारका अंडजादि ४ भेदका संसार तागारूप तुम्हारे विषे ऐसे पुरोया हुआ है जैसे सूतमें मणिसमूह पुरोये हुए हैं॥ ५२॥

**स्रष्टा भोक्तासि कूटस्थो ह्यचिंत्यः सर्वसंज्ञितः॥**
**अकर्त्ता हेतुरहितः पृथगात्मा व्यवस्थितः॥ ५३॥**

तुम स्रष्टा (कर्त्ता) भोक्ता हो कूटस्थ अचिंत्य हो सर्वसंज्ञा वाले हो वास्तवमें अकर्त्ता और हेतुरहित हो पृथक् आत्मा करके व्यवस्थित हो॥ ५३॥

**न मे भूतेषु संयोगो न भूतित्वं गुणातिगे॥**
**अहंकारेण बुद्ध्या वा न मे योगस्त्रिभिर्गुणैः॥ ५४॥**

भूतोंमें (तत्त्वोंमें) मेरा संयोग नहीं है गुणोंसे अतिरिक्त हुये विषे ऐश्वर्यादिक धर्म नहीं है अहंकारकरके अथवा बुद्धिकरके और तीनों गुणोंके साथ मेरा योग नहीं है॥ ५४॥

न मे धर्मो ह्यधर्मो वा नारंभो जन्म वा पुनः ॥
जरामरणमोक्षार्थं त्वां प्रपन्नोऽस्मि सर्वगम् ॥५५॥

मेरे धर्म और पाप नहीं हैं किसी कार्यका आरंभ और जन्म भी नहीं है वृद्धावस्था और मरणकी मोक्षके वास्ते सर्वगत हुये तुम्हारी शरण हूँ ॥ ५५ ॥

विषयैरिंद्रियैश्चापि न मे भूयः समागमः ॥
ईश्वरोऽसि जगन्नाथ किमतः परमुच्यते ॥ ५६॥

विषय और इंद्रियोंके साथ फिर मेरा समागम न हो। हे जगन्नाथ ! तुम ईश्वर हो इससे विशेष क्या कहैं ?॥ ५६ ॥

भक्तानां यद्धितं देव तत्ते हि त्रिदशेश्वर ॥
पृथिवीं यातु मे घ्राणं यातु मे रसनं जलम् ॥ ५७ ॥

हे त्रिदशेश्वर ! देवतोंके ईश्वर ! भक्तोंको जो हित है वह तुमसे ही होता है मेरी नासिका इंद्रिय पृथ्वीको प्राप्त हो मेरी जिह्वा जलको प्राप्त हो ॥ ५७ ॥

रूपं हुताशने यातु स्पर्शो मे यातु मारुते ॥
श्रोत्रमाकाशमभ्येतु मनो वैकारिकं पुनः ॥ ५८ ॥

रूप अग्निमें प्राप्त हो, स्पर्श वायुमें प्राप्त हो, श्रोत्रइंद्रिय आकाशमें प्राप्त हो मन अहंकारको प्राप्त हो ॥ ५८ ॥

इंद्रियाणि गुणान्यांतु स्वेषु स्वेषु च योनिषु ॥
पृथिवी यातु सलिलमापोऽग्निमनलोऽनिलम्॥५९॥

सबइंद्रिय अपनी २ योनियोंमे गुणोंको प्राप्तहो जावो पृथ्वी जलमें प्राप्त हो जल अग्निमें लीन हो अग्नि वायुमें लीन हो जावो ॥५९॥

वायुराकाशमभ्येतु मनश्चाकाशमेव च ॥
अहंकारं मनो यातु मोहनं सर्वदेहिनाम् ॥ ६० ॥

वायु आकाशमें लीन हो मन भी आकाशमें लीन हो जावों संपूर्ण देहधारियोंको मोहनेवाला मन अहंकारमें प्राप्त होवो ॥ ६० ॥

अहंकारस्तथा बुद्धिं बुद्धिरव्यक्तमेव च ॥
प्रधानं प्रकृतिं यातु गुणसाम्ये व्यवस्थिते ॥ ६१ ॥

अहंकार बुद्धिमें लीन हो जावो बुद्धि मायामें लीन हो माया जहां सब गुण समानतासे व्यवस्थित रहते हैं ऐसी प्रकृतिमें प्राप्तहो जावो ॥ ६१ ॥

विसर्गः सर्वकरणैर्गुणभूतैश्च मे भवेत् ॥
सत्त्वः रजस्तमश्चैव प्रकृतिं प्रविशंतु मे ॥ ६२ ॥

गुणोंसे उत्पन्न हुए संपूर्ण करण ( इंद्रियादिकों ) करके मेरा विसर्जन हो मेरे सत्त्व रजतमोगुण प्रकृतिमें प्रवेश होवो ॥ ६२ ॥

नैष्कैवल्यं पदंदेव कांक्षेऽहं ते परंतप ॥
एकीभावस्त्वया मेऽस्तु न मे जन्म भवेत्पुनः॥६३॥

हे,देव ! हे परंतप ! मैं तुम्हारे नैष्कैवल्यपदकी इच्छा करता हूँ तुम्हारे संगमें मेरा एकीभाव हो फिर मेरा जन्म नहीं हो॥ ६३ ॥

नमो भगवते तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे ॥
त्वद्बुद्धिस्त्वद्गतप्राणस्त्वद्भक्तस्त्वत्परायणः ॥ ६४ ॥

तिस भगवान् विष्णु प्रभविष्णु ( विशेषकरके होनेवाले ) के अर्थ नमस्कार है हे भगवन् ! तुम्हारे विषे बुद्धि और प्राणोंवाला तुम्हारा भक्त और तुम्हारे विषे परायण हूँ ॥ ६४ ॥

त्वामेवाहं स्मरिष्यामि मरणे पर्यवस्थिते ॥
पूर्वदेहकृता ये मे व्याधयः प्रविशंतु माम् ॥ ६५ ॥

मरणसमयमें तुम्हारा ही स्मरण करूँगा और मेरे किये हुए जो पूर्वजन्मके रोग हैं वे सब रोग मेरे विषे आजावो ॥ ६५ ॥

अर्दयंतु च मां दुःखान्यृणं मे प्रतिमुच्यताम् ॥
अनुध्येयोऽसि मे देव न मे जन्म भवेत्पुनः ॥ ६६ ॥

दुःख मुझको पीड़ा दो अनृणी हुए मुझको छोड़ो हे देव ! तुम ध्यान करनेयोग्य हो फिर मेरा जन्म मत हो ॥ ६६ ॥

अस्माद्ब्रवीमि कर्माणि ऋणं मे न भवेदिति ॥
उपतिष्ठंतु मां सर्वे व्याधयः पूर्वसंचिताः ॥ ६७ ॥

इसीवास्ते मैं कर्मोंको कहता हूँ कि, मेरा ऋण मत रहो पूर्वजन्ममें संचित कीहुई सब व्याधि मेरे विषे आजावो ॥ ६७ ॥

अनृणो गंतुमिच्छामि तद्विष्णोः परमं पदम् ॥
अहं भगवतस्तस्य मम वासः सनातनः ॥ ६८ ॥

अनृणी हुआ मैं तिस विष्णुभगवान्के परमपदको जाऊँ मेरा वास सदा रहो ॥ ६८ ॥

तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥
कर्मेंद्रियाणि संयम्य पंचभूतेंद्रियाणि च ॥ ६९ ॥

तिसको मैं नष्ट नहीं होऊं और मेरा वह परमपद नष्ट नहीं हो कर्मेंद्रिय और पांच ज्ञानेन्द्रियोंको वशमें कर ॥ ६९ ॥

दशेंद्रियाणि मनसि अहंकारं तथा मनः ॥

अहंकारं तथा बुद्धौ बुद्धिमात्मनि योजयेत् ॥७०॥

दश इन्द्रियोंको मनमें प्राप्त कर मनको अहंकारमें प्राप्त अहंकारको बुद्धिविषे लीन करै बुद्धिको आत्मामें युक्त करै ॥७०॥

आत्मबुद्धींद्रियं पश्येद्बुद्ध्या बुद्धेः परात्परम् ॥
एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ॥ ७१॥

बुद्धिकरके मन और ज्ञानेन्द्रियोंको देखे ( आत्माको ) बुद्धिसे परात्पर जाने ऐसे अपने आत्माकरके आत्माको बुद्धिसे परे जानके निश्चय करै ॥ ७१ ॥

ततो बुद्धेः परं बुद्ध्वा लभते न पुनर्भवम् ॥
ममायमिति तस्याहं येन सर्वमिदं ततम् ॥ ७२ ॥

फिर बुद्धिसे परे जानके पुनर्जन्मको नहीं प्राप्त होता है ऐसे विचारै कि, जिसने यह सम्पूर्ण जगत् रचा है सो यह मेरा है मैं तिसका हूँ ॥ ७२ ॥

आत्मन्यात्मनि संयोज्य परात्मानमनुस्मरेत् ॥
नमो भगवते तस्मै देहिनां परमात्मने ॥ ७३ ॥

आत्माविषे आत्माको संयुक्त करके परमात्माका स्मरण करै देहधारियोंके परमात्मास्वरूप तिस भगवान्के अर्थ नमस्कार है ॥ ७३ ॥

नारायणाय भक्ताय एकनिष्ठाय शाश्वते ॥
हृदिस्थाय च भूतानां सर्वेषां च महात्मने ॥७४॥

नारायण भक्तस्वरूप एकनिष्ठावाले शाश्वत ( सनातन ) सब भूतोंके हृदयमें स्थित महात्माके अर्थ नमस्कार है ॥७४ ॥

इमामनुस्मरन् दिव्यां वैष्णवीं पापनाशिनीम् ॥

स्वपन् विबुध्य च पठेद्यत्नेन च समभ्यसेत् ॥७५॥

पापको नष्ट करनेवाली इस दिव्य वैष्णवी (विष्णुकी अनुस्मृति) को सोके प्रातःकाल उठके यत्नसे पढ़ै और अच्छेप्रकारसे अभ्यास करै ॥ ७५ ॥

मरणे समनुप्राप्ते यदेकं मामनुस्मरेत् ॥
अपि पापसमाचारः स याति परमां गतिम् ॥७६॥

मरणसमयमें जो एक मेरा ही स्मरण करे तो जो यदि पापी पुरुष हो तो भी वह परम गतिको प्राप्त होता है ॥ ७६ ॥

यद्यहंकारमाश्रित्य यज्ञदानतपःक्रियाः ॥
कुर्वन्फलमवाप्नोति पुनरावर्तनं च तत् ॥ ७७ ॥

जो यदि अहंकारके आश्रय होके यज्ञ, दान, तपस्या आदि कर्म करता हुआ जन कर्मफलको प्राप्त होवे तो फिर जन्मको प्राप्त होता है ॥ ७७ ॥

अभ्यर्चयन्पितॄन्देवान्पठञ्जुह्वन्बलिं ददत् ॥
ज्वलदग्निं स्मरेद्यो मां लभते परमां गतिम् ॥ ७८ ॥

पितर और देवताओंको पूजता हुआ पाठकरता हुआ होम करता हुआ बलि देता हुआ, जो ज्वलते हुए अग्निको मुझको ही स्मरण करता है (जानता है) वह परम गतिको प्राप्त होता है ॥७८॥

यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥
यज्ञं दानं तपस्तस्मात्कुर्याद्रागविवर्जितः ॥ ७९ ॥

यज्ञ, दान, तप, ये पण्डितजनोंको पवित्र करनेवाले हैं इस लिये राग (फल स्नेह) से रहित हुआ पण्डितजन यज्ञ, दान तपस्या करै ॥ ७९ ॥

पौर्णमास्याममायां च द्वादश्यां च तथैव च ॥
श्रावयेच्छ्रद्दधानश्च मद्भक्तश्च विशेषतः ॥ ८० ॥

विशेषकरके मेरा भक्त पौर्णमासी अमावास्या द्वादशी इन दिनोंमें श्रद्धासे युक्त होके इस स्तोत्रको सुनावै ॥ ८० ॥

नम इत्येव यो ब्रूयान्मद्भक्तः श्रद्धयान्वितः ॥
तस्याक्षयो भवेल्लोकः श्वपाकस्यापि नारद ॥ ८१ ॥

श्रद्धासे युक्त हुआ जो मेरा भक्त नमः, ऐसे (प्रणाम) कहता है हे नारद! वह चाहे चाण्डाल हो तो भी तिसको अक्षय मेरा लोक प्राप्त होता है ॥ ८१ ॥

किं पुनर्ये भजंते मां साधका विधिपूर्वकम् ॥
श्रद्धावंतो यतात्मानस्ते यांति परमां गतिम्॥ ८२॥

फिर जो साधक उत्तमजन मुझको विधिपूर्वक पूजते हैं उनका क्या कथन है जो श्रद्धावाले जितेंद्रिय पुरुष होते हैं वे परम गतिको प्राप्त होते हैं ॥ ८२ ॥

कर्माण्याद्यंतवंतीह मद्भक्तोऽनंतमश्नुते ॥
मामेव तस्माद्देवर्षे ध्याय नित्यमतंद्रितः ॥ ८३॥

कर्म तो आदि अन्तवाले हैं मेरा भक्तजन अनन्त (अक्षय) पदको प्राप्त होता है, हे देवर्षे! इसलिये तू सावधान होके नित्य मेरा ही ध्यान कर ॥ ८३ ॥

अज्ञानां चैव यो ज्ञानं दद्याद्धर्मोपदेशतः ॥
कृत्स्नां वा पृथिवीं दद्यात्तेन तुल्यं च तत्फलम्॥८४॥

जो मनुष्य धर्मके उपदेशसे अज्ञजनोंको ज्ञान देता है वह सम्पूर्ण पृथ्वीदानके फलको प्राप्त होता है ॥ ८४ ॥

तस्मात्प्रदेयं साधुभ्यो जपं बंधभयापहम् ॥
अवाप्स्यसि ततः सिद्धिं प्राप्स्यसे च पदं मम॥८५॥

इसलिये भयको दूर करनेवाला जप (मन्त्र) साधुजनोंके वास्ते देना चाहिये तिससे सिद्धिको प्राप्त होगा और मेरे पद (स्थान)को प्राप्त होगा ॥ ८५ ॥

अश्वमेधसहस्रैश्च वाजपेयशतैरपि ॥
नासौ पदमवाप्नोति मद्भक्तैर्यदवाप्यते ॥ ८६ ॥

जो पद मेरे भक्तोंको प्राप्त होता है वह पद हजार अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञों करकेभी नहीं प्राप्त होता है ॥ ८६ ॥

भीष्म उवाच।

हरेः पृष्टं पुरा तेन नारदेन सुरर्षिणा ॥
यदुवाच ततः शंभुस्तदुक्तं समनुव्रत ॥ ८७ ॥

भीष्मजी कहते हैं-हे समनुव्रत ! अर्थात् सम्यक् सावधान हुए युधिष्ठिर ! पहले देवऋषि नारदजीने हरिसे पूछा फिर शंभु अर्थात् ब्रह्मरूप( सुख करनेवाले )हरि जो कुछ कहते भये वही मैंने कहा है ॥ ८७ ॥

त्वमप्येकमना भूत्वा ध्याहि ध्येयं गुणाधिकम् ॥
भजस्व सर्वभावेन परमात्मानमव्ययम् ॥८८॥

तुम भी एकाग्रमनकरके गुणोंसे अधिक ध्येय(ध्यानकरने योग्य) अविनाशी परमात्माको ध्यावो और संपूर्णभावसे भजो ॥ ८८ ॥

श्रुत्वैवं नारदो वाक्यं दिव्यं नारायणोदितम् ॥
अत्यंतं भक्तिमान्देवमेकांतित्वमुपेयिवान् ॥ ८९ ॥

नारदमुनि इसप्रकारके दिव्य नारायणके कहे हुए वचनको सुनके अत्यन्त भक्तिमान् वह नारदमुनि एकान्तितत्व सब जगह निरंतर एक रस रहनेवाले देवको प्राप्त होता भया ॥ ८९ ॥

नारायणमृषिं देवं दशवर्षाण्यनन्यभाक् ॥
इमं जपित्वा चाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥९०॥

अनन्यभक्ति करके दश वर्षतक नारायण देवको ऋषि भजता भया इसाही ( नारायणमन्त्र ) को जपके विष्णुके तिस परम पदको प्राप्त होता है ॥ ९० ॥

किं तस्य बहुभिर्मंत्रैः किं तस्य बहुभिर्व्रतैः ॥
नमोनारायणायेति मंत्रः सर्वार्थसाधकः ॥९१॥

उसके बहुत मन्त्रोंकरके क्या है बहुत व्रतोंकरके क्या है किन्तु "नमोनारायणाय" यही मन्त्र सम्पूर्ण प्रयोजनको सिद्ध करनेवाला है॥ ९१ ॥

किं तस्य दानैः किं तीर्थैः किं तपोभिः किमध्वरैः॥
यो नित्यं ध्यायते देवं नारायणमनन्यधीः ॥ ९२ ॥

जो पुरुष नित्य प्रति अनन्य ( एकाग्र ) बुद्धिकरके नारायण देवको ध्याता है उसके दानोंकरके तीर्थोंकरके तप और यज्ञों करके क्या है ॥ ९२ ॥

ये नृशंसा दुरात्मानः पापाचाररतास्तथा ॥
तेऽपि यांति परं स्थानं नारायणपरायणाः ॥ ९३ ॥

जो क्रूर (हिंसक) दुष्टात्मा पापी पुरुष हैं वे भी (इस मन्त्रकरके) नारायणमें परायण होके परमस्थानको प्राप्त होते हैं ॥ ९३ ॥

अनन्यया मंदबुद्ध्या प्रतिभाति दुरात्मनाम् ॥

कुतर्कां ज्ञानदृष्टीनां विभ्रांतेंद्रियवर्त्मनाम् ॥ ९४ ॥

कुतर्क और अज्ञानकी दृष्टिवाले इंद्रियोंके विषयोंमें भ्रमते हुए दुष्टजनोंको अनन्य मन्दबुद्धिकरके वह परमात्मा प्रतिकूल ( खराब ) मालूम होता है ॥ ९४ ॥

नमो नारायणायेति ये विदुर्ब्रह्म शाश्वतम् ॥
अंतकाले जपाद्यांति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ९५ ॥

जो पुरुष 'नमो नारायणाय' इस मन्त्रको सनातन ब्रह्म जानते हैं वे अंतसमयमें इस मन्त्रको जपते हुए विष्णुके तिस परम पदको प्राप्त होते हैं ॥ ९५ ॥

आचारहीनोऽपि मुनिप्रवीर भक्त्या विहीनोऽपि विनिंदितोऽपि ॥ किं तस्य नारायणशब्दमात्रतो विमुक्तपापो विशतेऽच्युतां गतिम् ॥ ९६ ॥

हे मुनिप्रवीर ! जो आचारहीन तथा भक्तिहीन होवे और निंदित हो उसके ( क्या पाप हैं ) किन्तु "नारायण" ऐसे शब्दमात्रसे पापरहित होके परम अविनाशी गतिको प्राप्त होता है ॥ ९६ ॥

कांतारवनदुर्गेषु कृच्छ्रेष्वापत्सु संयुगे ॥
दस्युभिः सन्निरुद्धश्च नामभिर्मां प्रकीर्तयेत् ॥ ९७ ॥

गह्वर भयंकर मार्ग, वन, दुर्ग ( किला ) कष्ट, विपत्ति, युद्ध इन्हीमें और शत्रुओंकरके रुका हुआ जन मुझको मेरे नामों करके कीर्तन करै ॥ ९७ ॥

जन्मांतरसहस्रेषु तपोध्यानसमाधिभिः ॥
नराणां क्षीणपापानां कृष्णे भक्तिः प्रजायते ॥ ९८ ॥

हजारों जन्मांतरोंमें तप, ध्यान समाधियोंकरके जब मनुष्योंके पाप क्षीण होते हैं तब उसकी भक्ति श्रीकृष्णविषे होती है ॥ ९८ ॥

**नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः ॥**
**श्वपचोऽपि नरः कर्तुं क्षमस्तावन्न किल्बिषम् ॥९९॥**

पापोंके हरनेमें हरिके नामोंमें जितनी शक्ति है उतने पाप करनेमें चाण्डाल पुरुष भी समर्थ नहीं है ॥ ९९ ॥

**न तावत्पापमस्तीह यावन्नामाहतं हरेः ॥**
**अतिरेकभयादाहुः प्रायश्चित्तांतरं वृथा ॥ १०० ॥**

इस संसारमें उतने पाप नहीं हैं कि जितने पाप हरिके नामों करके हत ( नष्ट ) होजाते हैं इसलिये अतिरेक अर्थात् ज्यादे होनेके भयसे अन्य प्रायश्चित्तोंको वृथाही कहते हैं अर्थात् हरि-नामके समान कोई प्रायश्चित्त नहीं है ॥ १०० ॥

**गत्वा गत्वा निवर्तन्ते चंद्रसूर्यादयो ग्रहाः ॥**
**अद्यापि न निवर्त्तन्ते द्वादशाक्षरचिंतकाः॥१०१॥**

चन्द्र, सूर्य, आदि ग्रह तो प्राप्त होके उलटे निवृत्त होते हैं और द्वादशाक्षरमन्त्र ( ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ) को चिंतवन करनेवाले जन अब तक निवृत्त नहीं होते हैं ॥ १०१ ॥

**न वासुदेवात्परमस्ति मंगलं न वासुदेवात्परमस्ति पावनम् ॥ न वासुदेवात्परमस्ति दैवतं तं वासुदेवं प्रणमन्न सीदति ॥ १०२ ॥**

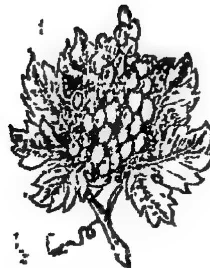
वासुदेव भगवान्से परे मंगल नहीं है वासुदेवसे परे कुछ पवित्र

नहीं है वासुदेवसे परे दैव नहीं है ऐसे तिस वासुदेवको प्रणाम करताहुआ जन दुःखित नहीं होता है ॥ १०२ ॥

इमां रहस्यां परमामनुस्मृतिं योऽधीत्य बुद्धिं लभते च नैष्ठिकीम् ॥ विहाय पापं विनिर्मुच्य संकटात्सवीतरागो विचरे-न्महीमिमाम् ॥ १०३ ॥

इस रहस्य ( गुह्य ) परम अनुस्मृतिको जो पढता है वह नैष्ठिकी ब्रह्ममें ( निष्ठावाली ) बुद्धिको प्राप्त होता है और पापसे छूटके तथा संकटसे छूटके स्नेहरहित होके इस पृथ्वीमें विचरता है ॥ १०३ ॥

इति अनुस्मृतिभाषाटीका समाप्ता एषा भाषाटीका बेरीनिवासि-पण्डितवसातिरामशर्म्मणा विरचिता ॥





॥ श्रीः ॥

# अथ गजेन्द्रमोक्षः ।

बेरी निवासी पं० बसतिरामविरचित-

भाषाटीकासमेतः ।

सोऽयं

क्षेमराज-श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना

मुम्बय्यां

स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" ( स्टीम् ) यन्त्रालये

मुद्रयित्वा प्रकाशितः ।

संवत् १९८०, शके १८४५.

# गजेन्द्रमोक्षः ।



ररक्ष यः कुञ्जरचक्रशर्के
नक्रस्य चक्रेण विपाटय वक्रम् ॥
सदाऽवनस्थः खरहेतिहस्तो
हरिर्विरीवर्ति विलक्षणोऽसौ ॥



॥ श्रीः ॥

# अथ गजेन्द्रमोक्ष ।

## भाषाटीकासमेत ।



शतानीक उवाच ।

**मया हि देवदेवस्य विष्णोरमिततेजसः ॥**
**श्रुताः संभूतयः सर्वा गदतस्तव सुव्रत ॥ १ ॥**

शतानीक बोले-हे सुव्रत ! कहते हुए तुमसे मैंने अतुल तेजवाले देवनके देव विष्णुभगवान्‌के सम्पूर्ण ऐश्वर्य गुण सुने ॥ १ ॥

**यदि प्रसन्नो भगवाननुग्राह्योऽस्मि वा यदि ॥**
**तदहं श्रोतुमिच्छामि नृणां दुःस्वप्ननाशनम् ॥ २ ॥**

भगवान् तुम यदि प्रसन्न हो और मेरा अनुग्रह किया चाहते हो तो मनुष्योंके दुःस्वप्न ( बुरा स्वप्नफलको ) नष्टकारक ( इतिहासादिकको ) मैं सुना चाहता हूँ ॥ २ ॥

**स्वप्नादिषु महाभाग दृश्यंते ये शुभाशुभाः ॥**
**फलानि च प्रयच्छंति तद्रूणान्येव भार्गव ॥ ३ ॥**

हे महाभाग ! स्वप्न आदिकोंमें जो शुभाशुभ दीखते हैं, हे भार्गव ! वैसाही वे फल देते हैं ॥ ३ ॥

**तादृक्पुण्यं पवित्रं च नृणामतिशुभप्रदम् ॥**
**दुष्टस्वप्नोपशमनं तन्मे विस्तरतो वद ॥ ४ ॥**

वैसा ही पवित्र मनुष्योंको अत्यन्त शुभदायक दुष्ट(बुरे) स्वप्नके नाश करनेवाले (इतिहास आदिको )मेरे आगे विस्तारसे कहो॥४॥

शौनक उवाच।

इदमेव महाभाग पृष्टवांश्च पितामहम्॥
भीष्मं धर्मभृतां श्रेष्ठं धमपुत्रो युधिष्ठिरः॥ ५ ॥

शौनकजी बोले-हे महाभाग ! इसही प्रश्नको धर्मधारियों भीष्मपितामहजीसे धर्मका पुत्र युधिष्ठिर पूछता भया ॥ ५ ॥

भीष्म उवाच।

जितं ते पुंडरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन॥
नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुषपूर्वज॥ ६ ॥

भीष्मजी कहते भये हे पुण्डरीकाक्ष ! हे विश्वभावन ! अर्थात् विश्वको उत्पन्न करनेवाले हे हृषीकेश, हे महापुरुष ! हे पूर्वज (सबसे प्रथम उत्पन्न होनेवाले) तुम्हारी जय हो तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ ६ ॥

आद्यं पुरुषमीशानं पुरुहूतं पुरातनम्॥
ऋतमेकाक्षरं ब्रह्म व्याक्ताव्यक्तं सनातनम्॥ ७ ॥

आद्यपुरुष ईशान(ईश्वर) पुरहूत ( यज्ञादिकोंमें बहुत है बुलाना जिसका ) पुरातन ऋत अर्थात् सत्यस्वरूप एकाक्षर ( ॐकार ) स्वरूप ब्रह्म व्यक्ताव्यक्त अर्थात् अपने अवतार आदिकोंकरके प्रगट और निजस्वरूप निराकार होनेसे अप्रकट रहनेवाले सनातन॥७॥

असच्च सच्च यद्विश्व नित्यं सदसतः परम्॥
परापराणां स्रष्टारं पुराणं परमव्ययम्॥ ८ ॥

सत् असत् कहिये सूक्ष्म, स्थूल रूपकरके जो विश्वहै सो और तिस सत् असत्से भी परे परापर कहिये ब्रह्मा आदि सब जीवोंको रचनेवाले पुराण परम अविनाशी ॥ ८ ॥

मांगल्यं मंगलं विष्णुं वरेण्यमनघं शुचिम् ॥
नमस्कृत्य हृषीकेशं चराचरगुरुं हरिम् ॥ ९ ॥

मंगल करनेवाले, मंगलस्वरूप विष्णु ( सब लोकोंमें व्याप्त-रहनेवाले ) अत्युत्तम निष्पाप, पवित्र, चराचरके गुरु ऐसे हृषीकेश हरिनारायणको नमस्कार करके वेदव्यासजीके ॥ ९ ॥

प्रवक्ष्यामि मतं पुण्यं कृष्णद्वैपायनस्य च ॥
येनोक्तेन श्रुतेनापि नश्यते सर्वपातकम् ॥ १० ॥

पवित्र मतको कहता हूँ जिसके कहने सुननेसे सम्पूर्ण पाप नष्ट होते हैं ॥ १० ॥

नारायणसमो देवो न भूतो न भविष्यति ॥
एतेन सत्यवाक्येन सर्वार्थान्साधयाम्यहम् ॥ ११ ॥

नारायणके समान देवता न भया और न होगा इसी सत्य-वचनकरके मैं सम्पूर्ण प्रयोजनोंको सिद्ध करता हूँ ॥ ११ ॥

किं तस्य बहुभिर्मत्रैः किं तस्य बहुभिर्व्रतैः ॥
नमो नारायणायेति मंत्रः सर्वार्थसाधकः ॥ १२ ॥

जो(नारायणको ध्याता है) उसको बहुत मंत्रोंकरके क्या है और उसको बहुत व्रतों करके क्या है किन्तु 'ॐनमो नारायणाय' यही मंत्र सम्पूर्ण प्रयोजनको सिद्ध करनेवाला है ॥ १२ ॥

जज्ञे बहुज्ञं परमत्युदारं यं द्वीपमध्ये सुतमात्मवन्तम् ॥ पराशराद्गंधवती महर्षेस्तस्मै नमोऽज्ञानतमोनुदाय ॥ १३ ॥

गंधवती देवी पराशरजी महर्षिके सकाशसे द्वीपके मध्यमें जिस

परम उदार बहुज्ञ ( बहुत जाननेवाले ) आत्मज्ञानी पुत्रको जनती-भई अज्ञानरूपी अन्धकारको नष्ट करनेवाले तिसके अर्थ नमस्कार है ॥ १३ ॥

**नमो भगवते तस्मै व्यासायामिततेजसे ॥**
**यस्य प्रसादाद्वक्ष्यामि नारायणकथामिमाम् ॥१४॥**

जिसकी कृपासे नारायणकी इस कथाको मैं कहूँगा तिस भगवान् अतुलतेजवाले वेदव्यासजीके अर्थ नमस्कार है ॥ १४ ॥

**वैशम्पायनमासीनं पुराणार्थविचक्षणम् ॥**
**इममर्थं स राजर्षिः पृष्टवाञ्जनमेजयः ॥ १५ ॥**

वह राजऋषि जनमेजय पुराणोंके अर्थको जाननेवाले बैठे हुए वैशम्पायनजीको इस ही अर्थको पूछता भया ॥ १५ ॥

जनमेजयउवाच ।

**किं जपन्मुच्यते पापात्किं जपन्सुखमश्नुते ॥**
**दुःस्वप्ननाशनं पुण्यं श्रोतुमिच्छामि मानद ॥१६॥**

जनमेजय बोला—हे मानद ! ( मानदायी ) क्या जपता हुआ मनुष्य पापसे छूटता है और क्या जपता हुआ सुखको प्राप्त होता है मैं दुष्टस्वप्नफलको नष्ट करनेवाले पवित्र ( इतिहासको ) सुनना चाहता हूँ ॥ १६ ॥

वैशंपायन उवाच ।

**देवव्रतं महाप्राज्ञं सर्वशास्त्रविशारदम् ॥**
**विनयेनोपसंगम्य पर्यपृच्छद्युधिष्ठिरः ॥ १७ ॥**

वैशंपायनजी बोले—देवव्रत ! ( देवतोंके समान व्रतवाले ) महाप्राज्ञ

सर्वशास्त्रवेत्ता ऐसे भीष्मपितामहजीको विनयसे प्राप्त होके युधिष्ठिर पूछता भया ॥ १७ ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

**दुःस्वप्नदर्शनं घोरमवेक्ष्य भरतर्षभ ॥**
**प्रयतः किं जपेज्जाप्यं विबुधः किमनुस्मरेत् ॥ १८ ॥**

युधिष्ठिर बोला-हे भरतर्षभ ! पंडितजन घोर दुःस्वप्न देखके सावधान होके किस मन्त्रको जपै और क्या स्मरण करै ॥ १८ ॥

**कस्य कुर्यान्नमस्कारं प्रातरुत्थाय मानवः ॥**
**किं च ध्यायेत सततं कः पूज्यो वा भवेत्सदा ॥ १९ ॥**

मनुष्य प्रातःकाल उठके किसको नमस्कार करै निरंतर किसका ध्यान करै और सदा कौन पूज्य है ॥ १९ ॥

**पितामह प्रसादेन बुद्धिभेदो भवेन्न मे ॥**
**तदहं श्रोतुमिच्छामि ब्रूहि नो वदतां वर ॥ २० ॥**

हे भीष्मपितामहजी ! हे वदतांवर (कहनेवालोंमें श्रेष्ठ) ! आपके प्रसादसे जिससे मेरी बुद्धि भेद नहीं हो सो मैं तुमसे सुनना चाहता हूँ आप मेरे अर्थ कहो ॥ २० ॥

भीष्म उवाच ।

**शृणु राजन्महाबाहो वर्णयिष्ये हि शांतिदम् ॥**
**दुःस्वप्नदर्शने जाप्यं यद्वै नित्यं समाहितैः ॥ २१ ॥**

भीष्मजी बोले-हे राजन् ! हे महाबाहो ! जो दुःस्वप्न दर्शनमें सावधान हुए जनोंकरके जपनेयोग्य शांतिदायक (मंत्र) है तिसको सुनो ॥ २१ ॥

अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ॥
गजेंद्रमोक्षणं पुण्यं कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ २२ ॥

यह पुरातन गजेंद्रमोक्षनामक अर्थात् जिसमें संकटसे गजेंद्रका छुटाना ऐसे उत्तमकर्मवाले श्रीकृष्णके पवित्र इतिहासको कहते हैं ॥ २२ ॥

सर्वरत्नमयः श्रीमांस्त्रिकूटो नाम पर्वतः ॥
सुतः पर्वतराजस्य सुमेरोर्भास्करद्युतेः ॥ २३ ॥

संपूर्णरत्नोंसे संयुक्त हुआ श्रीमान् त्रिकूटनामक पर्वत होता भया वह सूर्यसमान कांतिवाले पर्वतराज सुमेरुका पुत्र भया॥२३॥

क्षीरोदजलवीच्यग्रैर्धौतामलशिलातलः ॥
उत्थितः सागरं भित्वा देवर्षिगणसेवितः ॥ २४ ॥

तहाँ क्षीरसागरके जलकी लहरियोंके अग्रभागकरके धुया हुआ स्वच्छ शिलातलोंवाला तथा देवर्षिगणोंसे सेवित हुआ वह पर्वत समुद्रको भेदन करके ऊपरको उठा हुआ है ॥ २४ ॥

अप्सरोभिः परिवृतः श्रीमान्प्रस्रवणाकुलः ॥
गंधर्वैः किन्नरैर्यक्षैः सिद्धचारणपन्नगैः ॥ २५ ॥

अप्सराओंकरके संयुक्त शोभावाला झिरनोंकरके संयुक्त गंधर्व, किन्नर, यक्ष, सिद्ध, चारण, पन्नग, दिव्यसर्प इन्हों करके ॥ २५ ॥

मृगैः शाखामृगैः सिंहैर्मातंगश्च सदामदैः ॥
वृकद्वीपिवराहाद्यैर्वृतगात्रो विराजते ॥ २६ ॥

और मृग, वानर, सिंह, मदोन्मत्तहस्ती, भेड़िया, गैंडा, शूर इत्यादिकों करके संयुक्त हुआ वह पर्वत विराजमान है ॥ २६ ॥

पुन्नागैः कर्णिकारैश्च सुबिल्वैर्दिव्यपाटलैः ॥
चूतनिंबकदंबैश्च चंदनागुरुचंपकैः ॥ २७ ॥

और पुन्नाग ( गुर्जरदेशमें उडीण संदेशरा बोलते है) तथा काठचंपा वृक्ष और सुंदर बेलपत्र, दिव्यपाटलवृक्ष, आंब,नींब, कदंब, चंदन,अगर, चंपावृक्ष ॥ २७ ॥

शालैस्तालैस्तमालैश्च तरुभिश्चार्जुनैस्तथा ॥
बकुलैः कुंदपुष्पैश्च सरलैर्देवदारुभिः ॥ २८ ॥

शालवृक्ष,ताड़वृक्ष, तमालवृक्षोंकरके तथा अर्जुन ( कोहवृक्ष ) वकुल और कुन्दपुष्प, सरलवृक्ष, देवदार इन्होंकरके ॥ २८ ॥

मंदारकुसुमैश्चान्यैः पारिजातैश्च सर्वतः ॥
एवं बहुविधैर्वृक्षैः शोभितः समलंकृतः ॥ २९ ॥

और मन्दार ( देववृक्ष ) के पुष्पोंकरके तथा कल्पवृक्षों करके संयुक्त है ऐसे बहुत प्रकारके वृक्षों करके सब तर्फसे शोभित और परिपूर्ण है ॥ २९ ॥

नानाधात्वंकितैः शृंगैः प्रस्रवद्भिः समंततः ॥
जीवंजीवकसंघुष्टं चकोरशिखिनादितम् ॥ ३० ॥

अनेकप्रकारकी धातुओंसे चिह्नित, तथा जलके झिरनोंवाले शिखरोंसे सब तर्फसे शोभित है जीवजीवक पक्षियोंकरके कूजित चकोर और मयूरोंकरके शब्दित है ॥ ३० ॥

पद्मरागसमप्रख्यं ज्वालापुंजमिवोत्थितम् ॥
तस्यैकं कांचनं शृंगं सेवते यद्दिवाकरः ॥ ३१ ॥

और पुखराजके समान कांतिवाला अग्निके समूहकी तरह उठा

हुआ ऐसा तिस पर्वतका शिखर सुवर्णका है जिसको सूर्य सेवता है ॥ ३१ ॥

नानापुष्पैः समाकीर्णं नानागंधैः समाकुलम् ॥
द्वितीयं राजतं शृंगं सेवते यन्निशाकरः ॥ ३२ ॥

अनेकप्रकारके पुष्पोंकरके और अनेक प्रकारकी सुगन्धियों करके संयुक्त है दूसरा शिखर चान्दीका है उसको चंद्रमा सेतवा है ॥ ३२ ॥

पांडुरांबुदसंकाशं तुषाराचलसन्निभम् ॥
वज्रेंद्रनीलवैडूर्यतेजोभिर्भासयन्नभः ॥ ३३ ॥

वह सफेद मेघ ( बादलके समान) कांतिवाला तथा बर्फके पर्वत समान कांतिवाला है और वज्र इन्द्रनीलमणि, वैडूर्यमणि, इन्होंके तेजोंकरके आकाशको काशित करता हुआ ॥ ३३ ॥

तृतीयं ब्रह्मसदनं प्रकृष्टं शृ सुत्तमम् ॥
अत्यद्भुतं महासानु विचित्रसरसद्रुमम् ॥ ३४ ॥

तीसरा शिखर ब्रह्माजीका स्थान और अत्यंत उत्तम है अत्यंत अद्भुत महान् सानु अर्थात् शिखरके समान भूमिवाला है तथा सरस उत्तम वृक्षोंवाला है ॥ ३४ ॥

विद्याधरपुरं तत्र हेमप्राकारतोरणम् ॥
तरुणादित्यसंकाशं तप्तकांचनसन्निभम् ॥ ३५ ॥

वहाँ सुवर्णकी खाही कोट और तोरणवाला विद्याधरोंका पुर है तेजयुक्त सूर्यसमान कांतिवाला और तपाया हुआ सुवर्णसमान कांतिवाला है ॥ ३५ ॥

बालस्फटिकसोपानं वैडूर्यसुशिलातलम् ॥
जांबूनदमहद्दिव्यं नाना रत्नोपशोभितम् ॥ ३६ ॥

उत्तममणियोंकी पैडी है वैडूर्यमणिकी शिला है अनेक रत्नोंसे शोभित महान् सुवर्ण है॥ ३६ ॥

अप्सरोगणसंकीर्णं सिद्धगंधर्वसेवितम्
पद्मरागसमप्रख्यं तारागणसमन्वितम् ॥ ३७ ॥

तहां वह अप्सराओंके गणसे संयुक्त और सिद्ध गंधर्वोंकरके सेवित है और पद्मरागमणिके समान है शोभा जिसकी और तारागणोंसे युक्त ॥ ३७ ॥

नैतत्कृतघ्नाः पश्यंति न नृशंसा न नास्तिकाः
नातप्ततपसो लोके ये च पापकृतो नराः ॥ ३८ ॥

ऐसे स्थानको कृतघ्न और हिंसा करनेवाले और नास्तिक तथा तपस्या न करनेवाले पापिष्ठ लोग नहीं देखते ॥ ३८ ॥

नानाराधितगोविंदाः शैलं पश्यंति ते नराः ॥
तस्य सानुमतः पृष्ठे सरः कांचनपंकजम् ॥ ३९ ॥

जिन्होंने गोविन्द भगवानकी आराधना नहीं कियाहो ऐसे मनुष्य इस पर्वतको नहीं देखते इस पर्वतके पृष्ठपर सुवर्ण कमलोंसे युक्त ॥ ३९ ॥

कारंडवसमाकीर्णं राजहंसोपशोभितम् ॥
मत्तभ्रमरसंघुष्टं चकोरशिखिनादितम् ॥ ४० ॥

और कारंडवपक्षियोंसे व्याप्त तथा हंसोंसे युक्त और मत्तभ्रमरोंसे सेवित तथा चकवा और मयूरोंके शब्दोंसे नादित ॥ ४० ॥

कमलोत्पलकह्लारपुंडरीकोपशोभितम् ॥
कुमुदैः शतपत्रैश्च काँचनैः समलंकृतम् ॥ ४१ ॥

और अनेक प्रकारके सूर्यविकासी और चन्द्रविकासी कमलों करके शोभायमान ऐसा मनोहर सरोवर था ॥ ४१ ॥

पत्रैर्मरकतप्रख्यैः पुष्पैः कांचनसन्निभैः ॥
गुल्मैः कीचकवेणूनां समंतात्परिवारितम् ॥ ४२ ॥

मरकत मणिके समान कांतिवाले पत्तोंसे युक्त तथा सुवर्णके समान वर्णवाले पुष्पोंसे युक्त और चारोंतर्फमें गुच्छे छिद्रोंवाले वाजते हुए बांस संकीर्ण हो रहे हैं ॥ ४२ ॥

अत्यद्भुतं महास्थानं विचित्रशिखराकुलम् ॥
शतयोजनविस्तीर्णं दशयोजनमायतम् ॥ ४३ ॥

तहां एक विचित्र शिखरोंकरके संयुक्त अत्यन्त अद्भुत महास्थान है सौ योजन ( ४०० कोश ) लंबा है दशयोजन ( ४० कोश ) चौडा है ॥ ४३ ॥

पंचयोजनमूर्द्धानं सर एतत्प्रमाणतः ॥
हिमखंडोदकं राजन्सुस्वादममृतोपमम् ॥ ४४ ॥

पांच योजन ऊँचा ऐसे प्रमाणका सरोवर है हे राजन्! तहाँ बर्फ गलनेका पानी अमृतके समान सुन्दर स्वादु है ॥ ४४ ॥

त्रैलोक्येऽदृष्टपूर्वं च यत्सरस्तदनुत्तमम् ॥
सुप्रसन्नं सरो दिव्यं देवानामपि दुर्लभम् ॥ ४५ ॥

ऐसा अत्युत्तम सरोवर पहले त्रिलोकीमें नहीं देखा गया है सुन्दर, स्वच्छ दिव्य यह सरोवर देवताओंको भी दुर्लभ है ॥ ४५ ॥

खातेन द्विगुणं प्रोक्तं शरद्द्यौरिव निर्मलम् ॥
उपहाराय देवानां सिद्धाद्यर्जितपंकजम् ॥ ४६ ॥

ऊँचाईसे दूना ढूंघा है शरद्ऋतुके आकाशकी तरह निर्मल है जिस सरोवरमें सिद्ध आदि लोग देवताओंकी पूजाके वास्ते कमलके पुष्पोंको संचित करते हैं ॥ ४६ ॥

तस्मिन्सरसि दुष्टात्मा विरूपोऽन्तर्जलाशयः ॥
आसीद् ग्राहो गजेंद्राणां दुराधर्षो महाबलः॥४७ ॥

तिस सरोवरमें दुष्टस्वभाववाला, विरूप, जलके भीतर रहनेवाला गजेंद्र ( हस्तियोंको ) दुराधर्ष ( नहीं सहने योग्य) महाबली ग्राह होता भया ॥ ४७ ॥

अथ दंतोज्ज्वलमुखः कदाचिद्गजयूथपः ॥
आजगाम तृषाऽऽक्रांतः करेणुपरिवारितः ॥ ४८ ॥

इससे अनन्तर किसी समयमें दांतों करके उज्ज्वल मुखवाला, तृषासे पीडित हुआ, हस्तिनियोंकरके संयुक्त हुआ हस्तिसमूहोंका पति ( एक हस्ती ) आताभया ॥ ४८ ॥

मदस्रावी जलाकांक्षी पादचारीव पर्वतः ॥
वासयन्मदगंधेन महानैरावतोपमः ॥ ४९ ॥

मद झिरानेवाला जलकी इच्छावाला मदकी सुगंधि फैलाता हुआ महान् ऐरावत हस्तीके समान, औरमानों पैरोंसे चलके पर्वत आया हो ऐसा विशाल ॥ ४९ ॥

गजो ह्यंजनसंकाशो मदाच्चलितलोचनः ॥
तृषितः पातुकामोऽसाववतीर्णो महाह्रदे ॥ ५० ॥

अञ्जनके समान कांतिवाला मदसे नेत्रोंको चलायमान करता हुआ ऐसा यह तिसाया हस्ती जल पीनेकी इच्छा करके तिस महान् सरोवरमें उतरा ॥ ५० ॥

पिबतस्तस्य तत्तोयं ग्राहः समुपपद्यते ॥
सुलीनः पंकजवने यूथमध्यगतः करी ॥ ५१ ॥

तिसका जल पीते हुए तिसको ग्राह प्राप्त होता भया फिर यूथ-( हस्तिसमूह ) के मध्यमें प्राप्त हुआ वह हस्ती कमलवनमें लीन भया, लुकनेलगा ॥ ५१ ॥

गृहीतस्तेन रौद्रेण ग्राहेणाऽव्यक्तमूर्त्तिना ॥
पश्यतीनां करेणूनां क्रोशंतीनां च दारुणम् ॥ ५२ ॥

तब उस भयंकर अप्रकट मूर्तिवाले ग्राहने हस्तिनियोंके देखते हुए और दारुण पुकारते हुए पकड़लिया ॥ ५२ ॥

नीयते पंकजवने ग्राहेणातिबलीयसा ॥
गजश्चाकर्षते तीरं ग्राहश्चाकर्षते जलम् ॥ ५३ ॥

अत्यन्त बलवाला ग्राह कमलवनमें खीचनेलगा हाथी तो किनारकी तर्फ खीचता है ग्राह जलमें खीचता है ॥ ५३ ॥

तयोरासीन्महद्युद्धं दिव्यवर्षसहस्रकम् ॥
दारुणैः संयुतः पाशैर्निष्प्रयत्नगतिः कृतः ॥ ५४ ॥

इसप्रकार तिन दोनोका महान् युद्ध दिव्य हजार वर्षोंतक होता भया दारुण फाँशियोंकरके संयुक्त किया हुआ हस्ती कुछ चेष्टा न करसके ऐसा करदिया ॥ ५४ ॥

वेष्टयमानः स घोरैस्तु पाशैर्नागो दृढैस्तथा ॥

विस्फूर्य च यथाशक्त्या विक्रोशंस्तु महारवान् ५५

घोर दृढ फांसियों करके बँधा हुआ वह हस्ती शक्तिके अनुसार चेष्टा स्फुरणा करके महान् चिक्कार मारताभया ॥ ५५ ॥

व्यथितः स निरुत्साहो गृहीतो घोरकर्मणा ॥
परमापदमापन्नो मनसाऽचिंतयद्धरिम् ॥५६ ॥

पीडित हुआ, उत्साह रहित हुआ, घोर कर्मवाले ग्राहसे पकडा हुआ; परम विपत्तिको प्राप्त हुआ हस्ती अपने मन करके हरि-भगवान्‌की शरण होता भया ॥ ५६ ॥

स तु नागवरः श्रीमान्नारायणपरायणः ॥
तमेव शरणं देवं गतः सर्वात्मना तदा ॥ ५७ ॥

तब वह श्रीमान् हस्तिवर नारायणको परम आश्रय करके सर्वात्मा करके तिस ही देवकी शरण प्राप्त भया ॥ ५७ ॥

एकाग्रो निगृहीतात्मा विशुद्धेनांतरात्मना ॥
जन्मजन्मांतराभ्यासाद्भक्तिमान्गरुडध्वजे ॥५८ ॥

विशुद्ध मन करके एकाग्र हो मनकी वृत्तियोंको वशमें कर जन्म२ के अभ्याससे गरुड़ध्वज भगवान्‌में भक्तिमान् होता भया ॥५८॥

नान्यं देवं महादेवात्पूजयामास केशवात् ॥
दिग्बाहुं स्वर्गमूर्द्धानं भूपादं गगनोदरम् ॥ ५९ ॥

महान् देव केशव भगवान्‌से अन्य किसी देवको नहीं पूजता भया दिशा बाहु, स्वर्ग मस्तक, भूमी पाद, आकाश उदर-वाले ॥ ५९ ॥

आदित्यचंद्रनयनमनंतं विश्वतोमुखम् ॥
भूतात्मानं च मेघाभं शंखचक्रगदाधरम् ॥ ६० ॥

सूर्य चंद्रमा नेत्रोंवाले अनन्त सब तर्फ मुखवाले भूतात्मा मेघसमान कांतिवाले शंख चक्र गदाधारी ॥ ६० ॥

सहस्रशुभनामानमादिदेवमजं विभुम् ॥
प्रगृह्य पुष्कराग्रेण कांचनं कमलोत्तमम् ॥ ६१ ॥

सुन्दर सहस्रनामवाले आदिदेव अजन्मा ऐश्वर्यवान् नारायणको पूजता भया कमलदंडीके अग्रभागसे उत्तम सुनहरा कमल पुष्पको ग्रहण करके ॥ ६१ ॥

नैवेद्यं मनसा ध्यात्वा पूजां कृत्वा जनार्दने ॥
आपद्विमोक्षमन्विच्छन्गजः स्तोत्रमुदीरयत् ॥ ६२ ॥

मनकरके नैवेद्यका ध्यान कर जनार्दन भगवान्विषे पूजाकरके विपत्तिसे छूटनेकी इच्छा करता हुआ हस्ती स्तोत्र कहता भया ॥ ६२ ॥

गजेन्द्र उवाच ।

नमो मूलप्रकृतये अजिताय महात्मने ॥
अनाश्रयाय देवाय निःस्पृहाय नमो नमः ॥ ६३ ॥

गजेंद्र बोला—मूलप्रकृतिस्वरूप अजित महात्माके अर्थ नमस्कार है अनाश्रयदेव अर्थात् किसीके आश्रय नहीं रहनेवाले निःस्पृह इच्छा रहितके अर्थ नमस्कार है ॥ ६३ ॥

नम आद्याय बीजाय आर्षेयाय महात्मने ॥
अनंतराय चैकाय अव्यक्ताय नमो नमः ॥ ६४ ॥

आद्य बीजस्वरूप, आर्षेय महात्मा अन्तर ( मध्य ) रहित, एक, अव्यक्त किसीप्रकार प्रकट न होनेवाले देवके अर्थ नमस्कार है नमस्कार है ॥ ६४ ॥

नमो गुह्याय गूढाय गुणाय गुणवर्तिने ॥
अतर्क्यायाप्रमेयाय अतुलाय नमो नमः ॥ ६५ ॥

गुह्य गूढस्वरूप,गुणस्वरूप,गुणोंमें वर्त्तनेवाले अतर्क्य ( किसी प्रकार विचार नहीं किये जावें) अप्रमेय (किसी प्रकार प्रमाण नहीं किये जावें) अतुल ऐसे नारायणको नमस्कार है नमस्कार है॥ ६५॥

नमः शिवाय शांताय निश्चिंताय यशस्विने ॥
सनातनाय पूर्वाय पुराणाय नमो नमः ॥ ६६ ॥

शिवस्वरूप शांतस्वरूप चिंतारहित यशस्वी सनातन पूर्व सबसे पहिले रहनेवाले पुराण पुरुषके अर्थ नमस्कार है नमस्कार है॥ ६६॥

नमो जगत्प्रतिष्ठाय गोविंदाय नमो नमः ॥
नमोऽस्तु पद्मनाभाय सांख्ययोगोद्भवाय च ॥६७॥

जगत्की स्थिति करनेवाले गोविंदके अर्थ नमस्कार है नमस्कार है पद्मनाभ और सांख्ययोग शास्त्रों करके जानने योग्यके अर्थ नमस्कार है ॥ ६७ ॥

विश्वेश्वराय देवाय शिवाय हरये नमः ॥
नमोऽस्तु तस्मै देवाय निर्गुणाय गुणात्मने ॥ ६८ ॥

विश्वेश्वर देव शिव हरिके अर्थ नमस्कार है निर्गुण और गुणात्मक तिस देवके अर्थ नमस्कार है ॥ ६८ ॥

नमो देवाधि देवाय स्वभावाय नमो नमः ॥
नारायणाय विश्वाय देवानां परमात्मने ॥ ६९ ॥

देवतोंके अधिपति देव आप ही उत्पन्न करनेवाले विश्वस्वरूप नारायणके अर्थ देवताओंके परमात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ६९॥

नमो नमः कारणवामनाय नारायणायामितविक्रमाय ॥ श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥ ७० ॥

कारणरूपी वामन सूक्ष्मके अर्थ नमस्कार है नारायण अतुल पराक्रमवाले श्रीशार्ङ्गधनुष, चक्र गदा धारण करनेवाले तिस पुरुषोत्तमदेवके अर्थ नमस्कार है ॥ ७० ॥

गुह्याय वेदनिलयाय महोदराय सिंहाय दैत्यनिध्नाय चतुर्भुजाय ॥ ब्रह्मेंद्ररुद्रमुनिचारणसंस्तुताय देवोत्तमाय वरदाय नमोऽच्युताय ॥ ७१ ॥

गुह्यस्वरूप वेदके स्थान महान् उदरवाले सिंहस्वरूप दैत्योंको नष्ट करनेवाले चतुर्भुजस्वरूपवाले ब्रह्मा, इंद्र, शिव, मुनि, चारण, इन्हों करके संस्तुत देवताओंमें उत्तम वरदायी अच्युत अर्थात् जिसका अपने स्थानसे पड़ना नहीं होताहै ऐसे देवके अर्थ नमस्कार है ॥ ७१ ॥

नागेंद्रदेहशयनासनसुप्रियाय गोक्षीरहेमशुकनीलघनोपमाय ॥ पीतांबराय मधुकैटभनाशनाय विश्वाय चारुमुकुटाय नमोऽक्षराय ॥ ७२ ॥

शेषनाग शय्यापर आसन करनेमें सुंदर हितवाले गौके दूधसमान सुवर्णसमान (कांतिवाले ) तोता और नील मेघके समान उपमावाले अर्थात् श्वेत,पीत,हरित, नील सब वर्णवाले पीतांबरधारी मधुकैटभ दैत्यको नष्टकरने वाले विश्वरूप सुंदरमुकुटवाले अक्षर ( क्षीणता आदि ) विकाररहितके अर्थ नमस्कार है ॥ ७२ ॥

नाभिप्रजातकमलस्थचतुर्मुखाय क्षीरोदकार्णव-

निकेतनशोभनाय ॥ नानाविचित्रमुकुटांगदभूष-
णाय योगीश्वराय पुरुषाय नमो वराय ॥ ७३ ॥

जिसकी नाभिसे उत्पन्न हुए कमलमें स्थित होनेवाले चतुर्मुख ब्रह्माजी होते हैं (ऐसे) क्षीरसागर स्थानमें शोभित होनेवाले अनेक प्रकारके विचित्र मुकुट और बाजूबंद आदि आभूषणोंवाले योगीश्वर पुरुप, उत्तम, श्रेष्ठ, भगवान्‌के अर्थ नमस्कार है ॥ ७३ ॥

भक्तिप्रियाय वरदीप्तसुदर्शनाय फुल्लारविंदविपु-
लायतलोचनाय ॥ देवेन्द्रविघ्नशमनोद्यतपौरुषाय
नारायणाय विरजाय नमोऽच्युताय ॥ ७४ ॥

भक्तिको प्रिय माननेवाले उत्तम कांतियुक्त सुदर्शनचक्रवाले फूले हुए कमलसमान विस्तृत नेत्रोंवाले देवेंद्रके विघ्नकी शांतिके वास्ते उद्यत होके पुरुषार्थ करनेवाले ( रागादि ) रजोगुणरहित नारायण अच्युत भगवान्‌के अर्थ नमस्कार है ॥ ७४ ॥

नारायणाय नरलोकपरायणाय कालाय कालक-
मलायतलोचनाय ॥ रामाय रावणविनाशकृतो-
द्यमाय धीराय धीर तिलकाय महोदराय ॥ ७५ ॥

नारायण नरलोकमें परायण कालस्वरूप कालरूपी कमलके समान नेत्रोंवाले रावणको विनाश करनेवाले रामचन्द्रजी धीरजवाले धीरजवालोंमें शिरोमणि महान् उदरवाले ऐसे भगवान्‌के अर्थ नमस्कार है ॥ ७५ ॥

पद्मासनाय मणिकुण्डलभूषणाय कंसांतकाय
शिशुपालविनाशनाय ॥ गोवर्धनाय मुरशत्रुनि-
कृंतनाय दामोदराय वरदाय नमो वराय ॥७६॥

कमलासनभगवान् और मणि कुण्डल आभूषणोंवाले, कंसको मारनेवाले शिशुपालका विनाश करनेवाले गोवर्द्धनरूप देवतोंके शत्रु ( दैत्यों ) को मारनेवाले दामोदर वर देनेवाले अत्यन्त श्रेष्ठ भगवान्के अर्थ नमस्कार है ॥ ७६ ॥

**ब्रह्मायनाय त्रिदशाधिपाय लोकायनायात्मभवोद्भवाय ॥ नारायणायार्तिविनाशनाय महावराहाय नमस्करोमि ॥ ७७ ॥**

ब्रह्माजीके निवासस्थान देवता और स्वर्गके पति लोकोंके निवासस्थान आप ही उत्पन्न होनेवाले नारायण पीडाको नाश करनेवाले महावराह अवतारधारी भगवान्के अर्थ मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ७७ ॥

**कूटस्थमव्यक्तमचिंत्यरूपं नारायणं कारणमादिदेवम् ॥ युगांतशेषं पुरुषं पुराणं तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥ ७८ ॥**

कूटस्थ ( परमात्मारूप ) अव्यक्त अचिंत्यरूप नारायण कारणस्वरूप आदिदेव प्रलयकालमें शेष रहनेवाले पुराणपुरुष तिस वासुदेवकी शरण हूँ ॥ ७८ ॥

**अदृश्यमच्छेद्यमनंतमव्ययं महर्षयो ब्रह्ममयं सनातनम् ॥ वदंति यं वै पुरुषं पुराणं तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥ ७९ ॥**

अदृश्य, अच्छेद्य, अनंत, अविनाशी जिसको महर्षिजन सनातन ब्रह्ममय पुराणपुरुष कहते हैं तिस वासुदेवकी शरण हूँ ॥७९॥

**उत्तिष्ठतस्तस्य जलार्द्रकुक्षेर्महावराहस्य महीं**

विदार्य ॥ वितन्वतो वेदमयं शरीरं लोकांतरस्था मुनयो वदंति ॥ ८० ॥

पृथ्वीको उपाडके जलके ऊपर आरूढ होनेकी इच्छावाले उठते हुए वराहजीको वेदमय शरीर लोकान्तरस्थ मुनिजन कहते हैं ॥ ८० ॥

योगेश्वरं चारुविचित्रमौलिं ज्ञेयं समक्षं प्रकृतेः परस्तात् ॥ क्षेत्रज्ञमात्मप्रभवं वरेण्यं तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥ ८१ ॥

योगीश्वर सुन्दर विचित्रमुकुटवाले प्रत्यक्ष प्रकृतिसे परे क्षेत्रज्ञ आप ही उत्पन्न वरेण्य (प्रधानपुरुष) तिस वासुदेवकी शरण हूँ॥ ८१॥

कार्यक्रियाकारणमप्रमेयं हिरण्यबाहुं वरपद्मनाभम् ॥ महाबलं वेदनिधिं सुरोत्तमं व्रजामि विष्णुं शरणं जनार्दनम् ॥ ८२ ॥

कार्य क्रिया कारण स्वरूप है अप्रमेय है सुवर्णवत् तेजवाली भुजावाले उत्तम पद्मनाभ महाबलवाले वेदनिधि देवतोंमें श्रेष्ठ जनार्दन अर्थात् शत्रुजनोंको नष्ट करनेवाले विष्णु भगवान्की शरण हूँ ॥ ८२ ॥

किरीटकेयूरमहार्हनिष्कैरत्यंतमालंकृतसर्वगात्रम् ॥ पीतांबरं कांचनभक्तिचित्रमालाधरं केशवमभ्युपैमि ॥ ८३ ॥

मुकुट बाजूबन्द उत्तम गलेका आभूपण इन्होंकरके विभूषित किया है संपूर्ण शरीर जिन्होंने ऐसे और पीतांबरधारी भक्तिसे विचित्रित सुवर्णकी मालाको धारण करनेवाले केशव भगवान्की शरण हूँ ॥ ८३ ॥

भवोद्भवं वेदविदां वरिष्ठमादित्यचन्द्राग्निवसुप्रभा-
वम् ॥ योगात्मकं सांख्यविदां वरिष्ठं प्रभुं प्रपद्ये-
ऽच्युतमात्मवन्तम् ॥ ८४ ॥

संसारको उत्पन्न करनेवाले वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वसु इन्होंसें तेजवृद्धि करनेवाले, योगात्मक सांख्यवेत्ता-ओंसें श्रेष्ठ प्रभु, अच्युत, आत्मवंत भगवान्‌की शरण हूं ॥ ८४॥

यदक्षरं ब्रह्म वदंति सर्वगं निशम्य यन्मृत्युमुखा-
त्प्रमुच्यते ॥ तमीश्वरं युक्तमनुत्तमैर्गुणैः सनातनं
लोकगुरुं स्मरामि ॥ ८५ ॥

जिसको अक्षर ( निर्विकार अविनाशी ) सर्वगत ब्रह्म कहते हैं और जिसको सुनके विचारके यह जीव मृत्युके मुखसे छूटजाता है, सर्वोत्तम गुणोंकरके युक्त हुए तिस ईश्वरको लोकके गुरुको मैं स्मरण करता हूँ ॥ ८५ ॥

श्रीवत्सांकं महादेवं वंदे गुह्यमनुत्तमम् ॥
प्रपद्ये सूक्ष्ममचलं वरेण्यमभयप्रदम् ॥ ८६ ॥

श्रीवत्सचिह्नवाले, महान् देव, गुह्य, अत्युत्तम, सूक्ष्म, अचल प्रधानपुरुष अभय देनेवाले भगवान्‌की शरण हूँ ॥ ८६ ॥

नमस्तस्मै वराहाय लीलयोद्धरते महीम् ॥
खुरमध्यगतो यस्य मेरुः खुरखुरायते ॥ ८७ ॥

जो अपनी लीला करके पृथ्वीको उठा लेता है और जिसके पैरमें ( खुरमें ) प्राप्त हुआ सुमेरु पर्वत खुर खुर होता है अर्थात् खुरमें अत्यंत सूक्ष्म लीन होजाता है तिस वराहजीके अर्थ नमस्कार है ॥ ८७ ॥

प्रभवं सर्वभूतानां निर्गुणं परमेश्वरम् ॥
प्रपद्ये मुक्तसंगानां यतीनां परमां गतिम् ॥ ८८ ॥

जो सब भूतोंको उत्पन्न करनेवाला निर्गुण परमेश्वर है और संग-रहित यतिजनोंकी परम गति है तिनकी शरण हूँ ॥ ८८ ॥

भगवंतं गुणाध्यक्षमक्षरं परमं पदम् ॥
शरण्यं शरणार्तानां प्रपद्ये भक्तवत्सलम् ॥ ८९ ॥

(भगवंत) ऐश्वर्यवाले गुणोंके अधिष्ठाता अक्षर परमपद शरणागतोंके रक्षक भक्तोंपर दया करनेवाले ऐसे भगवान्की शरण हूँ ॥ ८९ ॥

त्रिविक्रमं त्रिलोकेशं सर्वेषां प्रपितामहम् ॥
योगात्मानं महात्मानं प्रपद्येऽहं जनार्दनम् ॥ ९० ॥

त्रिविक्रम (तीनों लोकोंमें वा त्रिगुणोंमें जिसका पादविक्षेप प्रचार) है ऐसे त्रिलोकीके स्वामी सबके प्रपितामह (बडेदादे) योगात्मा महात्मा ऐसे जनार्दन भगवान्की मैं शरण हूँ ॥ ९० ॥

आदिदेवमजं विष्णुं व्यक्ताव्यक्तं सनातनम् ॥
नारायणमणीयांसं प्रपद्ये ब्राह्मणप्रियम् ॥ ९१ ॥

आदिदेव अजन्मा विष्णुकहिये सबलोकोंमें व्याप्त होके रहने-वाले व्यक्त अर्थात् अवतार आदिकों करके प्रगट अव्यक्त कहिये इंद्रियोंकरके अग्राह्य सनातन नारायण अत्यंत सूक्ष्म ब्राह्मणोंके प्रिय ऐसे ईश्वरकी शरण हूँ॥ ॥ ९१ ॥

अकूपाराय देवाय,नमः सर्वमहात्मने ॥
प्रपद्ये देवदेवेशमणीयांसमणोर्यथा ॥ ९२ ॥

समुद्रस्वरूप देवके अर्थ, सर्व महात्माके अर्थ नमस्कार है। देवदेवेश सूक्ष्मोंसे भी अत्यंत सूक्ष्म ऐसे प्रभुकी शरण हूँ ॥ ९२ ॥

लोकत्रयाय चैकाय परतः परमात्मने ॥
नमः सर्वत्रशिरसे अनंताय महात्मने ॥ ९३ ॥

त्रिलोकीस्वरूप एक परम परमात्माके अर्थ नमस्कार है सब जगह शिरोंवाले अनंत महात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ९३ ॥

तमेवं परमं देवमृषयो वेदपारगाः ॥
कीर्त्तयंति च यं सर्वे ब्रह्मादीनां परायणम् ॥ ९४ ॥

जो ब्रह्मादिकोंका परम निवासस्थान है तिसही परमदेवको वेद-पारगामी सब ही ऋषि कीर्तन करते हैं ॥ ९४ ॥

नमस्ते पुंडरीकाक्ष भक्तानामभयंकर ॥
सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु त्राहि मां शरणागतम् ॥ ९५ ॥

हे पुंडरीकाक्ष ! हे भक्तोंको अभय करनेवाले हे सुब्रह्मण्यदेव ! तुम्हारे अर्थ नमस्कार है शरणागत हुए मेरी रक्षा करो ॥ ९५ ॥

तावद्भवति मे दुःखं चितासंसारसागरे ॥
यावत्कमलपत्राक्षं न स्मरामि जनार्दनम् ॥ ९६ ॥

चितायुक्त संसारसागरमें मेरेको तबतक दुःख होता है कि, जबतक कमलके पत्रसमान नेत्रोंवाले जनार्दन भगवान्को स्मरण नहीं करता हूँ ॥ ९६ ॥

भीष्म उवाच ।

भक्तिं तस्य तु संचिंत्य नागस्यामोघसंस्तवम् ॥
प्रीतिमानभवद्राजञ्छ्रुत्वा चक्रगदाधरः ॥ ९७ ॥

भीष्मपितामहजी कहते हैं हे राजन्! तिस हस्तिके अमोघ स्तोत्रको और भक्तिको चिंतवन करके चक्र और गदाधारी विष्णुभगवान् प्रसन्न होते भये ॥ ९७॥

**आरुह्य गरुडं विष्णुराजगाम सुरोत्तमः ॥**
**सान्निध्यं कल्पयामास तस्मिन्सरसि लोकधृक्॥९८**

लोकको धारण करनेवाले देवोत्तम विष्णुभगवान् गरुड़पर चढ़के तिस सरोवरके समीप प्राप्त होते भये ॥ ९८ ॥

**ग्राहग्रस्तं गजेन्द्रं च तं ग्राहं च जलाशयात् ॥**
**उज्जहाराप्रमेयात्मा तरसा मधुसूदनः ॥ ९९॥**

अतुल शरीरवाले मधुसूदन भगवान् ग्राहसे पकडेहुए हस्तीको और तिस ग्राहको उस सरोवरसे बाहर निकालते भये ॥९९ ॥

**जलस्थं दारयामास ग्राहं चक्रेण माधवः ॥**
**मोचयामास नागेन्द्रं पापेभ्यः शरणागतम् ॥ १००॥**

माधवभगवान् जलमें स्थित हुए ग्राहको अपने सुदर्शनचक्रसे काटते भये और शरणागत हुए नागेन्द्रको पापोंसे छुटाते भये ॥ १०० ॥

**स हि देवलशापेन हूहूर्गंधर्वसत्तमः ॥**
**ग्राहत्वमगमत्कृष्णाद्वधं प्राप्य दिवं गतः ॥**
**इदमप्यपरं गुह्यं राजन् पुण्यतमं शृणु ॥ १ ॥**

वह उत्तम हूहूनामक गंधर्व पहले देवलऋषिके शापसे ग्राह होगया था सो श्रीकृष्णसे मृत्युको प्राप्त होके स्वर्ग पहुँचा, हे राजन्! यह और भी अत्यंत पवित्र गुह्य सुनो ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच।

कथं शापोद्भवं नाम गंधर्वाणां महात्मनाम् ॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण पितामह ॥ २ ॥

युधिष्ठिर बोले—हे पितामहजी ! महात्मा गंधर्वोंको कैसे शाप होता भया यह मैं विस्तारसे सुनना चहता हूँ ॥ २ ॥

भीष्म उवाच।

हाहा हूहूरिति ख्यातौ गीतवाद्यविशारदौ ॥
इति तौ शापितौ तेन देवलेन महात्मना ॥ ३ ॥

भीष्मजी कहने लगे—हाहा हूहू ऐसे प्रसिद्ध गंधर्व गाने बजानेमें निपुण भये इन दोनोंको महात्मा देवलऋषि शाप देता भया ॥ ३ ॥

उर्वशी मेनका रंभा तथा चान्येऽप्सरोगणाः ॥
शक्रस्य पुरतो राजन्नृत्यंते ताः सुमध्यमाः ॥ ४ ॥

हे राजन् ! उर्वशी मेनका रंभा ये तथा अन्य बहुतसी उत्तम अप्सरा होती भई वे सब इंद्रके आगे नाँचती थीं ॥ ४ ॥

ततस्तौ गायमानौ तु गंधर्वौ राजसद्मनि ॥
अन्योन्यं चक्रतुः स्पर्धा शक्रस्य पुरतस्तदा ॥ ५ ॥

फिर वे दोनों गंधर्व राजसभामें तहाँ इंद्रके आगे गाते हुए आपसमें स्पर्द्धा ( ईर्षा ) करते भये ॥ ५ ॥

आवयोरुभयोर्मध्ये कः श्रेष्ठो गीतवाद्ययोः ॥
तं वदस्व सुरश्रेष्ठ ज्ञात्वा गीतस्य लक्षणम् ॥ ६ ॥

कि,हमारे दोनोंमें कौनसा गाने बजानेमें श्रेष्ठ है। हे इंद्र ! इस बातको गीतके लक्षणको विचारके आप कहो ॥ ६ ॥

गंधर्वयोर्वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच शतक्रतुः ॥
युवयोर्गीतवाद्येषु विशेषो नोपलक्ष्यते ॥ ७ ॥

गंधर्वोंके वचनको सुनके इंद्र प्रतिवचन बोला कि, तुम्हारे गाने बजानेमें कुछ विशेष हमको नहीं दीखता ॥ ७ ॥

एक एव मुनिश्रेष्ठो देवलो नाम नामतः ॥
युवयोः संशयच्छेत्ता भविष्यति न संशयः ॥ ८ ॥

किंतु एक देवल नामसे प्रसिद्ध मुनिश्रेष्ठ है वह तुम्हारे संदेहको दूर करेगा इसमें संदेह नहीं ॥ ८ ॥

ततस्तु तौ शक्रवचो निशम्य प्रणम्य राजञ्छिरसा सुरेश्वरम् ॥ गतौ सुहृष्टौ जयकांक्षिणौ तौ यत्राश्रमे तिष्ठति स द्विजाग्र्यः ॥ ९ ॥

हे राजन् ! पीछे वे दोनों इंद्रके वचनको सुनके शिर करके प्रणाम कर जयकी ( जीतनेकी ) इच्छावाले दोनों प्रसन्न हुए जहाँ वह ऋषि था उस आश्रममें जाते भये ॥ ९ ॥

ततो दृष्ट्वा मुनिश्रेष्ठं देवलं शंसितव्रतम् ॥
अभिवाद्य महात्मानं प्रोचतुः पार्श्वसंस्थितौ ॥ १० ॥

फिर तीव्र व्रतवाले मुनिश्रेष्ठ देवलको देख तिस महात्माको विधिपूर्वक प्रणाम कर बराबरमें स्थित होके बोलते भये ॥ १० ॥

शक्रेण प्रेषितौ देव त्वत्समीपे द्विजोत्तम ॥
एकस्य च जयं देहि यत्ते मनसि रोचते ॥ ११ ॥

हे द्विजोत्तम ! हमदोनोंको तुम्हारे पास इंद्रने भेजे हैं सो जो नसा तुम्हारे मनमें रुचै उस एकको जय दो ॥ ११ ॥

पृथक् चरंतौ गायंतौ रुचिरं मधुरस्वरम् ॥
न किंचिद्वदते वाक्यं मुनिर्मौनस्य धारणात् ॥१२॥

ऐसे कहके अलग २ विचरते हुए सुंदर मधुरस्वरमें गाते भये तब मौनधारण होनेसे मुनि कुछ नहीं बोले ॥ १२ ॥

शृण्वन्नपि पदं तेषां न किंचिद्वदते मुनिः ॥
तदा तौ कुपितौ तस्य देवलस्य महात्मनः ॥१३॥

तिन्होंके पदको सुनतेहुए भी मुनि कुछ नहीं कहते हैं तब वे दोनों देवल महात्मापर क्रोधी होते भये ॥ १३ ॥

ऊचतुस्तौ तदा वाक्यं गंधर्वौ कालनोदितौ ॥
मूढोऽयं नाभिजानाति निश्चयं वाद्यगीतयोः ॥१४॥

कालसे प्रेरे हुए गंधर्व बोले कि, यह मूर्ख है गाने बजानेके सिद्धांतको नहीं जानता ॥ १४ ॥

निशम्यैतद्वचस्तेषां गंधर्वाणां मदान्वितम् ॥
क्रोधादुत्थाय विप्रेन्द्र इदं वचनमब्रवीत् ॥ १५ ॥

गंधर्वोंका ऐसा मदका वचन सुनके वह मुनि क्रोधसे उठके यह वचन बोला ॥ १५ ॥

एष हूहूर्दुरात्मा तु ग्राहत्वं यातु मूढधीः ॥
त्वमेव गजराजस्तु भवस्व गिरिगह्वरे ॥ १६ ॥

यह हूहू दुष्टात्मा तो ग्राह बनो तू मूर्ख गह्वर पर्वतमें हस्ती हो ॥ १६ ॥

ततस्तौ शापितौ तेन देवलेन महात्मना ॥
प्रणम्य शिरसा विप्रं गंधर्वाविदमूचतुः ॥ १७ ॥

तब वे दोनों देवल महात्माकरके शापको प्राप्त हुए पीछे तिस मुनिको प्रणाम करके यह बोले ॥ १७ ॥

भूमंडलगतौ ह्यावां प्रसादं कुरु सत्तमं ॥
निश्चयं वद विप्रेन्द्र येन शापाद्विमुच्यतः ॥ १८ ॥

हे विप्रेन्द्र ! पृथ्वीलोकपर गये हुए हमपर दया करो, हे मुनिश्रेष्ठ ! जिससे हम शापसे छूटै ऐसा कोई निश्चय कहो ॥ १८ ॥

ततस्तौ पुरतो दृष्ट्वा उभौ शापभयार्दितौ ॥
प्रत्युवाच मुनिश्रेष्ठो गंधर्वौ तौ भयान्वितौ ॥१९॥

फिर शापके भयसे पीड़ित हुए आगे खड़ हुए उन दोनोंको देखके भक्तियुक्त गंधर्वोंको मुनिश्रेष्ठ बोलता भया ॥ १९ ॥

मेरुपृष्ठे सरो रम्यं बहुवृक्षसमाकुलम् ॥
नानापक्षिनिनादाढ्यं द्वितीय इव सागरः ॥ २० ॥

सुमेरुपर्वतकी शिखरपर रमणीक बहुत वृक्षों से संयुक्त अनेक पक्षियोंके शब्दसे युक्त मानों दूसरा सागर हो ऐसा एक सरोवर है ॥ २० ॥

तस्मिन्सरोवरे रम्ये नित्यं ग्राहो भविष्यसि ॥
तृषार्तस्तत्र मातंगो गमिष्यति न संशयः ॥ २१ ॥

तिस रमणीक सरोवर विषे तू नित्य ग्राह होगा तहां तृषासे पीड़ित (तिसाया) हस्ती जावेगा इसमें सन्देह नहीं ॥ २१ ॥

तयोर्मध्ये महद्युद्धं भविष्यति सुदारुणम् ॥
ग्राहेणाकृष्यमाणस्तु गजः स्तोत्रं करिष्यति ॥२२॥

तब तिनका महान् घोर युद्ध होगा फिर ग्राहसे जलमें खींचा हुआ हस्ती स्तुति करेगा ॥ २२ ॥

तदैव देवदेवेशस्तुष्यते नात्र संशयः ॥
ततो नारायणः प्रीतः शापतो मोचयिष्यति ॥२३॥
उसी समय देवदेवेश भगवान् प्रसन्न होंगे इसमें सन्देह नहीं तब प्रसन्न हुए नारायण शापसे छुटावेंगे ॥ २३ ॥
इत्युक्ताऋषिणा तेन वरेणैतौ प्रमोदितौ ॥

भीष्म उवाच ।

एवं परावार्तभूतौ श्रुत्वासीद्भगवानिह ॥ २४ ॥
ऋषिने ऐसे कहके तिस वरकरके प्रसन्न करदिये-भीष्मजी कहते हैं-ऐसे परम पीडित इन्होंको सुनके विष्णु भगवान् यहां आते भये ॥ २४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

क्रोधोऽपि वरतुल्योऽयमापदं तं प्रयच्छतु ॥
आपद्विमुक्तौ युगपद्गजो गंधर्व एव च ॥ २५ ॥
श्रीभगवान् कहते हैं-यह क्रोध भी वरके समान है तिस विपत्तिको करो विपत्तिसे छूटते समय हस्ती और गंधर्व ( ग्राहरूपी ) ये दोनो गंधर्व ही होते भये ॥ २५ ॥
गजोऽपि मुक्ततां यातः श्रीकृष्णेन विमोक्षितः ॥
तस्माच्छापाद्विनिर्मुक्तः प्रागिवाविकृतोऽभवत् ॥ २६॥
हस्ती भी मुक्तिको प्राप्त भया है श्रीकृष्णचन्द्रने विमोक्ष किये तब तिस पापसे छूटके पहलेकी तरह विकाररहित होता भया ॥ २६ ॥
तौ च स्वं स्वं वपुः प्राप्य प्रणिपत्य जनार्दनम् ॥
गजो गंधर्वराजश्च परां निर्वृतिमागतौ ॥ २७ ॥

वे दोनों गज, ग्राह अपने२ रूपको प्राप्त होके जनार्दन भगवान्‌को प्रणाम कर गज और गंधर्वराज दोनों परम आनन्दको प्राप्त होते भये ॥ २७ ॥

प्रीतिमान्पुंडरीकाक्षः शरणागतवत्सलः ॥
अभवत्तत्र देवेशस्ताभ्यां चैव प्रपूजितः ॥ २८ ॥

शरणागत जनोंपर दया करनेवाले पुंडरीकाक्ष भगवान् प्रसन्न होते भये और देवेश विष्णु भगवान् वहाँ तिन दोनों करके पूजित होते भये ॥ २८ ॥

इदं चैव महाबाहो देवस्य च प्रभाषितम् ॥
भजंतं गजराजानमवदन्मधुसूदनः ॥ २९ ॥

हे महाबाहो ! स्तुति करते हुए हस्तीराजको मधुसूदन भगवान् कहते भये तहाँ विष्णुदेवका कहा हुआ यह वचन है ॥ २९ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

यो मां वां च सरश्चैव ग्राहस्य च विदारणम् ॥
गुल्मकीचकवेणूनां तं च शैलवरं तथा ॥ ३० ॥

श्रीभगवान् बोले-जो पुरुष मुझको तुम दोनोंको सरोवरको ग्राहके मारनेको और गुच्छेवायुसे बाजते हुए बाँसोंके झुंडोंको और तिस उत्तम पर्वत को स्मरण करेगा ॥ ३० ॥

अश्वत्थं भास्करं गंगां नैमिषारण्यपुष्करम् ॥
प्रयागं ब्रह्मतीर्थं च दण्डकारण्यमेव च ॥ ३१ ॥

और पीपलवृक्ष, सूर्य अथवा भास्कर तीर्थ गंगाजी नैमिषारण्य पुष्करजी प्रयाग ब्रह्मतीर्थ दण्डकारण्य ॥ ३१ ॥

पुराणं रामचरितं भारताख्यानमुत्तमम् ॥
विभूतिं विश्वरूपं च स्तवराजमनुस्मृतिम् ॥ ३२ ॥

पुराण, रामचरित्र, महाभारतके इतिहास, विभूति, विश्वरूप, भीष्मस्तवराज, अनुस्मृति ॥ ३२ ॥

प्रणवं च कुरुक्षेत्रं गरुडं मेरुपर्वतम् ॥
रूपं कांचनगुल्मानां रूपं मेरोः सुतस्य च ॥ ३३॥

ॐकार, कुरुक्षेत्र, गरुड, सुमेरु पर्वत, सुवर्णके गुच्छोंका रूप सुमेरु पर्वतके पुत्र (त्रिकूटका) रूप ॥ ३३ ॥

ये स्मरिष्यंति मनुजाः प्रयताः स्थिरबुद्धयः ॥
दुःस्वप्नो नश्यते तेषां सुस्वप्नश्च भविष्यति ॥ ३४ ॥

इन सबोंको जो स्थिर बुद्धिवाले जितेंद्रिय पुरुष स्मरण करेंगे उन्होंका दुःस्वप्न (बुरा सुपना) नाश होगा और सुंदर स्वप्न फल होगा ॥ ३४ ॥

अनिरुद्धं गजं ग्राहं वासुदेवं महाद्युतिम् ॥
संकर्षणं महात्मानं प्रद्युम्नं च तथैव च ॥ ३५ ॥

अनिरुद्ध, गज, ग्राह, महाकांतिवाले वासुदेव (श्रीकृष्ण) महात्मा बलदेवजी, प्रद्युम्न ॥ ३५ ॥

मत्स्यं कूर्मं च वाराहं वामनं तार्क्ष्यमेव च ॥
नारसिंहं च नागेंद्रं सृष्टिसंहारकारकम् ॥ ३६ ॥

मत्स्य, कूर्म, वाराह, वामन, गरुड़, नृसिंह, सृष्टिसंहार करनेवाले नागेन्द्र ॥ ३६ ॥

विश्वरूपं हृषीकेशं गोविंदं मधुसूदनम् ॥

त्रिदशैर्वंदितं देवं दृढभक्तिमनूपमम् ॥ ३७ ॥

विश्वरूप, हृषीकेश, गोविन्द और देवताओंसे वंदित दृढ भक्तिवाले अत्युत्तम मधुसूदन देव ॥ ३७ ॥

वैकुण्ठं दुष्टदमनं भक्तिदं मधुसूदनम् ॥
एतानि प्रातरुत्थाय संस्मरिष्यंति ये नराः ॥ ३८ ॥

वैकुंठ, भक्तिदायी मधुसूदन, इन्होंको जो मनुष्य प्रातःकाल उठके स्मरण करेंगे ॥ ३८ ॥

सर्वपापैः प्रमुच्यंते स्वर्गलोकमवाप्नुयुः ॥

भीष्म उवाच ।

एवमुक्त्वा महाराज गजेन्द्रं मधुसूदनः ॥ ३९ ॥

वे सब पापोंसे छूटते हैं और स्वर्ग लोकमें प्राप्त होते हैं भीष्मजी कहते हैं हे महाराज ! मधुसूदन भगवान् गजेंद्र ( हस्ती ) को ऐसे कहके ॥ ३९ ॥

स्पर्शयामास हस्तेन गजं गन्धर्वमेव च ॥
तौं च स्पृष्टौ ततः सद्यो माल्यांबरधरावुभौ ॥४० ॥

अपने हाथसे हस्तीको और गंधर्वको स्पर्श करते भये फिर-स्पर्श किये हुए वे दोनों शीघ्र ही उत्तम माला और वस्त्रोंको धारण करनेवाले ( गन्धर्व होके ) ॥ ४० ॥

तमेव मनसा प्राप्य जग्मतुस्त्रिदशालयम् ॥
ततो दिव्यवपुर्भूत्वा हस्तिराट् परमं पदम् ॥ ४१ ॥

तिस भगवान्को मन करके प्राप्त होके स्वर्गलोकमें प्राप्त होते भये फिर वह हस्तिराज दिव्य शरीर धारण करके परम पदको ॥ ४१ ॥

गच्छति स्म महाबाहो नारायणपरायणौ ॥
ततो नारायणः श्रीमान्मोक्षयित्वा गजोत्तमम्॥४२॥

प्राप्त होता भया हे महाबाहो ! ये दोनों नारायणमें परायण होतेभये तब श्रीमान् नारायण गजोत्तमको छुडाके ॥ ४२ ॥

ऋषिभिः स्तूयमानोऽग्र्यैर्वेदगुह्यपदाक्षरैः ॥
ततस्तु भगवान्विष्णुर्दुर्विज्ञेयगतिः प्रभुः ॥ ४३ ॥

ऋषिलोगों करके बहुत उत्तम वेदके गुह्य पदाक्षरों करके स्तुत होते भये फिर दुर्विज्ञेय गतिवाले विष्णु भगवान् ॥ ४३ ॥

शंखचक्रगदापाणिरंतर्धानं युधिष्ठिरः ॥
गजेंद्रमोक्षणं दृष्ट्वा सर्वे प्रांजलयस्तदा ॥ ४४ ॥

शंख, चक्र, गदा इनको हाथमें धारण किये हुए ही अंतरधान होगये । हे युधिष्ठिर ! तब सब ( ऋषिलोग ) गजेंद्रकी मोक्षको देख हाथ जोड़के ॥ ४४ ॥

ववंदिरे महात्मानं प्रभुं नारायणं परम् ॥
विस्मयोत्फुल्लनयनाः प्रजापतिपुरःसराः ॥ ४५ ॥

महात्मा प्रभु परम नारायणको प्रणाम करते भये ब्रह्मा आदि सब देवता, आश्चर्यकरके खिले नेत्रोंवाले होगये ॥ ४५ ॥

य इदं शृणुयान्नित्यं प्रातरुत्थाय मानवः ॥
प्राप्नुयात्परमां सिद्धिं दुःस्वप्नस्तस्य नश्यति॥४६॥

जो मनुष्य नित्य प्रातःकाल उठके इस स्तोत्रको सुनता है वह परम सिद्धिको प्राप्त होवे और तिसका बुरा स्वपना नष्ट होवे ॥४६॥

**गजेन्द्रमोक्षणं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥**
**श्रावयेत्प्रातरुत्थाय दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥ ४७ ॥**

यह गजेंद्रमोक्ष पवित्र है सब पापोंको नष्ट करनेवाला है जो प्रातःकाल उठके इसको सुनावे वह दीर्घ (बड़ी) आयु-वाला हो ॥ ४७ ॥

**श्रुतेन हि कुरुश्रेष्ठ स्तुतेन कथितेन च ॥**
**गजेन्द्रमोक्षणेनैव सद्यः पापात्प्रमुच्यते ॥ ४८ ॥**

हे कुरुश्रेष्ठ ! गजेन्द्रमोक्षके सुननेसे स्तुति करनेसे कहनेसे शीघ्र ही पाप दूर होते हैं ॥ ४८ ॥

**मया ते कथितं राजन्पवित्रं पापनाशनम् ॥**
**कीर्तयस्व महाबाहो गजेन्द्रस्य महात्मनः ॥ ४९ ॥**

हे राजन् ! पवित्र पापनाशक स्तोत्र मैंने तेरे आगे कहा, हे महाबाहो ! महात्मा गजेंद्रके स्तोत्रको कीर्तन करो ॥ ४९ ॥

**चरितं पुण्यकर्माणि पुष्कलं वर्द्धते यशः ॥**
**प्रीतिमान्पुण्डरीकाक्षो गजं दुःखात्प्रमुक्तवान् ॥५०॥**

यह चरित्र पवित्र कर्म है और बहुतसा यश बढता है ऐसे प्रीतिमान् हुए पुंडरीकाक्ष भगवान् गजको दुःखसे छुटाते भये ॥ ५० ॥

वैशंपायन उवाच ।

**एतच्छ्रुत्वा महाबाहो भारतानां पितामहात् ॥**
**गजेन्द्रमोक्षणं राजा कुंतीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ५१ ॥**

वैशंपायनजी कहते हैं-हे महाबाहो ! (जनमेजय) कुंतीका पुत्र राजा युधिष्ठिर भीष्मपितामहजीसे इस गजेन्द्रमोक्षको सुनके॥५१॥

भ्रातृभिः सहितः सम्यग्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥
पूजयामास देवेशं पार्श्वस्थं मधुसूदनम् ॥ ५२ ॥

सब भाइयोंसहित होके वेदके पारगामी ब्राह्मणों करके( युक्त हो) समीपमें स्थित हुए श्रीकृष्णभगवान्को पूजता भया ॥ ५२ ॥

विस्मयोत्फुल्लनयनाः श्रुत्वा नागस्य मोक्षणम् ॥
ऋषयस्तु महाभागाः सर्वे प्रांजलयस्तदा ॥ ५३ ॥

सब महाभाग ऋषिजन गजेन्द्रमोक्षको सुन आश्चर्यसे प्रफुल्लित नेत्रोंवाले होके हाथ जोड़के ॥ ५३ ॥

अजं वरेण्यं वरपद्मनाभं महाबलं वेदनिधिं सुरोत्तमम्
तं वेदगुह्यं पुरुषं पुराणं ववंदिरे वेदविदां वरिष्ठम् ५४॥

अजन्मा, प्रधानपुरुष, उत्तम कमल है नाभिमें जिसके ऐसे महाबली वेदनिधि सुरोत्तम तिस वेदगुह्य( वेदमें गुप्त हुए ) वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ पुराणपुरुषको प्रणाम करते भये ॥ ॥ ५४ ॥

एतत्पुण्यं महाबाहो जनानां पुण्यकर्मणाम् ॥
दुःस्वप्नदर्शने घोरे श्रुत्वा पापात्प्रमुच्यते ॥ ५५ ॥

हे महाबाहो ! पवित्र कर्मवाले जनों को यह पुण्य पवित्र है (मनुष्य ) घोर दुःस्वप्नविषे इसको सुनके पापोंसे छूटता है॥५५॥

तस्मात्त्वं हि महाराज प्रपद्य शरणं हरिम् ॥
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः प्राप्स्यसे परमं पदम् ॥ ५६ ॥

हे महाराज ! इसलिये तुम भी हरिकी शरण हो फिर सब पापोंसे छूटके परम पदको प्राप्त होगे ॥ ५६ ॥

यदा महाग्राहगृहीतकातरं सुपुष्पिते पद्मवने महाद्विपम् ॥ विमोक्षयामास गजं जनार्दनः स्मरामि दुःस्वप्नविनाशनं हरिम् ॥ ५७ ॥

जब महाग्राहसे पकड़ेहुए डरते हुए महान् हस्तीको खिले हुए कमलवनमें जनार्दन भगवान् छुटाते भये (तिस समयके रूपवाले) दुःस्वप्नको नष्ट करनेवाले हरिको मैं स्मरण करता हूँ ॥ ५७ ॥

परं पुराणं परमं पवित्रं पुराणमीशं सुरलोकनाथम् ॥ सुरासुरैरर्चितपादपद्मं सनातनं लोकगुरुं स्मरामि ॥५८॥

परम पुराण परम पवित्र पुराण ईश, देवलोकके स्वमी देवता और दैत्योंकरके पूजित चरणारविंदवाले सनातन लोकके गुरुको मैं स्मरण करता हूँ ॥ ५८ ॥

वरगजशरणाद्विमुक्तिहेतुं पुरुषवरस्तुतदिव्यदेहगीतम् ॥ सततमभिपठंति ये तु तेषां सुमरणमंतिककिल्बिषापहं स्यात् ॥ ५९ ॥

उत्तम हस्तीकी रक्षाके विमुक्तिहेतु पुरुषोत्तमकी स्तुति और दिव्य देहका गीत (ऐसें गजेंद्रमोक्ष स्तोत्रको) जो निरंतर पढते हैं तिन्होंके मरणसमयपर्यंतके संपूर्ण पाप नष्ट होते हैं ॥ ५९ ॥

धर्मदृढबद्धमूलो वेदस्कंधः पुराणशाखाढ्यः ॥ ऋतुकुसुमो मोक्षफलो मधुसूदनपादपो जयति ॥६०॥

धर्मरूप दृढ बँधे मूलवाले वेदस्कंधवाले पुराणरूपी शाखायुक्त, यज्ञरूपी पुष्पोंवाले मोक्षरूप फलवाले वृक्षरूप मधुसूदन भगवान्‌की जय हो ॥ ६० ॥

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ॥
जगद्धिताय कृष्णाय गोविंदाय नमो नमः ॥ ६१ ॥

ब्रह्मण्यदेवके अर्थ नमस्कार है गौ और ब्रह्मणोंके हितदायी जगत्के हितदायी श्रीकृष्ण गोविंदके अर्थ नमस्कार है ॥६१ ॥

आर्ता विषण्णाः शिथिलाश्च भीता घोरेषु च व्याधिषु वर्तमानाः ॥ संकीर्त्य नारायणशब्दमात्रं विमुक्तदुःखाः सुखिनो भवंति ॥ ६२ ॥

पीडित, दुःखित, शिथिल, भयभीत घोर बीमार ( रोगी ) ऐसे जन "नारायण" ऐसे शब्दमात्रको कहके दुःखरहित होके सुखी हो जाते हैं ॥ ६२ ॥

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा ॥
आदौ मध्ये तथा चांते हरिः सर्वत्र गीयते ॥ ६३ ॥

वेद, रामायण, पुराण, महाभारत इन सबोंमें आदि मध्य अन्तमें सब जगह हरि गाये जाते हैं ॥ ६३ ॥

एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो दशाश्वमेधाऽवभृथेन तुल्यः ॥ दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय ॥ ६४ ॥

श्रीकृष्णके अर्थ किया हुआ एक भी प्रणाम दश अश्वमेध यज्ञोंके अवभृथस्नानके समान होता है दश अश्वमेध यज्ञ करनेवाला तो फिर जन्म लेता है परन्तु श्रीकृष्णको प्रणाम करनेवालेका पुनर्जन्म नहीं होता ॥ ६४ ॥

सर्वं रत्नमयो मेरुः सर्वाश्चर्यमयं नभः ॥
सर्वतीर्थमयी गंगा सर्वदेवमयो हरिः ॥ ६५ ॥

सर्वरत्न मय सुमेरु पर्वत है और सम्पूर्ण आश्चर्यमय आकाश है सब तीर्थमयी गंगाजी हैं सर्व देवमय हरि हैं ॥ ६५ ॥

आकाशात्पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम् ॥
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रतिगच्छति ॥ ६६ ॥

आकाशसे वर्षा हुआ जल जैसे सागरमें चलाजाता है ऐसे ही सब देवतोंके अर्थ किया हुआ प्रणाम केशव भगवान्को प्राप्त होता है ॥ ६६ ॥

गीता सहस्रनामानि स्तवराजो ह्यनुस्मृतिः ॥
गजेन्द्रमोक्षणं चैव पंचरत्नानि भारते ॥ १६७ ॥

गीता, विष्णुसहस्रनाम, भीष्मस्तवराज, अनुस्मृति, गजेंद्रमोक्ष महाभारतमें ये पञ्च रत्न हैं ॥ १६७ ॥

इति श्रीबेरीनिवासि-पंडित-वसतिरामविरचितगजेंद्रमोक्ष-भाषाटीका समाप्ता ॥